लाल हवेली
शिवानी

लाल हवेली

शिवानी

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

'शिवानी' की कहानियाँ

कई वर्ष पहले की बात है। मैंने शिवानी की एक कहानी कहीं पढ़ी। आज न तो उस पत्रिका का नाम याद आ रहा है, न उस कहानी का पूरा स्मरण है। कहानी की केवल अस्पष्ट स्मृति रह गयी है। उसमें आधुनिक शिक्षाप्राप्त बीबियों के कृत्रिम जीवन का चित्रण था। प्रच्छन्न रूप से इस कृत्रिम जीवन पर व्यंग भी था। मैं कहानी पढ़कर प्रभावित हुआ था। लेखिका में अद्भुत सूक्ष्म दृष्टि थी और भाषा में विचित्र सहज भाव था। परन्तु मैं सबसे अधिक प्रभावित हुआ था लेखिका की स्वच्छन्द-सहज प्रकाशन-भंगिमा और अनुभूत बात को साहस के साथ कहने की क्षमता से। मैं लेखिका के सम्बन्ध में अधिक जानने को उत्सुक हुआ, फिर भूल भी गया। उसी के आसपास मन्नू भण्डारी की कुछ कहानियाँ भी पढ़ने को मिलीं। उनसे भी मैं प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि कहानी लिखने में हमारी गृहदेवियाँ ज्यादा सफल हो रही हैं। फिर मैं और धन्धों में पड़ गया। बात आयी गयी हो गयी।

एक दिन कुछ कहानियों की कटिंग और एक पत्र मिला। पत्र शिवानी का ही था। मैं आनन्द और हर्ष से अभिभूत हो उठा। शिवानी और कोई नहीं, गौरा है। गौरा, शान्ति-निकेतन की छोटी-सी मुन्नी, मेरी परमप्रिय बहन और छात्रा। गौरा ही शिवानी के नाम से ऐसी कहानी लिखने लगी है। बचपन में ही वह बड़ी सूक्ष्म बुद्धि की थी, उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। कभी-कभी वह ऐसी पते की बात कह जाती थी कि हमलोग हँस पड़ते थे। मेरे परम पारखी मित्र और गौरा के दूसरे अध्यापक पं० निताई विनोद गोस्वामी कहा करते थे कि यह लड़की अवसर मिलने पर बहुत प्रतिभाशालिनी सिद्ध होगी। वे गौरा की भाषा और प्रकाशन-भंगिमा को तभी बहुत दाद देते थे, पर अफसोस के

साथ अन्त में कहा करते थे," हमारे देश में लड़कियों को अवसर ही कहाँ मिलता है"। मुझे गौरा की कहानियाँ पढ़कर लगा कि गोसाइंजी की भविष्यवाणी सफल सिद्ध होने जा रही है। गौरा की बड़ी बहन जयन्ती को तो सारे आश्रम में आदर्श बालिका माना जाता था। हम सभी लोग जयन्ती का बहुत आदर करते थे। गौरा उस समय बहुत छोटी थी। दोनों बहनों में कारयित्री प्रतिभा के बीज थे परन्तु गौरा उन दिनों इतनी छोटी थी और उसकी शक्ति का पता सिर्फ गोसाइंजी जैसे सहृदय गुरु को ही लग सकता था।

तब से जब कभी अवसर मिलता है मैं शिवानी की कहानियाँ पढ़ लेता हूँ। इन कहानियों की दुनिया बहुत बड़ी नहीं है। अधिकतर पात्र उच्चतर तबके के होते हैं। संयोग और भाग्य उनमें पूरा योग देते हैं। इस सीमित दायरे में शिवानी जीवन्त प्राणियों को प्रत्यक्ष करा देती हैं। घरेलू समस्याएँ, जो मध्यम वर्ग के लोगों में एक विशेष आकार धारण करती जा रही है, उभरकर सामने आती है। भाषा में अद्भुत रवानगी होती है। 'धर्मयुग' में एक कहानी प्रकाशित हुई थी—'लाल हवेली'। उसकी करुण व्यथा, संयोग और भाग्य-तत्त्व की सीमाओं के बावजूद, हृदय को अभिभूत कर डालती है। ताहिरा अर्थात् सुधा की मूक वेदना पाठक को मसोस डालती है। ताहिरा अविस्मरणीय चरित्र बन गयी है। आज यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि इन कहानियों का पुस्तक रूप में प्रकाशन हो रहा है। मेरा विश्वास है कि साहित्य में इन कहानियों का आदर और स्वागत होगा।

परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि आयुष्मती गौरा को सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करें और उसे साहित्यिक रचनात्मक कार्य करने का सुयोग और अधिकाधिक शक्ति प्रदान करें।

चण्डीगढ़
१९ मार्च, १९६५

हजारीप्रसाद द्विवेदी

क्रम

लाल हवेली

ताहिरा ने पास के वर्थ पर सोये अपने पति को देखा और एक लम्वी साँस खींचकर करवट वदल ली। कंवल से ढँकी रहमान अली की ऊँची तोंद गाड़ी के झकोलों से रह-रहकर काँप रही थी। अभी तीन घंटे और थे। ताहिरा ने अपनी नाजुक कलाई में बँधी हीरे की जगमगाती घड़ी को कोसा, कमवख्त कितनी देर-देर में घंटे वजा रही थी। रात भर एक आँख भी नहीं लगी थी उसकी। पास के वर्थ में उसका पति और नीचे के वर्थ में उसकी बेटी सलमा, दोनों नींद में वेखवर बेहोश पड़े थे। ताहिरा घवरा कर वैठ गयी। क्यों आ गयी थी वह पति के कहने में, सौ वहाने वना सकती थी! जो घाव समय और विस्मृति ने पूर दिया था उसी पर उसने स्वयं ही नश्तर रख दिया, अब भुगतने के सिवा और चारा ही क्या था?

स्टेशन आ ही गया। ताहिरा ने काला रेशमी बुर्का खींच लिया। दासी सूटकेस, नये विस्तरवन्द, एयर वैग, चाँदी की सुराही उतरवा कर रहमान अली ने हाथ पकड़ कर ताहिरा को ऐसे सँभाल कर अन्दाज से उतारा जैसे वह काँच की गुड़िया हो। तनिक-सा धक्का लगने पर टूट कर विखर जायगी। सलमा पहले ही कूद कर उतर चुकी थी। दूर से भागते, हाँफते हाथ में काली टोपी पकड़े एक नाटे-से आदमी ने लपककर रहमान अली को गले से लगाया और गोद में लेकर हवा में उठा लिया। उन दोनों की आँखों से आँसू वह रहे थे। "तो यही मामू वित्ते हैं।" ताहिरा ने मन ही मन सोचा और थे भी वित्ते ही भर के। विटिया को देखकर

मामू ने झट गले से लगा लिया, "बिल्कुल इस्मत है, रहमान।" वे सलमा का माथा चूम-चूमकर कहे जा रहे थे, "वही चेहरा-मोहरा, वही नैन-नक्श। इस्मत नहीं रही तो खुदा ने दूसरी इस्मत भेज दी।"

ताहिरा पत्थर की-सी मूरत बनी, चुप खड़ी थी, उसके दिल पर जो दहकते अंगारे दहक रहे थे उन्हें कौन देख सकता था? वही स्टेशन, वही कनेर का पेड़, पन्द्रह साल में इस छोटे-से स्टेशन को भी क्या कोई नहीं बदल सका।

"चलो बेटी।" मामू बोले, "बाहर कार खड़ी है। जिला तो छोटा है पर अल्ताफ की पहली पोस्टिंग यहीं हुई। इन्शाअल्ला अब कोई बड़ा शहर मिलेगा।"

मामू के इकलौते बेटे अल्ताफ की ही शादी में रहमान अली पाकिस्तान से आया था, अल्ताफ को पुलिस-कप्तान बनकर भी क्या इसी शहर में आना था? ताहिरा फिर मन ही मन कुढ़ी।

घर पहुँचे तो बूढ़ी नानी खुशी से पागल-सी हो गयीं। बार-बार रहमान अली को गले से लगा-लगाकर चूमती थीं और सलमा को देखकर ताहिरा को देखना ही भूल गयीं, "या अल्लाह, यह क्या तेरी कुदरत? इस्मत को ही फिर भेज दिया!" दोनों बहुएँ भी बोल उठीं, "सच अम्मी जान, बिल्कुल इस्मत आपा है पर बहू का मुँह भी तो देखिए। लीजिए ये रही अशर्फी।" और झट अशर्फी थमाकर ननिया सास ने ताहिरा का बुर्का उलट दिया, "अल्लाह, चाँद का टुकड़ा है, नन्हीं नजमा देखो, सोने का दिया जला धरा है।"

ताहिरा ने लज्जा से सिर झुका लिया। पंद्रह साल में वह पहली बार ससुराल आयी थी। बड़ी मुश्किल से वीसा मिला था, तीन दिन रहकर वह फिर पाकिस्तान चली जायगी, पर कैसे कटेंगे ये तीन दिन?

"चलो बहू, ऊपर के कमरे में चल कर आराम करो। मैं चाय भिजवाती हूँ।" कहकर नन्हीं मामी उसे ऊपर पहुँचा आयीं। रहमान नीचे

ही वैठकर मामू से वातों में लग गया और सलमा को तो वड़ी अम्मी ने गोदी में ही खींच लिया। वार-वार उसके माथे पर हाथ फेरतीं और हिचकियाँ वँध जातीं, "मेरी इस्मत, मेरी वच्ची।"

ताहिरा ने एकांत कमरे में आकर बुर्का दूर फेंक दिया। वंद खिड़की को खोला तो कलेजा धक् हो गया—सामने लाल हवेली खड़ी थी। चटपट खिड़की वन्दकर वह तखत पर गिरती-पड़ती वैठ गयी, "खुदाया—तू मुझे क्यों सता रहा है?" वह मुँह ढाँपकर सिसक उठी। पर क्यों दोष दे वह किसी को? वह तो जान गयी थी कि हिन्दुस्तान के जिस शहर में उसे जाना है, वहाँ का एक-एक कंकड़ उस पर पहाड़-सा टूट कर वरसेगा। उसके नेक पति को क्या पता! भोला रहमान अली जिसकी पवित्र आँखों में ताहिरा के प्रति प्रेम की गंगा छलकती थी, जिसने उसे पालतू हिरनी-सा वनाकर अपनी वेड़ियों से वाँध लिया था, उस रहमान अली से वह क्या कहती?

पाकिस्तान के वँटवारे में कितने पिसे, उन्हीं में से एक थी ताहिरा! तव थी वह सोलह वर्ष की कनक छड़ी-सी सुन्दरी, सुधा! सुधा अभी मामा के साथ ममेरी वहन के व्याह में मुल्तान आयी। दंगे की ज्वाला ने उसे फूँक दिया। मुस्लिम गुंडों की भीड़ जव भूखे कुत्तों की भाँति उसे वोटी-सी चिचोड़ने को थी तव ही आ गया फरिश्ता वनकर रहमान अली। नहीं; वे नहीं छोड़ेंगे, हिन्दुओं ने उनकी वहू-वेटियों को छोड़ दिया था क्या? पर रहमान अली की आवाज की मीठी डोर ने उन्हें वाँध लिया, साँवला, दुवला-पतला रहमान सहसा कठोर मेघ वनकर उस पर छा गया। सुधा वच गयी पर ताहिरा वन कर। रहमान की जवान वीवी को भी देहली में ऐसे ही पीस दिया था, वह जान बचाकर भाग आया था, बुझा और घायल दिल लेकर। सुधा ने वहुत सोचा-समझा और रहमान ने भी दलीलें कीं पर पशेमान हो गया। हारकर किसी ने एक दूसरे पर बीती विना सुने ही मजबूरियों से समझौता कर लिया। ताहिरा उदास होती तो

रहमान अली आसमान से तारे तोड़ लाता, वह हँसती तो वह कुर्बान हो जाता। एक साल बाद बेटी पैदा हुई तो रहा-सहा मैल भी धुल कर वह गया। अब ताहिरा उसकी बेटी की माँ थी, उसकी किस्मत का बुलन्द सितारा। पहले कराची में छोटी-सी बजाजी की दुकान थी, अब वह सबसे बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर का मालिक था। दस-दस सुन्दरी ऐंग्लोइंडियन छोकरियाँ उसके इशारों पर नाचतीं, धड़ाधड़ अमरीकी नायलॉन और डैकरॉन बेचतीं। दुबला-पतला रहमान हवा-भरे रबर के खिलौने-सा फूलने लगा। तोंद बढ़ गयी, गर्दन ऐंठकर शानदार अकड़ से ऊँची उठ गयी, सीना तन गया, आवाज में खुद-ब-खुद एक अमरीकी डौल आ गया।

पर नीलम-पोखराज से जड़ी, हीरे से चमकती-दमकती ताहिरा, शीशम के हाथी-दाँत जड़े छपर-खट पर अब भी बेचैन करवटें ही बदलती। हर मार्च की जाड़े से दामन छुड़ाती हल्की गर्मी की उमस लिये पाकिस्तानी दुपहरिया में पानी से निकली मछली-सी तड़फड़ा उठती। मस्ती-भरे होली के दिन जो अब उसकी पाकिस्तानी जिन्दगी में कभी नहीं आयेंगे। गुलाबी मलमल की वह चुनरी उसे अभी भी याद है, अम्मा ने हल्का-सा गोटा टाँक दिया था। हाथ में मोटी-सी पुस्तक लिये उसका तरुण पति कुछ पढ़ रहा था। घुँघराली लटों का गुच्छा चौड़े माथे पर झुक गया था, हाथ की अधजली सिगरेट हाथ में ही बुझ गयी थी। गुलाबी चुनरी के गोटे की चमक देखते ही उसने और भी सिर झुका दिया था, चुलबुली सुन्दरी बालिका नववधू से झेंप-झेंप कर रह जाता था, बेचारा। पीछे से चुपचाप आ कर सुधा ने दोनों गालों पर अबीर मल दिया था और झट चौके में घुसकर अम्मा के साथ गुझिया बनाने में जुट गयी थी। वहीं से सास की नजर बचाकर भोली चितवन से पति की ओर देख चट-से छोटी-सी गुलाबी जीभ निकालकर चिढ़ा भी दिया था, उसने। जब वह मुल्तान जाने को हुई तो कितना कहा था उन्होंने, "सुधा, मुल्तान मत जाओ।" पर वह क्या जानती थी कि दुर्भाग्य का मेघ उस पर मँडरा रहा है? स्टेशन पर

छोड़ने आये थे, इसी स्टेशन पर। यही कनेर का पेड़ था, यही जँगला। मामाजी के साथ गठरी-सी बनी सुधा को घूँघट उठाने का भी अवकाश नहीं मिला। गाड़ी चली तो साहस कर उसने घूँघट जरा-सा खिसका कर अन्तिम बार उन्हें देखा था। वही अमृत की अन्तिम घूँट थी।

सुधा तो मर गयी थी, अब वह ताहिरा थी। उसने फिर काँपते हाथों से खिड़की खोली, वही लाल हवेली थी उसके श्वसुर वकील साहब की, वही छत पर चढ़ी रात की रानी की बेल, तीसरा कमरा जहाँ उसके जीवन की कितनी रस-भरी रातें बीती थीं। न जाने क्या कर रहे होंगे, शादी कर ली होगी, क्या पता बच्चों से खेल रहे हों! आँखें फिर बरसने लगीं और एक अनजाने मोह से वह जूझ उठी।

"ताहिरा, अरे कहाँ हो?" रहमान अली का स्वर आया और हड़बड़ा कर आँखें पोंछ ताहिरा बिस्तरबन्द खोलने लगी। रहमान अली ने गीली आँखें देखीं तो घुटना टेककर उसके पास बैठ गया; "अय बीबी, क्या बात हो गयी? सिर तो नहीं दुख रहा है? चलो चलो, लेटो चलकर। कितनी बार समझाया है कि यह सब काम मत करो, पर सुनता कौन है! बैठो कुर्सी पर, मैं बिस्तर खोलता हूँ।" मखमली गद्दे पर रेशमी चादर बिछा कर रहमान अली ने ताहिरा को लिटा दिया और शरबत लेने चला गया। सलमा आ कर सिर दबाने लगी, बड़ी अम्मी ने आकर कहा, "नजर लग गयी है, और क्या?" नन्हीं, नजमा ने दहकते अंगारों पर चून और मिर्च से नजर उतारी। किसी ने कहा, "दिल का दौरा पड़ गया, आँवले का मुरब्बा चटाकर देखो।"

लाड़ और दुलार की थपकियाँ देकर सब चले गये। पास में लेटा रहमान अली खर्राटे भरने लगा तो दबे पैरों वह फिर खिड़की पर जा खड़ी हुई। बहुत दिन से प्यासे को जैसे ठंडे पानी की झील मिल गयी थी, पानी पी-पी कर भी प्यास नहीं बुझ रही थी। तीसरी मंजिल पर रोशनी जल रही थी। उस घर में रात का खाना देर से ही निबटता था। फिर खाने

के बाद दूध पीने की भी तो उन्हें आदत थी। इतने साल गुजर गये, फिर भी उनकी एक-एक आदत उसे दो के पहाड़े की तरह जबानी याद थी। सुधा, सुधा कहाँ है तू? उसका हृदय उसे स्वयं धिक्कार उठा, तूने अपना गला क्यों नहीं घोंट दिया? तू मर क्यों नहीं गयी, कुँए में कूद कर? क्या पाकिस्तान के सब कुँए सूख गये थे? तूने धर्म छोड़ा पर संस्कार रह गये, प्रेम की धारा मोड़ दी, पर बेड़ी नहीं कटी, हर तीज, होली, दीवाली तेरे कलेजे पर भाला भोंक कर निकल जाती है। हर ईद तुझे खुशी से क्यों नहीं भर देती? आज सामने तेरे ससुराल की हवेली है, जा उनके चरणों में गिरकर अपने पाप धो ले। ताहिरा ने सिसकियाँ रोकने को दुपट्टा मुँह में दाब लिया।

रहमान अली ने करवट बदली और पलंग चरमराया। दबे पैर रखती ताहिरा फिर लेट गयी। सुबह उठी तो शहनाइयाँ बज रही थीं, रेशमी रंग-बिरंगी गरारा-कमीज, अबरखी चमकते दुपट्टे, हीना और मोतिया की गमक से पूरा घर मह-मह कर रहा था। पुलिस बैंड तैयार था, खाकी वर्दियाँ और लाल तुर्रम के साफे सूरज की किरणों से चमक रहे थे। बारात में घर की सब औरतें भी जायेंगी। एक बस में रेशमी चादर तान कर पर्दा खींच दिया गया था। लड़कियाँ बड़ी-बड़ी सुर्मेदार आँखों से नशा-सा बिखेरती एक-दूसरे पर गिरती-पड़ती बस पर चढ़ रही थीं। बड़ी-बूढ़ियाँ पानदान समेट कर बड़े इतमिनान से बैठने जा रही थीं और पीछे-पीछे ताहिरा काला बुर्का ओढ़ कर ऐसी गुमसुम चली जा रही थी जैसे सुध-बुध खो बैठी हो। ऐसी ही एक साँझ को वह भी दुल्हन बन कर इसी शहर में आयी थी, बस में सिमटी-सिमटाई लाल चूनर से ढँकी, पर आज था स्याह बुर्का, जिसने उसका चेहरा ही नहीं, पूरी पिछली जिन्दगी अँधेरे में डुबाकर रख दी थी।

"अरे किसी ने वकील साहब के यहाँ बुलौआ भेजा या नहीं?" बड़ी अम्मी बोलीं और ताहिरा के दिल पर फिर नश्तर फिरा।

"दे दिया, अम्मी।" मामूजान बोले, "उनकी तबीयत ठीक नहीं है, इसी से नहीं आये।"

"बड़े नेक आदमी हैं।" बड़ी अम्मी ने डिबिया खोलकर पान मुँह में भरा फिर छाली की चुटकी निकाली और बोली, "शहर के सबसे नामी वकील के बेटे हैं पर आन, न औलाद। सुना एक बीबी दंगे में मर गयी सो फिर घर ही नहीं बसाया।"

○ ○

बड़ी धूमधाम से ब्याह हुआ। चाँद-सी दुल्हन आयी। शाम को पिक्चर का प्रोग्राम बना। नया जोड़ा, बड़ी अम्मी, लड़कियाँ, यहाँ तक कि घर की नौकरानियाँ भी बन-ठन कर तैयार हो गयीं। पर ताहिरा नहीं गयीं, उसका सिर दुख रहा था। बे-सिर-पैर के मुहब्बत के गाने सुनने की ताकत उसमें नहीं थी। अकेले अँधेरे कमरे में वह चुपचाप पड़ी रहना चाहती थी—हिन्दुस्तान, प्यारे हिन्दुस्तान की आखिरी साँझ।

जब सब चले गये तो तेज बत्ती जलाकर वह आदमकद आईने के सामने खड़ी हो गयी। समय और भाग्य का अत्याचार भी उसका अलौकिक सौन्दर्य नहीं लूट सका था। वही बड़ी-बड़ीं आँखें, गोरा रंग और संगमरमर-सी सफेद देह—कौन कहेगा वह एक जवान बेटी की माँ है ? कहीं पर भी उसके पुष्ट यौवन ने समय से मुँह की नहीं खायी थी। कल वह सुबह चार बजे चली जायेगी। जिस देवता ने उसके लिए सर्वस्व त्याग कर वैरागी का वेष धर लिया है, क्या एक बार भी उसके दर्शन नहीं मिलेंगे ? किसी शैतान नटखट बालक की भाँति उसकी आँखें चमकने लगीं।

झटपट बुर्का ओढ़ वह बाहर निकल आयी, पैरों में बिजली-की गति आ गयी पर हवेली के पास आ कर वह पसीना-पसीना हो गयी। पिछवाड़े की सीढ़ियाँ उसे याद थीं जो ठीक उनके कमरे की छोटी खिड़की के पास आकर ही रुकती थीं। एक-एक पैर दस मन का हो गया, कलेजा फट-फट

कर मुँह को आ गया, पर अव वह ताहिरा नहीं थी, वह सोल्ह वर्ष पूर्व की चंचल वालिका नववधू सुधा थी जो सास की नजर वचा कर तरुण पति के गालों पर अवीर मलने जा रही थी। मिलन के उन अमूल्य क्षणों में सैयद वंश के रहमान अली का अस्तित्व मिट गया था। आखिरी सीढ़ी आयी, साँस रोक कर, आँखें मूँद वह मनाने लगी, "हे विल्वेश्वर महादेव, तुम्हारे चरणों में यह हीरे की अँगूठी चढ़ाऊँगी, एक वार उन्हें दिखा दो पर वे मुझे न देखें।"

वहुत दिन वाद भक्त ने भगवान् का स्मरण किया था, कैसे न सुनते? आँसुओं से अन्धी आँखों ने देवता को देख लिया। वही गम्भीर मुद्रा, वही लट्ठे का इकवर्रा पायजामा और मलमल का कुर्ता। मेज पर अभागिनी सुधा की तस्वीर थी जो गौने पर वड़े भैया ने खींची थी।

"जी भर कर देख पगली और भाग जा, भाग ताहिरा, भाग!" उसके कानों में जैसे स्वयं भोलानाथ गरजे।

सुधा फिर डूव गयी, ताहिरा जगी। सव सिनेमा से लौटने को होंगे। अन्तिम वार आँखों ही आँखों में देवता की चरण-धूलि लेकर वह लौटी और विल्वेश्वर महादेव के निर्जन देवालय की ओर भागी। न जाने कितनी मनौतियाँ माँगी थीं, इसी देहरी पर। सिर पटक कर वह लौट गयी, आँचल पसार कर उसने आखिरी मनौती माँगी, "हे भोलानाथ, उन्हें सुखी रखना। उनके पैरों में काँटा भी न गड़े।" हीरे की अँगूठी उतार कर चढ़ा दी और भागती-हाँफती घर पहुँची।

रहमान अली ने आते ही उसका पीला चेहरा देखा तो नव्ज पकड़ ली, "देखूँ, वुखार तो नहीं है, और अँगूठी कहाँ गयी?" वह अँगूठी रहमान ने उसे इसी साल शादी के दिन की यादगार में पहनायी थी।

"न जाने कहाँ गिर गयी?" थके स्वर में ताहिरा ने कहा।

"कोई वात नहीं।" रहमान ने झुककर ठंडी वर्फ-सी लम्वी अँगुलियों

को चूम कर कहा, "ये अँगुलियाँ आबाद रहें। इन्शाअल्ला अब के तेहरान से चौकोर हीरा मँगवा लेंगे।"

ताहिरा की खोयी दृष्टि खिड़की से बाहर अँधेरे में डूबती लाल हवेली पर थी जिसके तीसरे कमरे की रोशनी दप-से बुझ गयी थी। ताहिरा ने एक सर्द साँस खींचकर खिड़की बन्द कर दी।

लाल हवेली अँधेरे में गले तक डूब चुकी थी।

शिबी

नाम शिवी नहीं था।

नाम था शिवप्रिया, अल्मोड़े के श्मशान-स्थित विश्वनाथ मन्दिर के पुजारी उसके मामा थे। उन्हीं ने बहुत सोच-समझ कर नाम धरा था—शिवप्रिया। सोचा था शायद नित्य शिव का पावन नामोच्चारण माँ के क्लुष को धो-पोंछकर बहा देगा, किन्तु पुत्री को नाम लेकर पुकारने का अवसर ही नहीं आया, न जाने किन-किन भयानक, असाध्य रोगों से सड़-गलकर अभागिनी एक ही वर्ष में चल बसी।

शिवप्रिया, मामा के मन्दिर से सटे काठ के मकान में ही, उछल-कूदकर बड़ी होने लगी। मामा ने विवाह नहीं किया था, श्मशान के उदासी बाबा से विवाह करने का दुस्साहस भी किसे होता? विश्वनाथ अल्मोड़े का एकमात्र श्मशान घाट है। इसी से आये दिन एक न एक चिता जलती ही रहती। राम नाम सत्य का परिचित स्वर दूर से ही पहचानकर भोली शिवी गँजेड़ी मामा को झकझोरकर उठाती—"मामा उठो मुर्दा आया।" दूर से ही वह मुर्दे की समृद्धि आँककर मामा को जोश दिलाती—"उठो ना मामा, ब्राह्मणों के परिवार का मुर्दा है, देखा नहीं कैसे धीमे-धीमे 'राम नाम सत्य' कह रहे थे, सात गैस के लैम्प आये हैं, बाप रे बाप! खूब बढ़िया दुशाला होगा!" वह तालियाँ बजा-बजाकर काठ के हिलते बरामदे में खड़ी होकर जलती चिता को ऐसे उत्साह से देखती जैसे शादी-ब्याह में छूटती आतिशबाजियाँ देख रही हो।

धीरे-धीरे घाट का मनहूस घेरा सिमट जाता और काँख में रेशमी लाल दुशाला दबाये, गालियाँ देते गँजेड़ी मामा घर लौटते—"साले मरते हैं तो

रात-आधीरात कुछ नहीं देखते, यह कोई वक्त है मरने का! रात के दो बजे मर के चले आ रहे हैं लाट साहब! उस पर नीयत देखा, तीन कौड़ी का दुशाला डाल कर पच्चीस बरस के पाठे-से लड़के को फूंक गये पाण्डेजी! लानत है इस बड़े आदमी की नीयत पर। तेरी माँ मरी तो मैंने बनारसी दुपट्टा डाला था। ले रखदे पिटारे में।" दुशाला भानजी को थमा, फिर गाँजे में डूब जाते।

नन्हीं शिवप्रिया, पिटारे से लाल, हरे, सफेद दुशालों को निकाल-निकाल कर बिखेर देती। यही उसके मामा की चल-अचल सम्पत्ति थी। कभी एक ओढ़ती, कभी दूसरा, कभी नये दुशाले की पाग बाँध कर दुल्हा बनती, कभी लहँगे की-सी चुन्नट खोंस कर दुल्हन! अन्त में थक कर ढेरसारे दुशालों का गुदगुदा गद्दा तैयार कर सो जाती। जीवित और मृत के रहस्यमय भेद ने उसकी भोली बुद्धि को नहीं डसा था, इसी से परलोक के भय ने उसे कभी त्रस्त नहीं किया।

मामा के चौके में चूल्हा जले या न जले, उसके प्रांगण में यदि चिता नहीं जलती तो वह उदास हो जाती, कि आज उसे नये लाल दुशाले का दुपट्टा ओढ़ने को नहीं मिलेगा। धीरे-धीरे मामा को एक दिन लगा कि भानजी का अब श्मशान घाट पर रहना ठीक नहीं है।

● ●

उनकी एक मौसेरी बहन नैनीताल में थीं, शिवप्रिया को वहीं भेज दिया गया। मौसी का पेशा ऐसा था कि वह उस अप्रत्याशित उपहार से गद्गद हो गयी, किन्तु गोरी लम्बी बेंत की छड़ी-सी शिवप्रिया को देखकर, उसे भविष्य की कोई आशा नहीं बढ़ी। लड़की बेहद दुबली-पतली थी, आये दिन एक न एक बीमारी उसे घेरे रहती, कभी खसरा होता, कभी चेचक। कुछ नहीं हुआ तो उसकी गोरी नाक ही निरन्तर बहा करती। कोई भी कपड़ा उसके बदन पर नहीं फबता। मौसी स्वयं देखने में अत्यन्त साधारण थी, किन्तु उसके पास अपनी बेंत की-सी लचीली देह की कामधेनु थी।

उसके संगीत-नृत्य की चर्चा कुमाऊँ में दिगन्तव्यापी थी। जब उसने शिवप्रिया में सौन्दर्य का अभाव देखा तो उसका दिमाग सँभाल लिया और जब तक दस वर्ष के निरन्तर सुचारु संचालन ने शिवी के दिमाग को घिस-माँज कर परिष्कृत किया तो चेहरे पर स्वयं ही एक अनोखा जादू आ गया। अचानक शिवी साधारण मानसी के स्तर से बहुत ऊपर उठ गयी।

सन्ध्या के आगमन के साथ, अगरु धूप की सुगन्ध से हवा बोझिल हो उठती और शिवी अपने तखत पर गावतकिया लगाकर बैठी सिगरेट फूँकती। देखते-देखते देहली-दरबार लग जाता। इस दरबार में रहते, खद्दर की टोपी घर पर ही खोल कर रख आनेवाले एक-आध नेतागण, बोट-हाउस के समृद्ध बाँके और सुर्ख गाल और साहबी दूधिया रंग के सुदर्शन शाह, जिनकी सीजन के टूरिस्ट-गणों को निर्मम डाकुओं की भाँति लूट-खसोट कर जोड़ी गयी सम्पत्ति की थैली शिवी के स्फटिक गौर चरणयुगल पर रीती होकर धन्य हो जाती, पर जैसे देव-मूर्ति के चेहरे पर भक्ति-द्वारा अर्पित धन देखकर भी किसी भी प्रकार की हँसी की रेखा नहीं उभरती, शिवी भी भक्तों-द्वारा अर्पित पत्र-पुष्प निर्विकार भाव से ग्रहण कर प्रस्तर प्रतिमा-सी ही बैठी रहती।

रामजे अस्पताल के विराट् साये से घिरा एक लाल छत का छोटा-सा मकान है। इस विचित्र शिखराकुल मकान के इर्द-गिर्द कई नाशपाती और खूबानी के पेड़ों का ऐसा घना जाल-सा बिछा है कि नजदीक जाने पर ही मकान दिख पाता है। इसी मकान में शिवी रहने लगी थी। मौसी से उसकी खटपट हो गयी थी। आधे भाग में एक ईसाई परिवार रहता था, उन्हीं ने मामूली किराये पर शिवी को दो कोठरियाँ उठा दी थीं। बरामदा साझे का था, एक ओर ईसाई परिवार की मुर्गियाँ दिन-भर फड़फड़ाती रहतीं, दूसरी ओर एक टूटे हाथ की कुरसी पर बैठी शिवप्रिया अपने कटाक्षों के काँटे से सड़क पर चलती निरीह मछलियाँ पकड़ती। नाशपाती और खूबानी की टहनियों के बीच उसकी बड़ी-बड़ी आँखें भी और सरस हो

उठतीं और राहगीर न चाहने पर भी आँख उठा कर देखने को वाध्य हो जाते। फिर एक वात और भी थी, वह सड़क नैनीताल की सवसे मुखरा सड़क थी।

ईसाई परिवार में दो जुड़वाँ भाई थे, डेविड और हेनरी। दोनों अंग्रेजी स्कूलों में क्लर्क थे। उनका वाप गिरजे के बड़े पादरी के यहाँ खानसामा था और माँ रामजे अस्पताल में आया थी। इसी में घर से यथेष्ट समृद्धि थी। डेविड और हेनरी दोनों कुँआरे थे और उनकी माँ का कहना था कि जव तक वह कुलच्छनी शिवी उनके यहाँ रहेगी दोनों आजन्म कुँवारे रहेंगे। शिवी अपने नये घर में वड़ी प्रसन्न थी। गिरजे के पादरी के सुस्वादु डिनर का अधिकांश भाग, पिता-पुत्र की कृपा से शिवी ही उदरस्थ करती। अँग्रेजी उवले डिनर और मैकेरोनी ने चेहरे को स्वास्थ्य की लालिमा से रँग दिया। रंग निखर उठा। झुकी गर्दन, सर्पगन्धा के वलखाये फन-सी उठने लगी। डेविड और हेनरी उसे ढेर सारी अँग्रेजी पत्रिकाएँ ला कर देते रहते। शिवी पढ़ी-लिखी नहीं थी, पर मौसी ने उसके दिमाग के पुर्जे ऐसे चमका कर रख दिये थे कि नया से नया फैशन, वह देखते ही दाँतों से पकड़ कर चुन लेती। दोनों भाई उसे एक से एक आला अँग्रेजी चलचित्र दिखाने ले जाते, सिनेमा हाउस के घटाटोप अन्धकार में वह डेविड और हेनरी का हाथ थामे, ग्रेस केली, सोफिया लॉरेन और जीना लोलो ब्रिजिडा के एक-एक कटाक्ष को कण्ठस्थ करती। घर आ कर वह अपने टूटे दर्पण के सम्मुख कण्ठस्थ पाठ को दुहराती तो स्वयं दंग रह जाती।

जुड़वाँ डेविड और हेनरी, दोनों उसे पत्नीरूप में पाने को पागल थे। उन दोनों ने यहाँ तक एक विचित्र समझौता कर लिया था कि वह दोनों में से एक की भी पत्नी वनना स्वीकार कर लेगी तो दूसरा उसे बिना किसी अधिकार के ही पत्नी की पूर्ण मान्यता देता रहेगा। पर शिवी उनके उस उदार प्रस्ताव को दुष्टता से मुस्करा कर टाल देती। डेविड, नये से नये अँग्रेजी गाने सीख कर आता और अपनी सधी सीटी के स्वरों में उन

गानों का जादू भर के शिवी के सामने फेफड़े निकाल कर रख देता, पर वह दोनों होंठ भींच कर कभी इग्रैंड वर्गमेन बन जाती, कभी गाम्भीर्य की लक्ष्मण-रेखा से घिरी ग्रेस केली।

● ●

कर्नल डिकरी अपनी सुरुत्रि के लिए पूरे नैनीताल में प्रसिद्ध थे। उनके बेशकीमती सामान का नीलाम हुआ तो हेंनरी अपने हाथ की घड़ी गिरवी रख कर उसके लिए कर्नल डिकरी का ड्रेसिंग टेबल खरीद लाया। शिवी का कहना था कि उसके छोटे शीशे में उसका चेहरा ही चेहरा दिखता है, ऐसी भव्य इमारत की विभिन्न गुम्बदें और मीनारें अनदेखी ही रह जायें, यह भला कैसे हो सकता था। अब शिवी अपनी चोटी से ले कर लाल-लाल एड़ियों तक शौक से निहार सकती थी। आड़ा-तिरछा कर, दोनों जुड़वाँ भाइयों ने अपने सींक-से हाथों से आदमकद आईना ला कर शिवी के कमरे के एक कोने पर धर दिया। यही नहीं, हेंनरी एक मद्रासी फेरीवाले से एक क्रोशिया का बना गोल मेजपोश भी खरीद लाया। उसे बिछा कर शीशे के एक टूटे गिलास में तीन ग्लैडोलाई के लाल फूल सजा कर आईने में दोनों भाइयों के लम्बोतर चेहरों के बीच शिवी का गोल-गोल चेहरा, कुन्दकली-सा मुस्करा उठा।

आईने के साथ ही न जाने किन शुभग्रहों ने आ कर शिवी के कमरे को घेर लिया। उसके नवीनतम प्रेमियों के क्यू में एक प्रसिद्ध ठेकेदार भी आ कर जुट गया। उसी ने उसे टीक और अखरोट की लकड़ी का एक से एक नक्काशीदार फर्नीचर बनवा दिया। शिवी अपने प्रेमियों का चुनाव उसी सलीके से करती थी जिससे कैबिनेट मिनिस्टर चुने जाते हैं। एक की कपड़े की दूकान थी, वह नित्य नवीन साड़ियों के तोहफे लाता था। दूसरा प्रसिद्ध ड्रेसमेकर था, जो शिवी के ब्लाउज सीने में सुई तोड़ कर रख देता था। तीसरा सुनार था, जो अपनी आँखों की जोत को सोने के साथ पिघला कर आधी-आधी रात तक उसके लिए पहाड़ी कुन्दन जड़ी पचलड़ें तैयार

करता था, ऐसी अनोखी पचलड़ें जिनकी सृष्टि कुमाऊँ के सुघड़ सुनार ही कर सकते हैं और वो केवल रत्नगर्भा कुमाऊँ की सुन्दरी ललनाओं की शंख-ग्रीवा पर ही सार्थक हो सकती हैं। चौथा प्रेमी एक धोबी था, जो शिवी के बाईसगजी लहंगे के पाट और चिकन के डोरीदार दुपट्टों पर कड़ी कलफ लगा कर नैनीताल के आधे धोबीघाट्ट को घेरे रहता। शिवी के प्रेमियों में साहित्यिक भी थे, राजनीतिज्ञ भी; कई प्रसिद्ध प्रौढ़ सर्जन भी थे और तरुण छात्र भी। वह कुमाऊँ की मिस कीलर थी, प्राचीन युग की मेनका। किन्तु वह स्वयं एक ही प्रेमी की वास्तविक प्रेमिका थी। और वह प्रेमी था धरणीधर, जो अँग्रेजी चलचित्रों के नायक की भाँति अपने बालों के सुनहरे फुग्गे को बार-बार एक झटके के साथ पीछे फेंकता रहता और सिगरेट की लम्बी कशें खींच कर, शिवी के कान के पास ही, धुएँ के छल्ले छोड़ कर उसका दम घुटा देता। कभी मीठी अँग्रेजी में उसे डार्लिंग पुकारता, कभी हनी।

एक बार वह उसके लिए एक दामी पैडेड ड्रेसिंग गाउन ले आया, जिसे उसके पापा उसकी माँ के लिए अपनी विदेश यात्रा से लाये थे। पर उसकी माँ न तब होश में थी जब वह गाउन आया था, न तब, जब उसे सुपुत्र सूटकेस से तिड़ी कर ले गया। उसके जीवन का अधिकांश समय बोटहाउस में ही बीतता था। गुलाबी रंग के ड्रेसिंग गाउन में, रुई की तहें बिछा कर, विदेशी दर्जी ने मशीन से मिरजई के-से चौकोर सकरपारे काट दिये थे। कमर पर लगे दो गुलाबी फुन्दों को, अपनी गोरी कलाइयों में लपेट कर, शिवी पूरे कमरे में घूम-घूम कर ट्विस्ट करती रही थी और किशोर धरणीधर गिटार पर कोई अँग्रेजी धुन बजाता रहा था। खिड़की के टाट के पर्दे से डेविड और हेनरी की व्यथित जुड़वाँ आँखों ने यह सब कुछ देखा था और दोनों भाई एक-दूसरे के गले से लिपट कर तब तक रोते रहे थे जब तक उनके मुर्गे ने ठीक उनकी टाँगों के बीच आ कर बाँग नहीं दे दी।

दूसरे दिन तड़के ही दोनों भाई, रात-भर के अक्षम्य अपराध के लिए

अकारण ही अपने औदार्य से स्वयं पिघल कर शिवी को क्षमादान देने उसके कमरे में उपस्थित हुए। वह विदेशी शराब के महँगे नशे में चूर पड़ी थी। कै की खट्टी दुर्गन्ध के बीच से उसे खींच कर दोनों भाइयों ने उसका मुँह धोया, अपने सस्ते पाउडर की खुशबू से उसके रात के वीभत्स इतिहास पर पर्दा डालने की यथेष्ट चेष्टा की। बड़ी देर में उसने अपनी नशे से बोझिल पलकों की चिलमन उठायी और एक ही अग्निगर्भा दृष्टि की लपट से दोनों भाइयों को भूँज कर रख दिया था। "गेट आउट"—नशे में लड़खड़ाती जबान से वह बोली। इसी 'गेट आउट' को दोनों भाइयों ने कितने परिश्रम से उसे सिखाया था। तब क्या पता था कि कभी उन्हीं की बिल्ली उन्हीं से म्याऊँ करेगी।

शिवी का किशोर प्रेमी आधी रात के बाद ही आता था और जंगली बिल्ले की फुर्ती-से खिड़की से उचक कर छू हो जाता था। उसके पकड़ में आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। डेविड और हेनरी ने कैसे-कैसे जाल बिछाये, पर वह हर बार बेदाग निकल गया। यही नहीं, शिवी ने एक दिन दोनों भाइयों को बुलाकर कह दिया कि यदि भविष्य में उन्होंने उसके प्रेमी पर कीचड़ उछालने का प्रयत्न किया तो वे ही मुँह के बल गिरेंगे। "जल में रहकर मगर से वैर करोगे तो फिर भुगत भी लेना," यह कहकर अपने गाउन की रेशमी जेबों में हाथ डाले, अकड़ कर वह चली गयी थी।

● ●

सचमुच मगर नहीं तो मगरमच्छ का पुत्र था धरणीधर। उसके पिता रुद्रदेव कड़े से कड़े शत्रु को दाँतों-तले अँगुली दबवा देने की अद्भुत क्षमता रखते थे। अटूट वैभव का एकमात्र उत्तराधिकारी धरणीधर ही था। धरणीधर, जिसे उसके अँग्रेजी स्कूल के सहपाठी 'डिकी' कहकर पुकारते थे। ऊँचा अगला गबरू जवान था, रूखी लटों को वह जेब से छोटा-सा कंघा निकाल कर सँवारता रहता। उसके कपड़े विदेश से सिलकर आते

थे। वाल कटवाने वह देहली जाता था और स्केटिंग में नैनीताल-भर में उसका मुकावला कोई नहीं कर पाता था। आड़ी-तिरछी वंकिम देहयष्टि को वह रिंक में ऐसे विलक्षण कलाचातुर्य से मोड़-मरोड़ देता कि दर्शक लोट-पोट हो जाते।

अठारह वर्ष की उम्र में ही वह विदेशी आसव के किसी भी अपरिचित पात्र में जीभ डुवोते ही उसका नाम वता देता। वोटहाउस क्लव के फैंसी ड्रेस वॉल में कोई सैलोमी वने या घायल सिपाही, वह अपनी अनोखी छद्मवेषी सज्जा से सवको पछाड़ देता। पिता का अटूट वैभव, समाज-सेविका माँ की अनोखी ख्याति और स्वयं अपना वेजोड़ व्यक्तित्व, उसके लिए अलादीन के तीन चिराग थे। 'खुल जाओ सिम सिम'—कहते ही वैभव के दुर्गम द्वार उसके लिए खुल जाते। भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय को चुनौती देकर जव उसने बुरी तरह परास्त कर दिया और वे उसे किसी भी प्रकार की डिग्री से विभूषित नहीं कर सके, तो उसे विदेश भेज दिया गया। तीन वर्ष तक विदेश की विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं को धन्य कर, वह खोटे सिक्के की भाँति स्वदेश लौट आया।

वाप ने देखा तो सर पीट लिया। पहले कपड़े तो ढंग से पहनता था, अव तो तंग मुहरे की पैण्ट कमर से नीचे लटकी रहती, रूखे वाल हवा में उड़ते, सूरत पर हवाइयाँ वरसतीं—और दिन-रात कमरे में वन्द नशे में डूवा रहता। रात उसकी अपनी थी। माँ ने थोड़ा-वहुत समझाया, पर इधर वे लद्दाख और नेफा के जवानों के लिए अचार-मुरब्वे तैयार कर, ख्याति का टोकरा भर रही थीं, घर के जवान को देखने का समय ही किसे था! वार-वार उन्हें यही लग रहा था कि जितना समय उसे समझाने में व्यर्थ गया, उतने में वीस सेर सेव का मुरब्वा वन जाता। पिता ने हाथ-पैर जोड़े, अपने सफेद वाल दिखाये, कुल की मर्यादा की ओर ध्यान खींचा, पुरखों ने जिस संयम से शिखासूत्र की आन को निभाया था, उसका स्मरण दिलाया। पर छूटा तीर जैसे कमान पर नहीं लौटता, हाथ से गया वेटा भी आसानी से नहीं लौटता। एक ही साँस

में उन्होंने उसे अँग्रेजी की वे सभी गालियाँ दे डालीं जो उन्हें याद थीं। पर अँग्रेजी में गालियाँ देकर उनका मन नहीं भरा तो फिर हिन्दी में एक से एक कदर्य गालियाँ देने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने सर उठाकर देखा तो वे अकेले ही गालियाँ दिये जा रहे थे, उनका सुपुत्र चला गया था। उन्हें वे दिन याद आने लगे जब नन्हा धरणीधर, उनकी एक डाँट से सहम कर आँखों में आँसू भरे कर उनके पास खड़ा होकर कहता था— "अब कभी नहीं करूँगा पापा!" पर जिन आँखों का पानी ही मर गया था उनमें अब पानी आता ही कहाँ से!

बड़ी देर तक रुद्रदेव, घुटनों में सिर डाले सिसकते रहे। लड़का शराब ही पीता तो उन्हें दुख नहीं था, पर कल उनके अन्तरंग मित्र गौरीशाह, शिबी की बातें सुना गये तो वह कट कर रह गये। हो सकता था, शाहजी बातें बना गये हों। ब्राह्मणों की दुर्गति देख कर कुमाऊँ के शाह कब प्रसन्न नहीं होते। पर नहीं, ऐसी बातें हवा में उड़ कर नहीं आतीं। शिबी को उन्होंने कई बार देखा था और देख कर उनका रसिक चित्त कई कलाबाजियाँ भी खा गया था। पर उसकी छत पर उन्होंने एक दिन राह चलते अपनी पत्नी का गुलाबी गाउन सूखता पहचान लिया था। तीन दिन तक वे क्लब भी नहीं गये और उदासी का मातम मनाते रहे थे।

पत्नी को पति-पुत्र की कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। उन्हें महिला-समाज के किसी जलसे में मद्रास जाना था, उसी की तैयारी में लगी रहीं।

उधर शिबी की रासलीला पूरे रंग में थी। डिकी आधी रात से बहुत पहले ही जम जाता था। शिबी के धोबी, सुनार और बजाज प्रेमियों के दल ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। उनका कहना था कि वे उसके डिकी की बखिया उधेड़ कर रख देंगे। शिबी पर उनका भी उतना ही अधिकार था जितना डिकी का। शिबी बन-ठन कर माल रोड पर निकलती तो सीटियाँ बजने लगतीं, आस-पास से धोबी, चमार और मोची बड़ी

आत्मीयता से आ कर उसके कन्धे पर हाथ रख देते। धीरे-धीरे उसने बाहर निकलना भी छोड़ दिया।

डेविड और हेनरी से स्वयं ही पीछा छूट गया। डेविड को टी. बी. हो गयी थी, हेनरी भुवाली सेनेटोरियम में उसकी तीमारदारी करता था। बूढ़ा खानसामा उसे देखकर बीच-बीच में सीटी बजा देता था, पर एक दिन उसकी बीवी ने देख लिया और ऐसा तमाचा कसा कि बूढ़े के बचे-खुचे तीन दाँतों से जीभ को सदा के लिए मुक्ति मिल गयी।

शिबी डिकी को सचमुच ही प्यार करती थी। पर भोली किशोरी यह नहीं जानती थी कि अपने पेशे में वह पुरुष को खरीद नहीं सकती, उसे स्वयं बिकना होता है। डिकी के पिता रुद्रदेव बड़े क्रूर और छक्के-पंजे के व्यक्ति थे। वह समझ गये कि पुत्र के पैर में गड़े उस गोखरू काँटे को एक ही झटके से निकाल कर फेंकना होगा। अब प्रश्न था कि शिकार को झटके से मारें या हलाल से।

हल्द्वानी में उन्होंने दो गुण्डे पाल रखे थे, महबूब और महमूद। एक इशारा करते ही वे शिबी को काली पार नैपाल की सरहद पर छोड़ आये। फिर उन्होंने पुत्र को सँभाला। अपने साथ वे उसे जावा-सुमात्रा और गोवा-अन्दमान की ओर उड़ाते ले गये। अपने व्यापार का चुग्गा दिखाया। अपने वैभव की उदधि में उसे कई डुबकियाँ लेने को बाध्य किया। उन्होंने कहीं पढ़ा था कि पेंग्विन पक्षी अपने बच्चे को, बड़ी निर्ममता से चट्टान से धकेल कर उड़ना सिखाता है। ऐसे ही उन्होंने भी अपने पुत्र को गोवा की एक करानी चट्टान से नीचे धकेल दिया। सचमुच ही लड़का एक ही धक्के में उड़ना सीख गया। बाप-बेटे तस्कर विद्या में एक-दूसरे को ही पछाड़ने लगे। लाखों का सोना और घड़ियों, फ्रिज और विदेशी शराब अपने भाग्य की नौका में लाद कर दोनों भारत लौटे।

एक प्रसिद्ध उद्योगपति की कन्या से पुत्र का विवाह हुआ तो रुद्रदेव ने एक लाख रुपया सुरक्षा कोष में दान दे डाला। लोगों में कानाफूसियाँ चल

पड़ीं, इतना रुपया आया कहाँ से ? पर पुण्य-यज्ञ की पावन आहुति में आलोचना के लिए स्थान नहीं रहता। उधर सुनार को चौदह कैरट ने अधमरा कर दिया था। दर्जी सीजन में छोले-मटर बेचने लगा था। 'अब किसके ब्लाउज सिलूँ ! मेरी आँखों में तो एक ही नाप का नक्शा खिंचा है; भाई'—वह अपने मित्रों से कहता। डेविड भुवाली में घुल रहा था। इधर हेनरी खाँसने लगा था—शिवी के प्रेमियों की पूरी कतार का जनाजा उठ चुका था।

• •

विदेश से रुद्रदेव लौटे तो पुष्पहारों से गर्दन टूटी जा रही थी, कितने सहभोज हुए और कितने उद्घाटन ! अल्मोड़े के कुष्ठाश्रम का नया महिला वार्ड बना था। लोगों का बड़ा आग्रह था कि रुद्रदेवजी अपने मनोज करों से कुष्ठाश्रम के नये विंग का उद्घाटन करें। हँसते-मुस्कराते रुद्रदेवजी वहाँ पहुँचे तो कोढ़ियों ने अपने विकृत हाथों से तालियाँ बजा-बजा कर उनका स्वागत किया। सचमुच कैसे महान् थे रुद्रदेवजी ! अपंग, घिनौने रोगियों के बीच खड़े होने में उनके चेहरे पर घृणा की एक शिकन भी नहीं उभरी।

अचानक वे महिला वार्ड के नये रंग लगे द्वार पर थमक कर खड़े रह गये। द्वार के आर-पार नया रेशमी रिबन टँगा और एक चांदी की तश्तरी में नयी कैंची लिये खड़ी थी शिवी। यह कैसे आ गयी ! उसे तो वह नेपाल भेज चुके थे, नेपाल से ही क्या वह यह राजरोग लायी होगी ! उन्होंने तश्तरी से कैंची उठायी तो पूरा शरीर सिहर उठा, तश्तरी शिवी की अंगुलियों के ठूँठ ही में सधी थी। जैसे भी हो, पहचानना नहीं होगा, पर ससुरी कहीं कुछ कह न दे। उन्होंने रिबन काटा और आगे बढ़ गये, पर जिस वस्तु को मनुष्य देखना नहीं चाहता, वही उसे बाँध लेती है। प्रकृति का यह कैसा विचित्र नियम है। शिवी ने कुछ नहीं कहा, केवल देखती ही रही। उसका चेहरा पहले से एकदम ही बदल गया था, चमड़ी मोटी पड़ कर, कहटल के छिलके-सी खुरदरी हो गयी थी, रेशमी पक्ष्म झड़ने से आँखें फटी-फटी लग रही थीं।

न जाने कहाँ से आ कर, शिवी की अँगुलियों के टूँठ को पकड़ कर एक देवकन्या-सी वालिका खड़ी हो गयी। उसकी नीलाभ आँखों ने रुद्रदेव के पाँवों में सहसा वेड़ियाँ डाल दीं। कहीं भी संशय के लिए स्थान नहीं रहा। उसके खानदान की नीली आँखें पिछली चार पुश्तों से अपनी मर्यादा निभा रही थीं। रुद्रदेव आगे वढ़े, फिर रुके, फिर वढ़े और मुड़ ही गये। अपनी जेव से वटुआ निकाला ; उसमें सौ का नोट था और एक-एक रुपये का। कभी एक नोट पकड़ा, कभी दूसरा; फिर नीली आँखों पर दृष्टि पड़ी और सौ का नोट शिवी की नन्हीं वेटी को थमाकर वे लम्बी डगें भरते निकल गये। कोढ़ियों की भीड़ में प्रशंसा की अस्फुट स्वर-लहरी गूंज उठी।

शिवी की नन्हीं वच्ची पूरे कुष्ठाश्रम का खिलौना थी। नोट थमा कर, रुद्रदेव अपनी फियट कार में बैठ गये। डॉक्टर, नर्स और अधिकारीवर्ग से विदा लेकर कार चल पड़ी, तो उन्होंने शान्ति की साँस ली।

कुष्ठाश्रम के अंयार, बाँज और वुरुंश के पेड़ों की पंक्ति को चीरती कार गेट से वाहर निकली तो कार की गुदगुदी सीट पर, रुद्रदेव ने लेट कर आँखें मूँद लीं। आँखें मूँदते ही उन्हें अपना क्षणिक औदार्य खल उठा। माना कि एक रुपये का नोट थमाया होता तो मार्ग-भर उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारती रहती, पर सौ का पूरा नोट ! उन्होंने मन ही मन संकल्प किया कि अव दौरे में चलने से पहले दस-पाँच के नोट भी अवश्य रख लिया करेंगे। आज ही वटुवे में दस-पाँच के कुछ नोट पड़े होते, तो क्या सौ का पूरा नोट एक साथ ही ऐसे निकल जाता ?

मसीहा

"तुम जायेगा !" ब्रदर वॉरेंसी ने कठोर स्वर में कहा।

"नहीं....नहीं।" उसने सुडौल गरदन दो-तीन बार झटकी और उसके शुभ्र ललाट पर काली लटों का जाल बिखर गया।

"तुम बिल्कुल जायेगा.....मदर पास। मदर बोत अच्छा प्यार करेगा। हमारा माफिक-इत्ता !" दोनों बाँहें फैलाकर ब्रदर ने भावी स्नेह की परिधि खींच दी और उनकी नीली आँखों में क्रोध और झुँझलाहट के स्थान पर परिहास झलक उठा। दोनों घुटनों में मुँह छिपाये बालिका पूर्ववत् गठरी-सी बनी बैठी रही। "पेरी, ऊपर देखो !" ब्रदर ने बड़े स्नेह से उसका माथा थपथपाया, पर क्रोध से तिलमिला कर परी ने उनका हाथ दूर झटक दिया।

"ओह, गॉड !" कह कर ब्रदर ने एक लम्बी साँस खींची और उठ कर वह भीतर चले गये। उनके पीछे उनका काले अलपाके का लबादा लहरें-सी उठाता परदे के पीछे छिप गया, कनखियों से देखकर, रूठी बालिका परी ने चेहरा उठाया। उसके गालों पर अभी भी आँसू सूखे नहीं थे। मिट्टी में अपनी अँगुलियों से रेखाएँ खींचती वह आप ही आप पहाड़ी में बड़बड़ाने लगी, जैसे उसका मृत पिता हुकुमसिंह कहीं पास में ही खड़ा हो : "मुझे छोड़-छाड़ कर अपने तो भाग गये, अब यह फिरंगी साहब भी मुझे भगा रहा है ! आया है बड़ा भागनेवाला ! देख लूँगी, हाँ !" भीतर से कोने का परदा सरका कर ब्रदर ने देखा, बेचारी सिसकती, आँखें पोंछती, धूल से खेल रही थी। कैसे संकट में पड़ गये थे वह। डूबती

परी को जीवनदान दे कर स्वयं ही अतल जल में डुबकियाँ लगाने लगे थे। पर इस तरह तो काम नहीं चलेगा। सख्ती से ही काम लेना होगा। उन्होंने रेवरेंड मदर सुपीरियर की चिट्ठी फिर उठा ली। कितना प्यारा खत था! अनाथ बालिका के लिए मदर की चिट्ठी दोनों बाँहें फैलाये स्वयं जननी का आह्वान थी।

"ब्रदर वॉरेसी", उन्होंने लिखा था : 'तुम लिखते हो कि दयालु प्रभु ने मेरे लिए एक नन्हीं, प्यारी सौगात भेजी है। उसका हमारे कन्वेन्ट में हार्दिक स्वागत है। तुम्हारे अदम्य साहस और अथक परिश्रम का पूरा ब्योरा फादर पॉल से सुन चुकी हूँ। नैनीताल के प्रलय की भयंकर घड़ी में तुमने अपनी जान संकट में डाल कर बीसियों जानें बचायीं। तुम लिखते हो कि अब तुम्हारे बँगले का अस्पताल खाली हो गया है, केवल एक अनाथ बालिका रह गयी हैं। उसे तुम कब तक भेज सकोगे, लिखना, जिससे मैं डाँडी-कुलियों का प्रबन्ध करके भेज सकूँ।"

ब्रदर ने चिट्ठी मोड़ कर पेपरवेट से दाब दी। सामने ऊँचे देवदार की छाया में 'सेंट जॉन इन विल्डरनेस' का बुर्ज मटमैला लग रहा था, पर ऐसे ही उलझन के क्षणों में कैसी शान्ति मिलती थी सेंट जॉन के गिरजे को देख कर! भयंकर भूकम्प के बाद नैनीताल नयी विधवा के उजड़े सुहाग-सा स्तब्ध पड़ा था। ब्रदर वॉरेसी के अधिकांश मित्र और सहयोगी परिवार सहित बँगलों में दब-दब कर चिरनिद्रा में सो गये थे। विक्टोरिया होटल का अस्तित्व पानी के बुदबुदे की भाँति विलीन हो गया था। सत्रह कुचली-दबी, अधमरी कायाओं को बटोर कर वह अपने बँगले में ले आये थे। जहाँ आसपास के नये बँगले भी प्रलय की चपेट में चटक कर रह गये थे, उनके हलके कागज की-सी छत का लाल बँगला सेन्ट जॉन की वरद छाया में सिर उठाये खड़ा था—टूटना तो दूर, खिड़की का एक काँच भी नहीं तड़का था! यह सब प्रभु की कृपा थी। सत्रह रोगियों की दिन-रात सेवा कर वह केवल सात को ही बचा पाये थे। सब उस गोरे

विदेशी से असीम कृतज्ञतापूर्वक विदा लेकर अपने-अपने आत्मीय जनों के पास चले गये थे। बच गयी थी केवल एक भाग्यहीना बालिका—परी। नैनीताल के एक पहाड़ की पूरी बस्ती ही जादुई उड़नखटोले-सी उड़ कर ताल में समा गयी थी। इसी पहाड़ पर कर्नल विकी का बँगला था। बँगले के अहाते में उनका चौकीदार हुकुमसिंह भी रहता था। उसकी पत्नी बहुत पहले मर गयी थी। एक ही लड़ली थी—परी। गोरी-चिट्टी, लम्बी और बेहद दुबली। बड़ी-बड़ी आँखों ने फैल कर सारे चेहरे को घेर लिया था। सुघड़ नाक और रसीले अधरपुट का अस्तित्व ही खो गया था। हुकुमसिंह की दो भैंसें थीं। सब साहब लोगों को वही दूध देता था। ब्रदर के बँगले में दूध देने जाती थी परी। एक दिन बेटी के साथ हुकुमसिंह आया और सिर खुजा कर बोला, "साहब, दो सौ एडवान्स लेगा। लड़की का ब्याह हैं, सरकार, इसी परी का।"

"अबी शादी?" ब्रदर ने छोटी-सी परी को देख कर कहा था। "नेई····नेई, अबी बिल्कुल बच्चा है।" और परी लजा कर बाप के पीछे छिप गयी थी। हुकुमसिंह दो सौ रुपये ले गया, पर लौटाने का उसे ससय नहीं मिला—दूसरे ही दिन उसकी योजना भूकम्प में दब कर रह गयी। भयंकर गर्जना से नैनीताल काँप उठा था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ दानव-से लुढ़कते चले आ रहे थे। चारों ओर गर्द और धुएँ का गुब्बार था। चीखें और दिल दहलानेवाली भयंकर गर्जना! ब्रदर को कुरसी सहित किसी हवाई शक्ति ने उड़ा कर दूर पटक दिया। वह उठ कर मल्लीताल की ओर भागे। ताल ने रंग बदल दिया था। सहस्रों बँगलों, पेड़ों और पहाड़ों का दलिया-सा पक रहा था। यह भूकम्प नहीं था, मानो ईश्वर की क्रुद्ध भृकुटी तनी थी। घुटने टेक कर ब्रदर मृत व्यक्तियों की आत्माओं की शान्ति के लिए जब प्रार्थना कर रहे थे, तब उन्हें ताल में हाथ-पैर फेंकती एक गठरी-सी दिखी। भाग कर वह कूदे। ताल के हिमशीतल जल की जिद्दी लहरों को पराजित कर गठरी को छीन कर किनारे लाये, तो देखा,

वह हुकुमसिंह की सुन्दर पुत्री परी थी। काश, उस दिन डूबने दिया होता उसे !

ब्रदर ने अपना पूरा ड्राइंग रूम खाली कर उसे इन्फरमरी (शुश्रूपालय) बना दिया। उनके ड्राइंग रूम की तड़क-भड़क फारस के शाही दरबार से कुछ कम न थी—बड़े-बड़े मखमली परदे, लटकते झाड़-फानूस, मोटा ईरानी कालीन, शिपनडेल का फर्नीचर और ऊँचे-ऊँचे जापानी फूलदान। सर्वस्वत्यागी तरुण वैरागी ब्रदर विलासी नहीं थे, किन्तु इनकी परिमार्जित रुचि को उनका वैराग्य जीत नहीं सका था। ब्रदर के पिता बहुत बड़े अर्ल थे। उनकी माता थीं बैरन की पुत्री। माता-पिता में अनबन रहती। पिता भागते शिकारी ग्रेहाउण्डों के पीछे और माँ बन गयी थीं बैलेरीना। अपनी सुडौल एड़ियों को नन्हें जूतों में बाँध-बाँध कर वह घंटों आईने के सम्मुख अपने ही सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर नाचतीं। शिशु बॉरेसी को न माँ का स्नेह मिला, न पिता का अनुशासन। डब्बे के दूध और गवर्नेस के खरीदे स्नेह की छाया में होनहार बिरवा के चिकने पत्ते मुरझा कर रह गये। बचपन से ही बॉरेसी को गाम्भीर्य ने घेर लिया। उनके साथ के लड़के बॉक्सिंग करते लहू-लुहान हो जाते और उनके क्रूर खिलवाड़ से सहम कर बॉरेसी की आँखों में आँसू उतर आते। छुट्टियों में अपने प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल से बॉरेसी घर आये। पाउडर रंग से रँगे चेहरे का रंग न मिट जाये, इसका विशेष ध्यान रख माँ ने अपने मृणाल-बाहुदंडों में उन्हें जकड़ कर पूछा, "बड़ा होकर क्या बनेगा मेरा बेटा ?"

"मसीहा।" किशोर स्वर में वज्र गाम्भीर्य था।

"ओह, माई गॉड !" लेडी बॉरेसी के हाथ से नाच का पंखा गिर पड़ा था। जल्दी से क्रॉस बना कर उन्होंने पुत्र के सामने घुटने टेक दिये थे मसीहा ! क्या जाने सचमुच ही प्रभु ने उनके पापों का प्रायश्चित्त कराने पुत्र-रूप में जन्म ले कर उन्हें धन्य किया हो। दिन-रात अध्ययन में डूब कर बॉरेसी सांसारिक बंधनों से दूर हट गये। अगम्य और तात्त्विक ग्रन्थों

की ग्रन्थि ने उन्हें बाँध कर सामान्य मानव से ऊँचा उठा दिया। एक दिन अगाध वैभव को ठोकर मार कर वह भारत चले आये। वह उन सामान्य पर्यटकों की लालसा से नहीं खिचे, जो भारत के 'ताज' को देखने की ललक लिये चले आते थे। वह वेद और वेदान्त के भारत की खोज में निकले थे—बुद्ध और महावीर के भारत के अनुसन्धान में। पश्चिम के वैरागी को ज्ञान के सन्तोष की कुंजी मिल गयी थी, किंतु त्याग और सेवा का सन्तोष नहीं मिला था। पहले वह वॉल्टेयर में मिशनरियों के साथ रहे, फिर चन्द्रनगर में और अन्त में नैनीताल आये। अठारहवीं शताब्दी का नैनीताल तब अँगरेजों की नयी खोज का एक मैला-सा हीरा था। 'सेण्ट जॉन इन विल्डरनेस' का गिरजा नयी अँगरेज वस्ती का प्रहरी-सा बना खड़ा था। वॉरेंसी के शान्त और साहसी व्यक्तित्व की पादरी-समाज में बड़ी चर्चा थी, इसी कारण उनकी नियुक्ति की गयी। एकान्त, निर्जन वनस्थली की गोद में बसा नैनीताल तब आज का नैनीताल नहीं था। शेरों की दहाड़ से दिनदहाड़े अयारपाटा गूँजता रहता था। भालुओं के आतंक से पाँच ही बजे लोगों की रात्रि आरम्भ हो जाती थी। देवदार और अयार के गहन वन में गर्वोन्नत बुर्जवाले सेण्ट जॉन का गिरजा था और उसी के अहाते में था ब्रदर का लाल बँगला। वॉरेंसी के सद्‌गुणयुक्त पुरुषार्थ और विवेक के बीच उनकी अन्तिम मरीज—परी—उनका सिरदर्द बन गयी। वह सरल बालिका किसी भी तरह अपने जीवनदाता को छोड़ने को तैयार नहीं थी। रात-रात जाग कर साहब ने उसकी कितनी सेवा की थी! उधर वॉरेंसी बीमारी में नितान्त बालिका-सी दिखती, बिस्तर से घुली-मिली परी को सहसा अनिंद्य रूपसी के रूप में देख स्तब्ध थे। उनकी कम्युनिटी के फादर उन्हें अच्छी तरह जानते थे, किन्तु फिर भी पन्द्रह-सोलह वर्ष की सुन्दर बालिका को अपने बँगले में रखना कहाँ की बुद्धिमानी थी!

इतने दिनों तक कार्यरत वॉरेंसी को परी का रूप-माधुर्य अछूता ही छोड़ गया था। उन्हें इसका भान तब हुआ, जब उनके परम स्नेही फादर

पॉल उनसे मिलने आये। वय-भार से नमित अस्सी वर्ष के बूढ़े पादरी न जाने कैसे बँगले के नीचे दब कर भी जीवित निकल आये थे। लाठी टेक कर पॉल वॉरेंसी से मिलने आये और उन्हें गले लगा कर बोले, "मेरे खूबसूरत बेटे, मैं आज कितना खुश-किस्मत हूँ कि इस भयानक प्रलय के बाद भी तुम्हें सलामत देख रहा हूँ! अरे, यह कौन है?"

फादर ने देखा, हाथों में चाय की ट्रे लिये लजाती हुई परी वहाँ खड़ी थी।

"यही मेरी आखिरी वार्ड है, फादर," वॉरेंसी ने कहा और फादर के झुर्रीदार आनन्दी चेहरे पर सुनहरी हँसी बिखर गयी।

"मौत, मुर्दे, चीख और मातम के बाद इसके प्यारे चेहरे की खूबसूरती कितनी स्वर्गीय लग रही है, ब्रदर! अपनी खोयी जवानी का अफसोस जिन्दगी में मुझे आज पहली बार हो रहा है," कहकर बूढ़े फादर ने जोर से ठहाका लगाते हुए ट्रे थाम ली और परी से पूछा, "नाम क्या?"

"परी," वह बोली।

"ओह, तुम एकदम फेयरी! बोत अच्छा, तुम बोत प्यारा!", फादर ने हँसकर कहा। अपने सौन्दर्य की प्रशंसा समझने के लिए नारी को कभी भाषा समझने की आवश्यकता नहीं होती। सब समझ कर परी लजा कर बाहर भाग गयी। तीन महीनों में पहली बार वॉरेंसी को लजाती, तीर-सी छिटक गयी परी का सौन्दर्य सचमुच स्वर्गीय लगा।

"मैं इसे कल मदर के पास भेज रहा हूँ।" फादर से वॉरेंसी ने कहा, "मुझे तो समय नहीं मिलेगा, क्या आप कृपा कर इसे उनके पास पहुँचा देंगे?"

"क्यों नहीं....क्यों नहीं! ऐसी सुन्दर सौगात अस्सी वर्षों में पहली बार मिली है।" परिहास-रसिक बूढ़े पादरी ने वॉरेंसी की ओर देख कर एक आँख मीच कर कहा, "तुम बड़ी समझदारी का काम करते हो, ब्रदर। तुम्हारी नीली आँखें, चौड़े कन्धे और यह अनोखा व्यक्तित्व उड़ती

चिड़ियों को भी अपनी जादुई डोर में बाँधने की शक्ति रखता हूँ। तुम अपोलो हो, मेरे बेटे ! मैं कल ही इसे ले जाऊँगा।" फिर अपनी रसिकता पर स्वयं ही हँसने लगे फादर पॉल।

फादर चले गये, पर वॉरेसी की छाती पर भारी चट्टान-सी आ गिरी। परी उनके नाइट सूट का ढीला कोट और पाजामा पहन कर दबे पैरों उनके पैरों के पास आकर बैठ गयी, किन्तु नित्य की भाँति ब्रदर उसके माथे को प्यार से थपथपा नहीं सके। दोनों के बीच सहसा एक अभेद्य भित्ति-सी तन कर खड़ी हो गयी थी। कल तक जिस परी की कलाई के मैल को स्पंज से रगड़ कर ब्रदर ने छुड़ा दिया था, वही कलाई उन्हें क्रुद्ध नागिन के फन-सी लग रही थी।

"पेरी, हम खाना माँगता," बड़े प्रयत्न से ब्रदर ने कहा और यंत्र-चालित-सी परी उठ कर मेज पर डबल रोटी, चाकू, उबले अंडे और भुने आलू रख गयी—यही साहब का खाना था। छौंकी-भुनी सब्जी के लिए परी तरसने लगी थी। कैसे बढ़िया पहाड़ी जम्बूसे छौंके आलू बनाते थे उसके बाज्यू ! छिः छिः ! न जाने कैसा उबला खाना खाता है यह साहब ! न मिर्च, न मसाला ! न तेल, न छौंक ! ठीक ऐसा ही उबला-उबला मन भी है साहब का, पर कितना सफेद रंग है। एकदम गोरा-चिट्टा, जैसे सफेद डाँसी का पत्थर हो। और आँखें कितनी नीली हैं और होंठ कितने लाल ! बाप रे बाप, एकदम चटक बुरुंश के फूल-सा खूनी रंग !

अपनी ओर मुग्धा परी को एकटक देखती देख वॉरेसी काँप कर रह गये। अनाथ विदेशी किशोरी के प्रति अनजाने मोह से फिरंगी पादरी का विरागी-चित्त व्याकुल हो उठा। बड़ी रात तक वह परी की सिसकियाँ सुन रहे थे। वह सिसकियों के बीच सो गयी, पर वॉरेसी नहीं सो पाये। कहाँ रह गया था छिद्र उनकी कठोर साधना के अन्धकारमय सुरक्षित कक्ष में ? जहाँ आलोक की एक किरण का प्रवेश भी निषिद्ध था, वहाँ अब पूर्ण प्रकाश था। सुबह हुई और फादर पॉल डाँडी ले कर उसे लेने आ गये।

"नहीं....नहीं....नहीं !" परी ने जिद-भरे स्वर में कहा और दोनों हाथों से मुँह ढँक कर रोने लगी।

"ओह, तुम रोता !" फादर का स्वर करुणा और स्नेह से भारी हो गया। "ये साब बहुत अच्छा, इस वास्ते रोता ? परवा नेई, मदर बोत अच्छा—साहब से भी अच्छा।" हँस कर फादर ने बड़े प्यार से परी की ठोड़ी उठायी। "ऊपर देखो, इस माफिक चलो। साब को सलाम बोलो।"

हृदय के उमड़ते गुब्बार को पी कर बॉरेंसी ने आँसुओं से भीगे परी के मुरझाये गुलाब-से चेहरे को देखा। बिना कुछ कहे परी डाँडी में बैठ गयी।

बहुत दिनों बाद बॉरेंसी अपने बँगले में अकेले थे। पूर्णिमा की चाँदनी में उनके लेख लगे परदे से दिखता हिमालय भव्य लग रहा था। सत्रह मील की दूरी और मदर के अनुशासन की कब्र में उन्होंने परी की स्मृति को सदा के लिए दबा दिया था। एक बार फिर वह अपनी साधना के दुर्गम मार्ग पर निर्भय चल देंगे। किसी के सलोने सुन्दर चेहरे की सरल मुसकान उनके हृदय को नहीं कँपा सकेगी। उनके नाइट कोट की लम्बी-लम्बी बाँहें झुलाती किसी चीनी बालक की-सी सुकुमार आकृति उनकी साधना में व्याघात नहीं डाल सकेगी। तीन दिन पूरे हो गये थे। बड़ी रात तक बाइबिल पढ़ कर वह सो गये। मोमबत्ती के हलके प्रकाश में दीवार पर टँगी 'रोजेरी' हवा में झूल रही थी। इतने में किसी ने द्वार खटखटाया।

"कौन ?" ब्रदर उठ बैठे। शायद गिरजे का चौकीदार हीरासिंह होगा। उसके बेटे को गरदनतोड़ बुखार हो आया था। कहीं कुछ हो न गया हो बेचारे को !

"हीरा, हम आया।" वह ड्रेसिंग गाउन डाल कर उठे। द्वार खोला, तो सन्न-से रह गये।

"पेरी ! तुम ! कैसे आया ? ओह माई गॉड !"

ब्रदर ने काँपती क्षीण काया को थाम लिया। माघी पूर्णिमा से धुले

नैनीताल पर कुहरे का कफन पड़ गया था। वर्फीली हवा में आकाश के तारे भी जम कर रह गये थे। जिसे अवहेलना और आदर से ब्रदर ने पैर में गड़े काँटे की भाँति वेरहमी से खींच कर फेंक दिया था, वही सत्रह मील की दुर्गम दूरी फाँद कर भूखी-प्यासी फिर उन्हीं वाँहों में भाग आयी थी। दुर्वल बीमारी से उठा शरीर ज्वर की तीव्र दहन से सूखे पत्ते-सा काँप रहा था।

"पेरी....पेरी !" वाँरसी ने उसे अपने लवादे से लपेट कर बिस्तर पर लिटा दिया। "ओ पेरी, तुम क्यों भागा? ओह माई स्वीट ! तुम क्यों भागा ?" पागलों की तरह वह पेरी के गरम गालों पर झुक गये। फिर लपक कर उन्होंने आलमारी से ब्राण्डी निकाल कर परी के हाथ-पैरों पर मली और किसी तरह दाँतों के बीच ब्राण्डी उँड़ेल दी।

ब्राण्डी गट-गट पी कर परी ने ज्वर से लाल आँखें खोल दीं। "नहीं.... नहीं....नहीं !" उसने ज्वर की वेहोशी में ही माथा हिलाया और दोनों हाथों से वाँरसी को जकड़ लिया। "हम नहीं जायेगा !"

"तुम नेई जायेगा, पेरी ! तुम इधर रहेगा," कह कर वाँरसी ने उसका माथा चूम लिया। परी जैसे इसी आश्वासन के लिए रुकी थी, वह फिर वेहोशी में डूब गयी। गले और छाती की घरघराहट और टँगी-टँगी दृष्टि देख कर वाँरसी घवरा कर जख्मी शेर की भाँति चक्कर काटने लगे। कभी सिरहाने वैठते, कभी उठते, कभी घुटना टेक कर प्रार्थना करते और कभी परी का मुरझाया अचेतन चेहरा एकटक देखते रहते। सवेरे ही मदर ने फादर पॉल को कन्वेन्ट से गरदनतोड़ बुखार में भाग गयी परी को खोजने भेजा। फादर ने देखा, परी की मृत देह गोद में लिये, शून्य अन्तरिक्ष को निहारता उनका अपोलो स्तब्ध वैठा था।

"कन्वेन्ट में ही इसे गरदनतोड़ बुखार हो आया था। वहीं से कल रात बुखार की वेहोशी में भाग आयी, अभागिनी !" फादर ने क्रॉस वना कर परी के शान्त चेहरे पर चादर खींच दी।

उस दिन से वाँरसी सचमुच ही मसीहा वन गये। वत्तीस वर्षों का

पिछला जीवन सहसा अन्धकारमय बन गया। बँगला छोड़कर उन्होंने उसी दिन अपना तबादला अल्मोड़ा के सीमान्त पर बसे कुष्ठाश्रम को करवा लिया। पीव से गले, कीमा बन गये कुष्ठ-रोगियों के वीभत्स घावों को वह अपने हाथों से साफ कर दवा लगाते, उन्हें बाइबिल पढ़ कर सुनाते। उनकी घिनौनी दुनिया का अभिशप्त जीवन ही अब उनका सांख्य, योग और दर्शन था। क्रिसमस में फादर पॉल अपनी जर्जर काया को लाठी पर टेकते अपने बिछुड़े मित्र से मिलने आये। बॉरेसी एक गलित कुष्ठ रोगी की झड़ गयी अँगुली के घाव को धो रहे थे। फादर पॉल को देखते ही जीवन की बन्द पुस्तक के पन्ने फरफरा उठे। वह लपके तो बूढ़े फादर ने उन्हें छाती से लगा लिया। सदा हँसने-हँसानेवाले बूढ़े फादर सुबक उठे: "मेरे खूबसूरत दोस्त, कभी मैंने तुमसे कहा था कि तुम अपोलो हो! ऐ मेरे खुदावन्द, मुझे मेरी नादानी के लिए माफी दे! यह अपोलो नहीं, मसीहा है—एक बहुत ऊँचा और सच्चा मसीहा!"

पिटी हुई गोट :

दिवाली का दिन। चीनापीक की जानलेवा चढ़ाई को पारकर जुआरियों का दल दुर्गम-बीहड़ पर्वत के वक्ष पर दरी विछा कर विखर गया था। एक ओर एक बड़े-से हंडे से बेनीनाग की हरी पहाड़ी चाय के भभके उठ रहे थे, दूसरी ओर एक पेड़ के तने से सात बकरे लटका कर आग की धूनी में भूने जा रहे थे। जलते पशम से निकलती भयानक दुर्गन्ध, सिगरेट व सिगार के धुएँ से मिल कर अजब खुमारी उठा रही थी। नैनीताल से चार मील दूर, एक बीहड़ पहाड़ी पर जमा यह अड्डा आवारा रसिकजनों का नहीं था। सात-आठ हज़ार से कम हस्ती का आदमी वहाँ प्रवेश भी नहीं पा सकता था। टेढ़ी खद्दर की टोपी को बाँकी अदा से लगाये तरुण नेता महिम भट्ट, मालदार कुन्दन सिंह, कुँवर लालबहादुर, सुन्दर जोशी आदि एक-से-एक गण्यमान्य व्यक्ति, महालक्ष्मी की पूजन-प्रसादी ग्रहण कर अपने गुप्त अड्डे पर पहुँच जाते। छाती से ताश की गड्डी चिपका कर, टेढ़ी आँखों से दूसरे खिलाड़ी के पत्तों की ग्रहस्थिति भाँपना, झूठी गीदड़-भभकियाँ दे कर चालें चलना, उन सिद्धहस्त पारंगत खिलाड़ियों के बायें हाथ का खेल था। उस दायरे में प्राय: आठ-दस ही खिलाड़ी रहते, क्योंकि चीनापीक के उस बादशाही खेल की चालें चलना हर किसी के लिए सम्भव भी नहीं होता। मिनटों में ही वहाँ एक हजार की चाल तिगुनी कर पत्ते खुलवाये जाते, कभी कत्थे और चीड़ के ठेके दाँव पर लगाये जाते और कभी अयारपाटा और अपर चीना-स्थित भव्य साहबी बँगले। नैनीताल के कई लखपती चीनापीक की उसी वीरानी से वीरान बन कर लौटे थे,

फिर भी प्रत्येक महालया को उसी धूम और उसी गरज-तरज से फिर अड्डा जम जाता। "कल रात सुना चीनियों ने हमारी तीन चौकियाँ और जीत लीं," लालशाह ने हाथ में सुरती मल कर, अपने मोटे लटके होंठों के भीतर भर कर कहा।

"अबे, हटा भी ! कहाँ की मनहूस खबर ले आया ! सारे पत्ते बिगाड़ दिये !" लालशाह को कुहनी से मार कर विक्रम पालथी समेट, ओट में अपने पत्ते देख कर बोला, "लें, देखें चीनी एक हाथ हमारे साथ ! दस-दस को इसी तरह पटक दूँगा !," पत्ते पटाख से जमीन पर फेंक कर उसने कहा। पिछली बार वह अपनी शाहनी की, शुतुरमुर्ग के अंडों के आकार की नैपाली मूँगमाला यहीं हार गया था, इसी से साधारण पत्तों पर वह झूठी चाल नहीं चल रहा था।

"लो भई, एक चाल मेरी !" चुटकियाँ बजाते महिम भट्ट ने सौ का नोट फेंका और गिद्ध दृष्टि से एक ही पल में न जाने किस जादुई शक्ति से सबके अदृश्य पत्ते भाँप लिये। पत्तों की गरिमा उसके लाल आलूबुखारे-से गालों पर भी उभर आयी, मन के उत्साह को वह किसी प्रकार भी नहीं दबा पा रहा था। कभी चुटकियाँ बजाता, कभी खद्दर की टोपी को तिरछी करता, कभी गुनगुनाता और कभी ज़ोर-ज़ोर से अँग्रेजी गानों की बेसुरी आवृत्ति ही किये जा रहा था। खेल रंग पकड़ रहा था, फरफराते नोटों को एक बड़े-से पत्थर से दाब दिया गया था, महिम भट्ट की चाल ऐसी-वैसी नहीं होती, यह सब जानते थे। वह शून्य में लटकनेवाला त्रिशंकु नहीं था। एक-एक कर सब ने पत्ते डाल दिये। केवल एक व्यक्ति ही डटा रहा और वह था एक नौसिखिया खिलाड़ी, गुरुदास ! कुछ खेल की ज़िद, कुछ चातुर्य से उकसाता खिलाड़ी महिम भट्ट उसे ले बैठे। पत्ते खुले, तो वह आठ हजार हार गया था। दोनों हाथ झाड़ कर वह उठने लगा, तो लालशाह ने खींच कर बिठा दिया, "वाह-वाह ! ऐसे नहीं उठ सकते मामू ! खेल ठीक बारह बजे तक चलेगा।"

"अव है ही क्या जो खेलूँ !" गुरुदास ने फटे गवरून के कोट की दोनों जेवें उलट दीं।

"अमाँ, है क्यों नहीं ? वह साली मेवे की दूकान का क्या अचार डालोगे ? लग जाये दाँव पर !" महिम भट्ट ने चुटकियाँ वजा कर कहा और पत्ते फिर बँट गये। वारह वजने में पाँच मिनट थे, पर गुरुदास की घड़ी में सव घण्टे वज चुके थे—वह कौड़ी-कौड़ी कर जोड़ी गयी आठ हजार की पूँजी ही नहीं, वाप-दादों की धरोहर, अपनी प्यारी दूकान भी दाँव पर लगा कर हार चुका था। ठीक घड़ी के काँटे के साथ ही खेल समाप्त हुआ। एक-एक कर सव खिलाड़ी हाथों की धूल झाड़ कर चले गये थे। कड़कड़ाती ठंड में पेड़ के एक ठूँठ तने पर अपनी कुवड़ी पीठ टिकाये, निष्प्राण-सा गुरुदास शून्य गगन को एकटक देख रहा था। अव वह क्या लेकर घर जायेगा ? उसकी प्यारी-सी दूकान, जिसकी गद्दी पर वह अपनी छोटी-सी सग्गड़ में तीन-चार गोवर और कोयले के लड्डू धमका कर, चेस्टनट-अखरोट और चेरी-स्ट्रोवेरी को मोतियों के मोल वेचा करता था, अव उसकी कहाँ थी ? महीने की रसद लाने के लिए एक पाँच का नोट भी तो नहीं रहा था जेव में। टप-टप कर उसके झुर्री पड़े गालों पर आँसू टपकने लगे, फटी वाँह से उसने आँखें पोंछी ही थीं कि किसी ने उसका हाथ पकड़ कर वड़े स्नेह से कहा, "वाह दाज्यू ! क्या इसी हौसले से खेलने आये थे ? कैसे मर्द हो जी, चलो उठो, घर चलकर एक वाजी और रहेगी।"

• •

गुरुदास ने मुड़ कर देखा, उसका सर्वस्व हरण करनेवाला महिम भट्ट ही उसे खींच कर उठा रहा था।

"क्यों मरे साँप को मार रहे हो भट्टजी ? अव है ही क्या, जो खेलूँगा !" वूढ़ा गुरुदास सचमुच ही सिसकने लगा।

"वाह जी वाह ! है क्यों नहीं ? असली हीरा तो अभी गाँठ ही में

वँधा हूँ। लो सिगार पियो।"—कह कर महिम ने अपना वर्मी चुरुट जला कर, स्वयं गुरुदास के होंठों से लगा दिया।

वढ़िया तम्बाकू के विलासी धुएँ के खुमार में गुरुदास की चेतना सजग हो उठी, "कैसा हीरा, भट्टजी ?"

महिम ने उसके कान के पास मुख ले जा कर कुछ फुसफुसा कर कहा और गुरुदास चोट खाये सर्प की तरह फुफकार उठा, "शर्म नहीं आती रे वामण! क्या तेरे खानदान में तेरी माँ-वहनों को ही दाँव पर लगाया जाता था ?"

पर महिम भट्ट एक कुशल राजनीतिज्ञ था, कौटिल्य के अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन ने उसकी वुद्धि को देशी उस्तरे की धार की भाँति पैना वना दिया था। मान-अपमान की मधुर-तिक्त घूँटों को नीलकंठ की ही भाँति कंठ में ग्रहण करते-करते वह एकदम भोलानाथ ही वन गया था। कड़ाके की ठंड में आहत गुरुदास की निर्वीर्य मानवता को वह कठपुतली की ही भाँति नचाने लगा। "पाँडवों ने द्रौपदी को दाँव में लगा कर क्या अपनी महिमा खो दी थी ? हो सकता है दाज्यू, तुम्हारी गृहलक्ष्मी के ग्रह तुम्हें एक वार फिर वादशाह वना दें।"

अपनी मीठी वातों के गोरखधन्धे में गुरुदास को वाँधता, महिम भट्ट जव अपने द्वार पर पहुँचा, तो वूढ़ा उसकी मुट्ठी में था। "देखो, इसी साँकल को जरा-सा झटका देना और मैं खोल दूँगा। निश्चिन्त रहना दाज्यू, किसी को कानों-कान खवर नहीं लगने दूँगा।"

विना कुछ उत्तर दिये ही गुरुदास घर की ओर वढ़ गया। दिन-भर वह अपनी छोटी-सी दूकान में चेस्टनट, स्ट्रॉबेरी और अखरोट वेचता था। उसकी दूकानदारी, सीजन तक ही सीमित थी, भारी-भारी वटुए लटकाये टूरिस्ट ही आ कर उसके मेवे खरीदते। पहाड़ियों के लिए तो स्ट्रॉबेरी और अखरोट, चेस्टनट, घर की मुर्गी-दाल वरावर थी। डंडी मार कर

वड़ी ही सूक्ष्म बुद्धि से वह दस हजार जोड़ पाया था, दो हजार शादी में उठ गये थे। तिरसठ वर्ष की उम्र में उसने एक वार भी जुआ नहीं खेला था, किन्तु आज लाल के वहकावे में आ गया था। लाल उसका भानजा था। "हद है मामू! एक दाँव लगा कर तो देखो! क्या पता, एक ही चोट में बीस हजार बना लो? न हो तो एक हाथ खेल कर उठ जाना।"

"तू आज भीतर से कुंडी चढ़ा कर खा-पीकर सो रहना। मुझे भीम-ताल जाना है।"—उसने पत्नी से कहा और गवरून के फटे कोट पर पंखी लपेट कर निकलने ही को था कि कुन्दन-लगी नथ के लटकन की लटक ने उसे रोक लिया। सुभग-नासिका भारी नथ के भार से और भी सुघड़ लग रही थी। अठारह वर्ष की सुन्दरी बहू को, विना कुछ कहे भला कैसे छोड़ आते! "अरी सुन तो", कह कर उन्होंने पत्नी को खींच छाती से लगा कर कहा, "तू जो कहती थी न कि पिठौरागढ़ की मालदारिन की-सी सतलड़ तुझे गढ़वा दूँ? भगवान् ने चाहा, तो कल ही सोना ले कर सुनार को दे दूँगा।" विना कुछ कहे चन्दो पति से अपने को छुड़ा कर प्रसाद वनाने लगी। तीन वर्ष से वह प्रत्येक दीवाली पर पति का यही व्यर्थ आश्वासन सुनती आयी थी। उधर वूढ़ा लहसुन भी खाने लगा था, ऐसी दुर्गन्ध आयी कि उसका माथा चकरा गया।

वह पूड़ियों की लोई बना रही थी कि द्वार खोल कर उसकी भानेज-वहू आ गयी। रिश्ते में वहू लगने पर भी वह चन्दो की हमउम्र थी और दोनों में बड़ा प्रेम था। "मामीजी, आज खूब मन लगाकर लक्ष्मीजी को पूजना, मामाजी दस हजार ले कर जुआ खेलने गये हैं।" अपने सुन्दर चेहरे से नथ का कुन्दन खिसका कर वह बोली।

जलते घी की सुगन्धि से कमरा भर गया। "हट, आयी है वड़ी! उन वेचारों के पास दस हजार होते तो कातिक में मेरी यह गत होती?" फटे सलूके से उसने अपनी वताशे-सी सफेद कुहनी निकाल कर दिखायी।

"तुम्हारी कसम मामी, ये भी तो गये हैं। इन्होंने अपनी आँखों से देखा।"

चन्दो कड़ाही में पूड़ी डालना भी भूल गयी। कल ही उसने एक गरम सलूके के लिए कहा, तो गुरुदास की आँखों में आँसू आ गये थे, "चन्दो, तेरी कसम, जो इस सीजन में एक पैसा नफा मिला हो! न जाने कहाँ के भिखमंगे आ कर नैनीताल में जुटने लगे हैं, अखरोट-चेस्टनट क्या खायेंगे। दो आने की मूँगफलियाँ ही लेकर टूँग लेते हैं। मेरा कोट देख!" कह कर उसने कोट की फटी खिड़की से कुरते की बाँह ही निकाल कर दिखा दी थी। "तू कहती क्या है बहू! दस हजार उसके पास कहाँ से आयेंगे?"

"लो, और सुनो!" लालबहू झुँझला कर उठ गयी, "तभी तो ये कहते हैं कि मामाजी ने पुण्य किये थे, जो मामी-जैसी सती लक्ष्मी मिली। मिलती कोई ऐसी-वैसी, तो जानते कै बीसी सैकड़ा होते हैं। चलूँ भाई, मुझे क्या! तुमसे माया-पिरेम है, इसी से न चाहने पर भी मुँह से निकल ही जाता है।"

वह चली गयी, तो चन्दो सोच में डूबी बैठी ही रह गयी। सचमुच वह लक्ष्मी थी, सतयुग की सती, जिसका सुनहरा चित्र कलयुगी चौखटे में एकदम ही बेतुका लगता था। तीन वर्ष पहले उसके दरिद्र माता-पिता पिठौरागढ़ के अग्निकाण्ड में भस्म हो गये थे। कभी उसने चावल चखे भी नहीं थे, मानिरा के माँड से गुजर करनेवाला उसका दरिद्र परिवार नष्ट हुआ, तो बिरादरीवाले उस अनाथ सरल बालिका को नैनीताल के एक दूर के रिश्ते के ताऊ के मत्थे पटक गये। प्रायः ही वह गुरुदास की दूकान पर सब्जी लेने जाती, कद्दू, मूली और पहाड़ी बण्डे के बीच खड़ी उस रूप की रानी पर साहजी बुरी तरह रीझ गये और एक दिन अन्धे के हाथ बटेर लग गयी। साठ वर्ष के साह ने सेहरा बाँधा, तो नैनीताल के उत्साही तरुण छात्रों ने काले झण्डे लेकर जुलूस भी निकाला, पर जुलूस के पहले ही, पिछवाड़े से साहजी अपनी दुल्हन को ले कर घर पहुँच चुके थे।

वह साह की तीसरी पत्नी थी, इसी से उनका जी करता था कि उसे भी चूल्हे के नीचे अपने दस हजार की सम्पत्ति के साथ गाड़ कर रख दें,

पर धीरे-धीरे उस सौम्य सन्त बालिका के साधु आचरण ने उसके शक्की स्वभाव को जीत लिया। न वह पास-पड़ोस में उठती-बैठती, न कहीं जाती। गुरुदास दूकान पर जाता, तो वह अपने प्रकाशविहीन कमरे में पति के पूरी बाँह के जीर्ण स्वेटर को उधेड़ कर आधो बाँह का वनाती, तो कभी आधी बाँह के पुराने बनियान से मोजे बनाती। गुरुदास नया ऊन तो दूर, सलाइयाँ भी ले कर नहीं देता था। एक बार उसने सलाइयों की फरमाइश की, तो चट-से गुरुदास ने अपने पुराने छाते से ही मोड़-माड़कर विभिन्न आकार की चार जोड़ा सलाइयाँ बना दी थीं। किन्तु पड़ोसिनों और आत्मीय स्वजनों के उभारे जाने पर भी चन्दो ने कृपण पति के प्रति बगावत का झण्डा नहीं खड़ा किया। उसे सचमुच ही पति के प्रति अनोखा लगाव था। उस लगाव में प्रेम कम, कृतज्ञता ही अधिक थी। किन्तु बचपन से वह बूढ़ी दादी और पतिपरायणा माता से पतिभक्ति का ही उपदेश सुनती आयी थी, 'पति से द्रोह करनेवाली स्त्री की ऐसी दशा होती हैं!' दादी ने अपढ़ भोली बालिका को 'कल्याण' में चील-कौओं से नोंची जानेवाली छटपटाती स्त्री का चित्र दिखा कर कहा था। फिर गुरुदास उसे बड़े ही प्यार से पुचकार कर बुलाता था, बड़े से दोने में भर कर जलेबी लाने में वह कभी कन्जूसी नहीं दिखाता था और जिसे जीवन के पन्द्रह वर्षों में मिठाई तो दूर, भर-पेट अन्न भी न जुटा हो, उसके लिए नित्य जलेबी का दोना पकड़ानेवाला पति परमेश्वर नहीं, तो और क्या होता! गुरुदास चन्दो के अन्धकारमय जीवन का प्रथम प्रकाश था। वह अपनी खिड़की से नित्य नवीन साड़ियों में मटकती, सीजन की सुन्दरियों को देखती, तो कभी भी उसे डाह नहीं होता। गुरुदास दूकान से लौटता, सँकरी सीढ़ियों पर पति की फटीचर जूतियों की फत्त-फत्त सुन कर वह आश्वस्त हो कर उठती, गरम राख से अंगारे निकाल कर आग सुलगाती, चाय बनाकर पति को देती, अँगुलियाँ चाट-चाट कर चटखारे लेती, जलेबी का दोना साफ करती और फिर नित्य मन्दिर जाती। मन्दिर के रास्ते में उसे प्रायः ही डिगरी कॉलिज के मनचले लड़के 'वैजन्तीमाला' कह कर

छेड़ भी देते, पर उनके फिल्मी गाने, सीटियाँ और हाय-हूय उसे छू भी नहीं सकते। वह सर झुकाये मन्दिर जाती, नित्य देवी से आँखें मूंद कर एक ही वरदान माँगती, 'मेरा सौभाग्य अचल हो माँ !' शायद उसी की सरल निष्कपट प्रार्थना ने बूढ़े गुरुदास के समग्र रोगों से एक साथ मोर्चा ले लिया था। इसी से बुढ़ापे में भी वह लहलहाने लगा था। पास-पड़ोस की स्त्रियों ने गुरुदास के कृपण स्वभाव की आलोचना को नित्य नवीन रूप दे कर चन्दो को भड़काने की कई चेष्टाएँ कीं, पर वे विफल ही रहीं। रवि, सोम और बुध को चन्दो मौनव्रत धारण करती थी। मंगल, शनि को पहाड़ की स्त्रियाँ, मिलने-मिलाने कहीं नहीं जातीं। बृहस्पति को वे दल बाँधकर आतीं, पर गुरुदास का प्रसंग छिड़ते ही, चन्दो कोई-न-कोई बहाना बनाकर उठ जाती। आज लाल-बहू ने उसका चित्त खिन्न कर दिया था, जिस पति को देवता समझ कर पूजती थी, क्या वही उसे धोखा दे गया ?

उसका नियम था कि वह पति के आने तक सदा बैठी रहती। आज भी वह बैठी थी। पति की परिचित पदध्वनि सुन कर वह उसे असंख्य उपालम्भों से बींधने को व्याकुल हो उठी, पर सौम्यता और शील ने उसके चित्त पर काबू पा लिया। हँस कर वह पति का स्वागत करने बढ़ी, पर पति के सूखे चेहरे ने उसे पीछे धकेल दिया। हार तो नहीं गये ?

● ●

"चन्दो !" गुरुदास का गला भर्रा गया। दस-ग्यारह दीये अभी भी टिमटिमा रहे थे, उन्हीं के अस्पष्ट आलोक में पति के कुम्हलाये चेहरे को देख कर चन्दो का हृदय असीम करुणा से भर आया। ममता तो अपने पाले कुत्ते के पिल्ले पर भी हो आती है, फिर वह तो उसे ही पालनेवाला स्वामी था।

"तू जल्दी पंखी डाल कर मेरे साथ चल।"

कहाँ चलने को कह रहे हैं इतनी रात ?—बिना कुछ कहे ही चन्दो ने अपनी गूँगी दृष्टि पति की ओर उठायी।

"तुझसे झूठ नहीं बोलूँगा, चन्दो ! आठ हजार और दूकान सब-कुछ हार गया हूँ। महिम कहता है कि घर की लक्ष्मी को बगल में बिठा कर दाँव फेंकूँ, तो शायद जीत जाऊँ। चलेगी, न ?" वह गिड़गिड़ाने लगा।

सरल निष्कपट चित्त के दर्पण में संसार की कलुषित फरेबी चालें कितनी स्पष्ट होकर निखर आती हैं ! चन्दो पलक मारते ही सब समझ गयी। आधी रात को उसका पति उसे महिम भट्ट के यहाँ दाव पर लगाने के लिए ही ले जा रहा था। दो ही दिन पहले वह मन्दिर के द्वार में महिम भट्ट से टकरा गयी थी। कैसा सुदर्शन व्यक्ति, किन्तु कैसी कुख्याति थी उसकी ! पास-पड़ोस में नित्य ही वह उसके दुर्दान्त कामी स्वभाव की बातें सुनती। वह युवती-विधवाओं के लिए व्याघ्र था, कितनी ही अल्हड़ किशोरियाँ उसके वैभव और व्यक्तित्व से रीझकर लट्टू-सी घूमने लगी थीं। फिर भी न जाने अन्यायी में कैसा जादू था कि एक बार देखने पर सहज ही में दृष्टि नहीं लौटती थी।

"चल-चल चन्दो, देर मत कर," उसे अपनी फटी पंखी में लपेट, द्वार पर ताला लगा, गुरुदास उसे निर्जन सड़क पर खींच ले गया।

महिम भट्ट के पिछवाड़े से होकर दोनों उसके गुप्त द्वार पर खड़े हो गये। लोहे की विराट् साँकल पर लगी छोटी-सी घंटी को दबाते ही द्वार खुल गया।

"आइए भौजी, आइए-आइए ! मेरे अहोभाग्य जो कुटिया को पवित्र तो किया !" महिम के काले ओवरकोट से उठती सुगन्धि की लपटों ने चन्दो को बाँध लिया। एक सँकरी गैलरी को पारकर तीनों महिम की कुटिया के दीवानखाने में पहुँचे, तो उसका वैभव देखकर चन्दो दंग रह गयी। छत से एक अजीब झाड़फानूस लटक रहा था, जिसकी नीलाभ रोशनी में फटी पंखी में लिपटी कृशकाया चन्दो बुत-सी खड़ी ही रह गयी।

"बैठो-बैठो भौजी, लो गरम कॉफी पियो !" पास ही धरे कीमती

थरमस से कॉफी डाल कर महिम ने कहा। चन्दो सकुचा कर पति की ओट में छिप गयी।

"ओहो, दाज्यू, ऐसे हीरे को तो इस गुदड़ी में न छिपाया होता! ठीक ही तो कहते हैं कि गुदड़ियों में ही लाल छिपे होते हैं! लो भौजी यह शाल ओढ़ो। यह पंखी तो तुम्हारा अपमान कर रही है।" अपना कीमती पश्मीना उसकी ओर बढ़ा कर महिम ने कहा। लज्जावनता चन्दो ने प्याला थामा, तो दोनों हाथों से पकड़ कर ओढ़ी गयी पंखी नीचे गिर पड़ी। नीचे क्या गिरी कि कृष्ण-मेघ को चीरकर द्यौत चन्द्रिका छिटक गयी। सब भूल-भाल कर महिम उसे ही देखता रहा। ऐसा रूप! क्या रंग था, क्या नक्श और बिना किसी बनावटी उतार-चढ़ाव के! चन्दन-सी देह की क्या अपूर्व गठन थी! लज्जा, शील और भय से सारे शरीर का रक्त चन्दो के चेहरे पर चढ़कर सिन्दूर बिखेर उठा। नारी-सौन्दर्य का अनोखा जौहरी महिम उसके अंग-प्रत्यंग की सचाई को अपने अनुभव की कसौटी पर कस रहा था और खरे कुन्दन की हर लीक उसे पद-पद पर मत्त कर रही थी।

● ●

"अच्छा! अब देर कैसी भट्टजी? हो जाये आखिरी दाँव!" गुरुदास ने प्याले की चीनी को अँगुली से चाट कर कहा।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं!" महिम ने चाँदी के पानदान से कस्तूरी बीड़ा दोनों की ओर बढ़ा कर कहा, "दाँव तो लगा रहे हो दाज्यू, पर क्या भाभी से पूछ लिया है?"

विजयी, मुँहफट उद्दाम यौवन की चोट से गुरुदास की जर्जर काया काँप गयी।

"बुरा मान गये दाज्यू?" महिम ने बीड़े से गाल फुलाकर कहा, "हिसाब-किताब साफ रखना ही ठीक होता है। देखो भाभी, दाज्यू आज सब-कुछ मुझसे हार गये हैं। तुम्हें ही दाँव पर लगाने का सौदा तय हुआ है। जरूरी नहीं है कि तुम्हें हार ही जायँ। हो सकता है कि तुम्हारी

शकुनिया दे ह की वाजी इन्हें खोये आठ हजार दिला कर, एक वार फिर मेवे की दूकान पर विठा दे। पर अगर हार गये, तो तुम आज ही की रात से मेरी रहोगी। तुम्हारे जीवन की प्रत्येक रात्रि पर मेरा अधिकार रहेगा। मैं इसका विशेष प्रवन्ध रखूंगा कि तुम्हारे पति की हार और मेरी जीत का भेद प्राण रहते हम तीनों को छोड़ और कोई भी नहीं जान पायेगा। तुम्हारी अटूट पति-भक्ति का बड़ा दवदबा है और इससे मुझे वड़ी मदद मिलेगी। तुम्हारे पति यदि हार गये, तो....''

वीच ही में महिम को रोक कर गुरुदास क्रोध से काँपता खड़ा हो गया। गुस्सा आने पर वलगम का गोला घर-घर कर पुरानी जीप के इञ्जन की भाँति उसके गले में घरघराने लगता था। अवरुद्ध कण्ठ से दोनों मुट्ठियाँ भींच कर वह बोला, ''मैं कभी हार नहीं सकता, कभी नहीं !''

''अच्छा, भगवान् करें ऐसा ही हो दाज्यू ! जल्दी क्या है ? बैठो तो सही'', मुस्करा कर महिम ने उसे हाथ पकड़ कर विठा दिया और ओवर-कोट उतार कर पत्ते हाथ में ले लिये। गरम धारीदार नाइट ड्रेस में सुदर्शन-तेजस्वी-नरसिंह महिम भट्ट, पान और दोख्ते से अपने विलासी अधरों की मुस्कान विखेरता, गावतकिये के सहारे लेटा, पत्ते वाँटने लगा। दूसरी ओर गवरून के कोट की फटी कुहनियों से, लहसुन की गाँठ-सी हड्डियाँ निकाले, दोरंगी मफलर से अपनी लाल-गीली नाक को वार-वार पोंछता गुरुदास जोर-जोर से देवी कवच का पाठ कर रहा था—'रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।' उन दोनों विवेकभ्रष्ट जुआरियों के वीच, काँपती-थरथराती चन्दो—कुमाऊँ की सरला पतिव्रता किशोरी, जिसके लिए पति की आज्ञा कानून की अमिट रेखा थी, जो पति की आदेशपूर्ण वाणी को ब्रह्मवाक्य समझ कर ग्रहण करने को सदा तत्पर थी। पत्ते वँटे, चालें चली गयीं, गुरुदास के वूढ़े चेहरे पर सहसा जवानी झलकने लगी। खुशी से झूमकर वूढ़ा नाच-नाच कर, महिम के सामने ही चन्दो को पागलों की तरह चूमने लगा। वह वेचारी लज्जा से मुँह ढाँप कर पीछे हट गयी।

"ठीक है, ठीक है दाज्यू ! दिल के सब अरमान निकाल लो। फिर मत कहना कि मैंने मौका नहीं दिया।" अपने पत्तों को चूमकर महिम ने माथे से लगा कर कहा।

"अबे, जा हट ! आया है बड़ा मौका देनेवाला ! ऐसे पत्ते ब्राह्मणों के पास नहीं आया करते, वैश्य पर ही लक्ष्मीजी कृपालु होती हैं, हाँ !" गुरुदास ने फिर नाक पोंछकर कहा।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं ! पर मैं तो तुम्हें आगाह किये दे रहा हूँ। दाज्यू, जरा सँभल के आना, यहाँ भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं।"

महिम ने चाल तिगुनी की। पत्तों को बार-बार चटखारे लेकर चूमता वह चन्दो की ओर देख कर ऐसी दुष्टता से मुस्करा रहा था, जैसे पत्तों को नहीं, उसे ही चूम रहा हो। गुरुदास ने देख लिया और गुस्से से भरभरा-कर वह पत्ते पकड़कर उठ गया। उसका शक्की स्वभाव अब तक खेल की लगन में कुण्डली मारे सर्प की तरह छिपा था—"देखो, हम ताश खेलने आये हैं, इशारेबाजी देखने नहीं।"

"वाह यार दाज्यू, कैसे खिलाड़ी हो ! ट्रेल आने पर ही पत्ते चूमे जाते हैं।" महिम के स्वर में अहंकार था।

"किसे सुना रहे हो गुरु ! यहाँ भी ट्रेल है।" बूढ़ा बुरी तरह हाँफने लगा।

"कोई बात नहीं। इसमें घबराहट कैसी ! लाखों ट्रेलें देखी हैं साहजी !"

● ●

द्यूत-क्रीड़ा के छिपे दानव ने दोनों को सहसा विवेक की चट्टान से बहुत नीचे पटक दिया। चन्दो बेचारी के लिए सब कुछ नया था। वह दोनों हाथ गोदी में धरे, आँखें फाड़कर दोनों को देख रही थी। उसकी विस्फारित भोली दृष्टि देखकर महिम से नहीं रहा गया।

"तो लो दाज्यू, खोलो पत्ते !" उसने सौ का नोट फेंका और अपने पत्ते भी खोल दिये। तीन-तीन इक्कों की ट्रेल ने बूढ़े की छाती में तीन-तीन नंगी संगीनें घुसेड़ दीं। उसके हाथ से गिरी पान, हुकुम और ईंट की बेगमें जमीन पर सिर धुन उठीं।

"वाह-वाह ! तीन-तीन बेगमें भी तुम्हारी चौथी बेगम को नहीं बचा सकीं !' महिम ने हँसकर कहा। गुरुदास कुछ देर पत्थर की तरह बैठा रहा, फिर अपने गन्दे रूमाल से आँख और नाक की जल-धारा पोंछता एक बार चन्दो की ओर देखकर बुरी तरह सिसकता किसी पिटे बालक की भाँति गिरता-पड़ता बाहर निकल गया।

महिम ने कुण्डी चढ़ा दी और बड़े प्यार से चन्दो की नुकीली ठुड्डी हाथ में लेकर बोला, "भाभी, आज से मैं जुआ नहीं खेलूँगा। जानती हो, क्यों ? आज संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति जीत चुका हूँ।"

बड़ी देर बाद कार्तिक की ओस-भीनी रात्रि के अन्तिम प्रहर में काँपती चन्दो को उसके गृह के जीर्ण जीने तक पहुँचा कर महिम तीर की भाँति लौट गया। वह कमरे में पहुँची तो कमरा खाली था। गुरुदास तड़के ही उठ कर, पाषाण देवी के मन्दिर में, नित्य मत्था टेकने जाता था। वह चुपचाप फटी रजाई सिर तक खींच कर सो गयी। कैसे नींद आयी थी, बाप-रे-बाप ! "मामी-मामी ! उठो, गजब हो गया !" लालबहू का कण्ठ-स्वर सुन वह हड़बड़ा कर उठी।

"मामी, मामाजी ताल में कूद गये। मन्दिर के पुजारी ने देखा, काँटा डाला है, पर लाश नहीं मिली। नाश हो इन जुआरियों का। बेचारे को लूट-पाट कर धर दिया !····" स्तब्ध चन्दो द्वार की चौखट पकड़े ही धम्म से बैठ गयी। किसने उसका सिन्दूर पोंछा, किसने चूड़ियाँ तोड़ीं और कौन नोंच कर मंगल-सूत्र तोड़ गयी, वह कुछ भी नहीं जान पायी। वह पागलों-सी बैठी ही थी।

"राम-राम ! वेचारा आठ हजार नकद और दूकान सब-कुछ ही तो दाँव में हार गया ! वही धक्का उसे लें गया।" पण्डितजी कह रहे थे, "सोलह बरस से मेरा यजमान था। बड़ा नेक आदमी था।"

अब तक चुप बैठी चन्दो, दोनों घुटनों में माथा डाल कर जोर से रो पड़ी। एकाएक जैसे उसे रात की बिसरी बातें याद हो आयीं। दूकान और आठ हजार का धक्का नहीं, उसके पति को जिस दूसरे ही दाँव की हार का धक्का ले गया था, उसे क्या कभी कोई जान पायेगा ?

मामाजी

कौन कह सकता था कि यह वही मरघिन्नी-सी रोहिणी है जो अपने ताऊ की लड़की की मँगनी की साड़ी पहन, हर शादी मूँड़न पर बन्नेसोहर गाती, नटनी-सी नाचती थी। आज वह किसी भी बड़े अफ़सर की पत्नी को हर क्षेत्र में मात दे सकती थी। गरमी की छुट्टियों में अब वह पहाड़ आती, तो काठगोदाम स्टेशन पर उसका असबाव, एक आँख की कानी मद्रासी आया और बेंत से मढ़ा बच्चे का कमोड पूरे स्टेशन पर उसके व्यक्तित्व की मुहर लगा देते। कभी वह बुक स्टॉल पर खड़ी होकर विदेशी पत्रिकाओं के पन्ने उलटती, कभी अपने गोरे चेहरे पर लगे धूप के चश्मे को उतार कर अँग्रेजी में अपने दोनों बच्चों को डाँटती और कभी अपनी कलाई पर बँधी घड़ी में बार-बार समय देखती। उसका व्यक्तित्व भी पति की अफसरी के साथ-साथ निखर आया था। बड़े अफसर की पत्नी बनना भी काँटों का ताज पहनना है, यह रोहिणी भलीभाँति समझ गयी थी, पर कुशल पत्नी की भाँति वह बिना मीन-मेख निकाले, जान-बूझकर भी मक्खी निगल लेती थी। हर सेर में दो छटाँक का कमीशन उसके अर्दली का जन्मसिद्ध अधिकार था। आया की तनखा, दोनों बच्चों के अँग्रेजी स्कूल की महँगी फीस, यह सब खर्चे तो थे ही, उस पर उसका रहा-सहा खून सुखाने को उसके पति राजेन्द्र ने हिसार की एक भैंस भी खरीद ली थी। चरी-भूसा, अल्लम-गल्लम से रोहिणी के चपरासी का भत्ता बड़े मजे में घर बैठे निकलने लगा, पर भैंस के साथ-साथ अर्दली की ही चमड़ी चिकनी होने लगी, घर के साहब और मेम साहब सूखने लगे।

"इससे तो आपने हाथी पाल लिया होता, तो वह भी सस्ता पड़ता; यह मुई तो हर महीने अस्सी रुपया डकार रही है !" वह भुनभुनाकर पति से कहती, पर राजेन्द्र सुनी की अनसुनी कर देता। रोहिणी को कभी संतोष नहीं हुआ। एक जिले से दूसरे को तबादला नहीं होता, तो वह पति को अकर्मण्य होने के ताने देती। तबादला होकर वह तरक्की पर जाता, तो वह उसके पिछले पद के लिए विसूरती—"इससे तो आपकी डिप्टी कलक्टरी अच्छी थी ! कलक्टर न हुए, तहसीलदार हो गये ! जब देखो तब एक न एक मिनिस्टर, डिप्टी मिनिस्टर कन्धे पर सवार हैं ! सेक्रेटरियट में जरा-सी कोशिश से पहुँच जाइएगा। रुक्की जीजी को देखिए न, जीजाजी डिप्टी सेक्रेटरी क्या हुए, रानी बन गयी हैं।"

राजेन्द्र ने भी उसे एक दिन रानी बना दिया, पर उसका बड़बड़ाना बन्द नहीं हुआ। अब वह भैंस, चपरासी और सेकेण्ड हैण्ड खरीदी गयी फियट पर बुरी तरह बरसने लगी। दुहेजू पत्नी की भाँति दुहेजू मोटर भी दिन-रात नखरे दिखाती है, इसमें कोई संदेह नहीं। उस पर राजेन्द्र गाड़ी चलाने में बेहद घबरा जाता था। इसी से साहब की चुटिया दिन-रात ड्राइवर की मुट्ठी में रहती। जब चाहे उनसे पानी भरवा ले। कभी इंजन में खराबी बता देता, कभी न जाने किस अदृश्य छिद्र से पूरी गाड़ी का पेट्रोल ही सोख लेता। पर साहब भी नहले पर दहला थे। भैंस पालते ही अहीर के जन्मजात गुण-दोष उन्होंने स्वयं ही ग्रहण कर लिये। अहीर जिस निर्लज्जता से ग्राहकों के दूध में पानी मिलाता है, उसी बेहयाई से वह अपनी अफसरी में पानी मिलाने लगे। कभी दौरे पर जाते, तो तगड़ा टी. ए. बिल बनाकर अपने विभाग को मूँड़कर धर देते। जब जी में आता, तब दफ्तर जाते। लंच के लिए लौटते, तो घण्टों खर्राटे लेते। फाइलों का अनाथ अम्बार मेज पर पड़ा रहता। बाहर घण्टी पर बैठा चपरासी ऊँघता और भीतर साहब !

● ●

रोहिणी अपने नये फ्लैट में आकर भी खुश नहीं हो पायी। एक तो

लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी, उस पर राजेन्द्र उच्चपदस्थ अफसर। दिनरात के मेहमानों ने उसकी नाक में दम कर दिया था। कभी कोई आत्मीय होल्डाल लटकाये, टोकरी लिए इण्टरव्यू के लिए चला आ रहा है, कभी कोई अपनी बदली रुकवाने। टोकरी में लायेंगे भी बस पहाड़ी सस्ते तोहफे या पाव भर की एक-एक पहाड़ी मिर्चें या फिर दस सेर का विशाल बमगोले-सा भीम कद्दू। रोहिणी के जी में कभी-कभी तो आता, कि वही कद्दू खींचकर मारे अतिथि देवता के सिर पर! पर भारतीय नारी क्या कभी ऐसा दुस्साहस कर सकती है? खूब हँस-हँस कर वह अतिथि की अभ्यर्थना करती। जाड़ों में जीजी, ताई या चाची को साथ लेकर आने का अनुरोध करती और अतिथि देवता के जाते ही पति पर बरस पड़ती।

उस दिन भी ऐसा ही हुआ। पिछली रात को पहाड़ की गाड़ी से उसके पति के देहाती उजड्ड मामाजी विदा हुए, तो उसने पति को खूब जली-कटी सुनायी थी। अपना पेट दिखाने ही ममिया ससुर कालीकुमाऊँ से चले आये थे! उनका कथन था कि उनके पेट में भयानक फोड़ा है। मेडिकल कॉलेज के चरक उनके मत से सहमत नहीं थे। उन्हें केवल वहम की बीमारी थी। ऐसा स्वस्थ पेट उन्होंने कभी नहीं देखा था। रोहिणी के कथनानुसार बुड्ढे के पेट में कोई भयानक ड्रैगन-सी जोंक थी। एक बार में बीस रोटियाँ खाकर बुड्ढा उसका पटरा बैठा गया था। उस पर रोहिणी का कहना था कि मामाजी को खिड़की से पेशाब करते उसने स्वयं देखा और राजेन्द्र कहता था कि ऐसा जघन्य कार्य उसके मामा कभी नहीं कर सकते। इसी बात को लेकर दोनों में सुबह खूब चेंचें-पेंपें हुई और आधा पेट खाकर ही राजेन्द्र उठ गया था। इसी से जब दोपहर में राजेन्द्र का फोन आया तो रोहिणी का माथा ठनका। नाराज होकर गये थे, फिर फोन कैसे आ गया!

"क्या है?" कुछ झल्लाकर ही उसने पूछा।

"सुनो, तुम्हारे देवूदा आ रहे हैं। अभी-अभी तार आया है। बड़े काम के आदमी हैं। रोहिणी, खूब बढ़िया खाना पकाना।"

रोहिणी का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। काम के आदमी हैं न खाक-पत्थर!

"भई देखो, पकवान-टाइप खाना बनवाना। आखिर पुरोहितकुल है, संस्कार थोड़े ही मिटते हैं! हमारे मामा तो हैं नहीं जो खिड़की से....."

झल्लाकर रिसीवर पटक दिया था रोहिणी ने। मायके के कुल को लक्ष्य कर फेंका गया पति का तीखा भाला उसकी छाती में घुप गया। उसके पिता पुरोहित थे, इसे बार-बार स्मरण दिलाने की कौन-सी आवश्यकता थी! चाहती तो वह भी पति को कैसे-कैसे तानों से बींध सकती थी। श्वसुरकुल की कीर्त्ति क्या उससे छिपी थी! उसकी सुन्दरी विधवा ताइया सास का उसके श्वसुर से जो रसीला मधुर सम्बन्ध था, उसे कौन नहीं जानता? अब चाहे गंगा में कितनी ही डुबकियाँ लगाकर अपने गौर ललाट को चन्दन-चर्चित कर लें, राजेन्द्र की ताई ललाट का लिखा कलुष क्या मिटा सकेंगी? आज देवूदा के आने का समाचार सुन उसकी आँखों में नन्दन का चेहरा तैर गया। भाईदूज के दिन अभागे भाई की स्मृति में उसकी आँखें छलछला उठीं। दीन पुरोहित का हतभागा पुत्र नन्दन अपनी दीदी की ससुराल में आश्रय की भीख माँगकर ही आया था। रोहिणी के पुरोहित पिता की मृत्यु हो गयी थी। दरिद्र अनाथा रूपवती बालिका को केवल उसके सौन्दर्य पर ही रीझकर उसके श्वसुर बहू बना लाये थे। रोहिणी की विधवा माता साधारण ब्राह्मण-वृत्ति करनेवाले परमानन्द पाण्डे की पत्नी थीं। पति को विवाह-यज्ञोपवीत में मिले एक-दो दुशाले और रेशमी पीताम्बर देकर ही उसने कन्यादान से मुक्ति पा ली थी। बड़े कष्ट से पुत्री को इण्टर तक पढ़ा पायी थी। समधी आग्रह कर स्वयं ही नन्दन को भी लेते गये थे। फिर एक बात और थी, नन्दन रोहिणी का जुड़वाँ भाई था। नाक, आँखें, होंठ, सब एक ही ठप्पे का—वैसी ही बड़ी-बड़ी भोली आँखें, घनी पलकों का एक ही कटाव, यहाँ तक कि दोनों के कच्चे गले की हँसी भी एक ही-सी थी। समधी को उसे देखकर लगा जैसे भाई-बहन की उस अनुपम जोड़ी में से एक ही को लेने पर एक

सुन्दर जोड़ा नष्ट होकर रह जायेगा। क्यों न भाई-बहन साथ-साथ रहें ? विधाता ने उन्हें सब कुछ दिया था। लड़का आराम से पढ़ेगा-लिखेगा। माँ क्या खिलाकर पढ़ायेगी ! बेचारी स्वयं लोगों के यहाँ फटक-बीन कर पेट पालती थी। लड़की और लड़के को दयावान समधी को सौंपकर वह बदरीनाथ की यात्रा को गयी और फिर नहीं लौटी। तीर्थयात्रियों को लेकर एक बस उलट गयी थी, उसी में रोहिणी की माँ भी गयी थी। पहले-पहले नन्दन को हाथों ही हाथों में नचाया गया, पर धीरे-धीरे वह बासी पड़ने लगा। रोहिणी की जिठानी कालिन्दी दरिद्र कुल से लायी गयी अपनी देवरानी के पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती। उसके पति बर्मा में इंजीनियर थे, इसी से विशालांगी कालिन्दी पति के वैभव-मद में चूर रहती। एक दिन नन्दन से बोली—"कहो हो छोटे पण्डित, पिता से कुछ पूजा-पाठ भी सीखे हो या निरी कोरी हँड़िया हो ? कुछ संकल्प कराना जानते, तो तुम्हें बर्मा ले चलती। वहाँ तो पितृपक्ष में जिमाने को कोई ब्राह्मण भी नहीं जुटता ! पहाड़ी घरों में भला बिना पुरोहित-पण्डों के निभती है ? अब पिछली रक्षा-बन्धन में रक्षा बाँधनेवाला भी कोई नहीं मिला....!"

"रक्षा बाँधना तो मुझे आता है न दीदी ?" समर्थन के लिए मूर्ख नन्दन ने सिर झुकाकर बैठी रोहिणी को उकसाया और जोर-जोर से सबको सुनाकर हिल-हिलकर पढ़ने लगा—"येन बद्धो बली राजा...."

"जा, भाग बाहर !" चीखकर रोहिणी ने उसे भगा दिया। कालिन्दी और उसकी ननदें जोर से हँस पड़ीं। रोहिणी की आँखें छलछला आयीं। अपने उस मूर्ख जुड़वाँ सहोदर को लेकर उसे नित्य घर-भर के ताने सुनने पड़ते। स्कूल से भाग कर वह दिन-भर सड़क के आवारा छोकरों के साथ गुल्ली-डण्डा खेलता, कभी घर भर की औरतों के पेटीकोट और ब्लाउज सुखाने छत पर चढ़ जाता, कभी एक-एक आने के पाने के लिए तीन मील दूर भगाया जाता। नन्दन में आत्मसम्मान नाम की कोई वस्तु नहीं थी और इसी बात का रोहिणी को सबसे अधिक दुःख था।

श्वसुर की मृत्यु हुई, तो सम्मिलित परिवार का दुर्ग स्वयं ढह गया। रोहिणी अपने दोनों बच्चों और भाई को लेकर पति के साथ रहने लगी। अब वह स्वतन्त्र थी। न ताइया सास का अनुशासन था, न ससुर की ताड़ना। कालिन्दी वर्मा चली गयी थी। दोनों ननदों का विवाह हो गया था। रोहिणी भाई की ओर से उदासीन रही, ऐसा भी नहीं था। उसने नन्दन के लिए दो-दो मास्टर भी लगवा दिये थे, पर वह हाईस्कूल में लगातार पाँच वर्ष फेल होकर एक पंचवर्षीय योजना पूर्ण कर चुका था। छोटी भानजी से खेलना उसे बहुत पसन्द था। कभी रोहिणी की नजर बचाकर वह नन्हीं नीलू के हाथ से बिस्कुट छीनकर खा लेता, कभी उसके मुँह से दूध की बोतल खींच कर खूब बड़ी-बड़ी घूँटें ले लेता। बच्ची जोर से रोती, पर मामा के चेहरे से अपनी माँ का आश्चर्यजनक साम्य देखकर स्वयं ही चुप हो जाती। मामा का चेहरा भी उसकी अबोध आँखों में माँ ही का था। नन्दन कभी भानजी को गोद में लिये नौकरों के सागरपेशे में चला जाता और खूब बीड़ियाँ फूँकता। गाजीपुर को राजेन्द्र का तबादला हुआ, तो नन्दन बड़ा प्रसन्न हो गया। जीजा जिले के बादशाह थे और उनकी सल्तनत में साले की खूब मौज थी। खूब बड़ी कोठी थी। उसके विराट् अहाते में इमली, बेर और आम के दरख्तों का पूरा जंगल था। एक ओर गन्ना खड़ा था, दूसरी ओर अरहर। नन्दन जब जी में आता, उस बियावान में जाकर खो जाता। दीदी के असंख्य अर्दलियों को भी इस घर के भेदी विभीषण के आने से बड़ी सुविधा हो गयी। वह साहब का अकर्मण्य साला था, इसी से उसे लट्टू-सा घुमाया जाने लगा। साइकिल टूटती, तो मूर्ख नन्दन को फँसाया जाता। नन्दन भी किसी अपराध की जयमाल ग्रहण करने को सर्वदा तत्पर रहता। जीजा के अर्दली अली मर्दान से उसकी प्रगाढ़ मैत्री थी। उसी ने उसे अफीम की कुटेव डाल दी। पहले-पहले अली अपने किशोर मित्र का शौक स्वयं पूरा करता रहा, फिर उसने नन्दन को घर की छोटी-मोटी चीजें पार करना सिखा उसे उसके पैरों पर खड़ा कर दिया। जिस दीदी की थाली में नन्दन खा

रहा था, अब वह उसी में छेद करने लगा। एक दिन राजेन्द्र की हाथ की घड़ी खो गयी। रात को खोलकर सिरहाने की मेज पर रखी थी। सुबह उठा, तो नहीं थी। थोड़ी ही देर में पूरे बँगले में तहलका मच गया। तीखी मूँछोंवाले खुर्राट दारोगा ने घर के नौकरों की चमड़ी उधेड़ दी।

"गरीब-परवर," अर्दली मर्दान का एक-एक शब्द रोहिणी को अभी भी याद था—"घड़ी मेमसाहब के भाई साहब ने चुरायी है....सरकार !" उसने दारोगा के पैर पकड़ लिये।

"क्या कहता है, कमबख्त !" दारोगा ने उसे ठोकर से दूर पटक दिया। पर घाघ दारोगा घाट-घाट का पानी पिये था, उसकी आँखों ने चोर पकड़ लिया। नन्दन जमीन पर नजर गड़ाये चुप खड़ा था।

"कसम कुरान की, सरकार, कल भैयाजी को कबाड़ी से मोल-भाव करते मैंने खुद देखा। पच्चीस रुपये माँग रहे थे....।"

राजेन्द्र का खून खौल उठा। सिर झुकाये नन्दन काँप रहा था। उसकी साढ़े तीन सौ की घड़ी पच्चीस में ! "अहमक....बेहया !"—कहकर राजेन्द्र क्रोध से अन्धा बन उसे जूते ही जूतों से ठोकरें मारता बरामदे के एक कोने से दूसरे कोने तक फुटबॉल-सा उछालने लगा। क्रोध आने पर राजेन्द्र आपे से बाहर हो जाता था। इधर जीलाधीश बनने के पश्चात् उसे हाई ब्लड-प्रेशर हो गया था। वह मारते-मारते शायद उसकी जान ही ले लेता, पर रोहिणी उसे खींचकर भीतर ले गयी थी—"अपने ओहदे का तो ख्याल कीजिए....! सब नौकर-चाकर देख रहे हैं, क्या कहेंगे, यह अभागा होते ही क्यों नहीं मर गया, आज यह अपमान तो नहीं होता !" वह रोने लगी थी। किन्तु अँधेरा होते ही जिस भाई की वह मृत्यु-कामना कर रही थी, उसी के लिए जी न जाने कैसा करने लगा। पिछवाड़े जाकर उसने देखा, आया खड़ी थी। "मेम साहब, भैयाजी तो लँगड़ाते-लँगड़ाते बँगले से बाहर चले गये थे....!" वह बोली।

"मरने दो अभागे को!"—कहकर रोहिणी ने द्वार वन्द कर दिया था।

उसका वह द्वार तव से भाई के लिए सदा वन्द ही रह गया।

○ ○

खोये भाई को ढूँढ़ने का न उसने कोई प्रयत्न किया, न राजेन्द्र ने। धीरे-धीरे नन्दन की स्मृति की छाया स्वयं ही मिट गयी। आज देवूदा के आने के समाचार से जव बच्चे 'मामाजी....मामाजी' कहकर उत्साह से कमरा ठीक करने लगे और वह पकवान बनाने में जुट गयी, तो उसकी अन्तरात्मा उसे न जाने क्यों धिक्कारने लगी। सगे मूर्ख मामा के अस्तित्व से भी अवोध वच्चे अनभिज्ञ थे और देवूदा-से ओछे व्यक्ति के लिए वह कैसी तैयारियों में जुट गयी थी! वही देवूदा, जिनके पिता उसके सगे ताऊ होकर भी उसके दरिद्र परिवार के कभी हितैषी नहीं रहे। गरमी की छुट्टियों में घर आते, तो देवूदा और उसकी वहन लक्ष्मी गन्धर्व-किन्नरी की-सी सज-धज से ऐंठे फिरते। वह डरती-डरती लच्छी दीदी के पास जाकर कहती—"लच्छी दी, एक साड़ी देंगी मुझे आज? पन्तजी के नाती का जन्मदिन है, मुझे नाचना है!"

"वाप रे वाप, तेरा नाच हो गया न तूफान! जव देखो तव सुनती हूँ, साड़ी चाहिए; तेरा नाच है! देती हूँ, पर खवरदार जो एक खरोंच भी लगी! अम्मा मुझे मार डालेंगी। मेरी कोई भी साड़ी तीस से कम की नहीं है, ले...." कह वह एक रंग उतरी सस्ती रेशमी साड़ी उसकी गोद में पटक देती और इतना सब कुछ सुनकर भी वह मँगनी की साड़ी उठाये ऐसी भागती जैसे दुनिया की सारी दौलत उसके हाथों में आ गयी हो। आज वह देवूदा से सब वातों का वदला लेगी। पहले विठायेगी अपने दीवानखानों में, फिर वेडरूम, किचनरेंज दिखाकर अपने स्वादिष्ट घृत-पकवानों से उसे अभिभूत कर देगी। वह देवूदा के ओछे स्वभाव को जानती थी। सुना, वहुत वड़े आदमी हो गये हैं। एक-दो वर्ष में मुख्य

मन्त्री वनने की भी सम्भावना हैं। लाखों रुपया वना लिया हैं। लच्छीदी ने किसी मुसलमान से अन्तर्जातीय विवाह कर लिया था और पाकिस्तान चली गयी थीं। यदि देवूदा ने नन्दन की कुशल पूछी, तो वह भी तुरुप मार देगी लच्छीदी की कुशल पूछकर।

देवूदा आये, तो वह दंग रह गयी। कद उनका पहले ही बूटा था, अव एकदम गोल वन गये थे। खद्दर का धोती-कुरता और टोपी पहन देवूदा वड़े रोबदार लग रहे थे। हाथ के दो-तीन कुम्हलाये पुष्प-हार उसकी पुत्री को थमा कर देवूदा हँसते-हँसते स्टील के निहत्थे सोफे पर धँस गये—"वाप रे वाप, कैसी भाग्यवान् है तू रोहिणी, लपने पति को रोज देख तो लेती है! यहाँ तो चार महीने से आकाश-विहारी बना फिर रहा हूँ। यह जिन्दगी ही ऐसी है!" उन्होंने वड़ी अदा से सिगार की राख गिरायी। "किसकी पत्नी और किसका पति!" वह रोहिणी के निमन्त्रित भड़कीले अतिथियों को देखकर कहते जा रहे थे—"अभी एम० पी० दल का नेतृत्व करके लौटा हूँ। आज रात ही फिर दिल्ली पहुँचकर पण्डितजी से मिलना है।" उन्होंने ऐसे लहजे में कहा जैसे उनके साहचर्य के विना पण्डितजी के गले के नीचे गस्सा भी नहीं उतरता। "सोचा, भाईदूज है, तुझसे भी मिलता चलूँ।"

"बड़ा अच्छा किया, देवूदा, आपको मेरी याद तो आयी!"

"क्या करूँ, वहन, याद क्यों नहीं आती, पर आज जेनेवा कॉन्फरेन्स है, तो कल सऊदी अरेविया जाना है। अव तू ही वता, ऐसी जिन्दगी में दम मारने की भी फुरसत किसे रहती है!" उन्होंने अपनी किश्ती-सी खद्दर की टोपी को उतार कर गोदी में धर लिया और आराम से टाँगें पसारकर सिगार फूँकने लगे।

रोहिणी ने उस दिन पहाड़ी पकवानों से मेज भर दी थी। मोयन डली फूली पूरियाँ थीं। पहाड़ी ककड़ी का पीला रायता था। भाँग के वीज भूनकर वनायी गयी दाड़िम की चटनी थी और घी में तले गये कुरकुरे

लाल सिगल थे जिनकी खुशबू से देवूदा के नथुने फड़कने लगे। एक क्षण को वह सऊदी अरेबिया, जेनेवा कॉन्फरेन्स और पण्डितजी को भी भूलकर खाने की सामग्री पर टूट पड़े। रोहिणी के दोनों बच्चे अपने हिस्से की पूरियाँ और पकवान टोकरी में भरकर लॉन में पिकनिक मनाने चले गये थे। हरी-हरी घास पर चटाई बिछा, महिम भाग कर पड़ोस के भाटिया साहब के बच्चों को पिकनिक का निमन्त्रण दे आया था। दोनों बच्चे कैक्टस के बड़े पीपे के पास खड़े होकर मित्र-मण्डली की प्रतीक्षा कर रहे थे। भीतर से पार्टी के अतिथियों की हँसी का स्वर अँग्रेजी रिकार्ड के संगीत के साथ तैरता आ रहा था। 'हाउस ऑव बैम्बू' और उसी लोक-प्रिय धुन के साथ सीटी बजाकर महिम एक पैर से ताल दे रहा था कि सहसा उसकी सीटी का स्वर गले ही में सूख गया। "दीदी, देख....", और वह कुछ नहीं कह सका। भय से आठ वर्ष के महिमा की घिग्घी बँध गयी। लान के लता-द्वार पर एक नंगधड़ंग छह फुटा पगला खड़ा था। उसकी दोनों आँखें लाल अंगारे-सी दहक रही थीं। गन्दी दाढ़ी के छितरे बालों पर उसकी लार टपक रही थी। वह धीरे-धीरे बच्चों की ओर बिना देखे टोकरी की ओर लोलुप दृष्टि से देखता बढ़ा आ रहा था। उसके हाथ में एक सूखी टहनी थी और दूसरा हाथ कटा था। कुहनी के नीचे कुछ था ही नहीं।

नीलू भाई का हाथ खींचकर भीतर भाग गयी। रोहिणी फ्रीज से मिठाई निकालने आ रही थी, अँधेरे में वह दोनों बच्चों से टकरा गयी।

"अरे, यहाँ क्या कर रहे हो? हो गयी तुम्हारी पिकनिक?"

"ममी, देखो...." माँ को पाकर नीलू का साहस लौट आया—"देखो, ममी, वह नंगा पगला हमारी टोकरी से पूरी निकालकर खा रहा है!"

खिड़की के काँच से सड़क के लैम्प पोस्ट की धुँधली रोशनी में पगला

भयानक लग रहा था। दोनों घुटने टेककर वह टोकरी से पूरियाँ निकाल, नोच-नोचकर भूखे कुत्ते की तरह खा रहा था।

"यह हरामखोर दरवान मुफ्त की तनखा लेता है! लॉन के भीतर पगला आ कैसे गया?" बड़बड़ाती रोहिणी ने बाहर की बत्ती जलायी और डपटकर कहा—"भाग जा! कौन है तू?"

पगला उसे देखकर परमहंस योगी की भाँति हँस पड़ा। पूरी के गस्से से उसके दोनों गाल फूल गये थे। वह फिर हँसा, पर रोहिणी नहीं हँस सकी। घबराकर उसने बत्ती बुझा दी। उसकी डपट सुनकर दरवान लाठी ठकठकाता बढ़ आया। उसकी आहट पाते ही पगले ने नट की-सी फुरती से अपने कटे हाथ के बावजूद एक ही हाथ से चील की भाँति झपट्टा मारकर टोकरी उठा ली और दीवार को लाँघकर हवा हो गया। अभागा आया भी ठीक भाईदूज के दिन, पर हाथ कैसे कटा? रोहिणी के जी में आया कि दरवान से कहे, भागकर पगले को पकड़ ले, वह पगला उसका सगा जुड़वा भाई है! पर उसका आदेश उसके कण्ठ में ही विगलित होकर रह गया। पगले ने निस्सन्देह उसे पहचान लिया था। कैसे उसकी आँखें क्षण-भर को चमक उठी थीं! पहचानकर ही तो वह अपनी चिरपरिचित भोली हँसी हँसने लगा था। पहचानकर भी वह भाग क्यों गया? नहीं, पहचाना नहीं होगा। रोहिणी अपने व्यर्थ तर्क से अपने चित्त को स्वयं शान्त करने लगी।

"अरे भई, कहाँ हो?" भीतर से राजेन्द्र ने हाँक लगायी—"अच्छी मिठाई लेने गयीं! रोली-अक्षत भी लेती आना। तुम्हारे देवूदा का एक-एक क्षण अमूल्य है।"

रोहिणी हड़बड़ाकर पूजागृह की ओर चली गयी। निभृत निःसंग पूजनगृह में पहुँचकर थाली में रोली-अक्षत सजाती वह अपने को रोक नहीं सकी—सिर झुकाये बुरी तरह सिसक उठी।

"जल्दी करो, ममी ! पापा कह रहे हैं, मामाजी को अभी जाना है।" नीलू भागती-भागती आयी।

रोहिणी ने मुँह फेरकर आँखें पोंछ लीं। उसके धनान्ध विवेकशून्य चित्त ने उसे फिर समझाया। क्या वह पति के उच्चवर्गीय अतिथियों के सम्मुख अपने पगले नंगधड़ंग भाई को लाकर खड़ा कर सकती थी? विभिन्न विभागों के सचिव, अनुसचिव, उनकी ओछी दम्भी पत्नियाँ, जिनमें से किसी का भाई ब्रिगेडियर था, किसी का मेजर। और उन सबके बीच सोफे पर लेटे बर्मी सिगार का विलासी धुआँ छोड़ते उसके देवूदा। किस दुःसाहस से वह छितरी दाढ़ी पर लार टपकाते अपने पगले भाई का परिचय दे पाती?

"ममी, मामाजी को मैं भी टीका करूँगी!" उछलती-कूदती नीलू बड़े उत्साह से रोली का थाल छीनकर भीतर भाग गयी।

नथ

पुट्टी ने उठकर अपनी छोटी-सी खिड़की के द्वार खोल दिये। धुएँ से काली दीवारों पर सूरज की किरणों का जाल बिछ गया। छत से झूलते हुए छींके में धरे ताजे मक्खन की खुशबू से कमरा भर गया और पुट्टी के हृदय में एक टीस-सी उठ गयी—क्या करेगी उस खूशबू का जब उस मक्खन को खानेवाला ही नहीं रहा! ऐसे ही ताजे मक्खन की डली फाफर की काली रोटी पर धरकर खाते-खाते उसके पति ने उसके मुँह में अपना जूठा गस्सा ठूँस दिया था—ठीक जाने के एक दिन पहले। उस दिन भी ऐसे ही खिड़की के पट से चोर-सा उजाला आकर पूरे कमरे में फैल गया था और उसी उजाले के पीछे-पीछे न जाने कहाँ से उसकी सास आकर खड़ी हो गयी थी। अपने घृष्ट फौजी पुत्र की बहू को कर्कशा सास ने वहीं चीरकर धर दिया था—"हद है बेशर्मी की भी! हमारे कुमऊँ की छोकरी होती, तो ऐसी बेशरम थोड़े ही होती! है न तिब्बत की लामानी, इसी से गुण दिखा रही है!" सास के जाने के पश्चात् वह कितनी देर तक पति की छाती पर सिर धरे सुबकती रही थी, पर जिस छाती को चीनियों की गोलियों की वर्षा झेलनी थी, वह सुन्दर पत्नी की टेक बनती भी कैसे? गुमान सिंह के जाते ही पुट्टी पर विपत्तियों का पर्वत टूट पड़ा। सास, विधवा ननद और जिठानी की गालियाँ सुनती तो वह जानबूझ कर ही बहरी बन जाती—दोनों कानों पर हाथ धर कर इशारा करती कि उसे कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा है। विधवा ननद का पर्वताकार शरीर क्रोध के भूकम्प से डोल उठता—"अन्धी-कानी-बहरी

लड़कियाँ क्या अभी और बची हैं भौजी तुम्हारे तिब्बत में ? अभी हमारा एक भाई और भी तो है।" वह व्यंग्य-भरे स्वर में चीख कर कहती। अपने दोनों कानों पर हाथ धर अपनी भोली सूरत को और भी भोली बनाकर पुट्टी सधे अभिनय की मुद्रा में कहती—"क्या करूँ, न जाने क्या हो गया है इन कानों में ! हरदम साँय-साँय आवाज आती है ! एकदम वज्जर गिर गया है—निगोड़े कानों में !"

"इतना घमण्ड था न अपने रूप का ! तिब्बत के जादू से हमारे भैया को भेड़ बनाकर रख दिया ! इसी से भगवान् ने सजा दी ! भगवान् करे, तुम्हारे कानों पर ही नहीं, पूरे शरीर पर वज्जर गिरे। कुलच्छनी न होती, तो क्या गुमान को लद्दाख जाना पड़ता।"

पुट्टी अपनी हिरनी की-सी तरल दृष्टि से उसे देखकर हँसती रहती जैसे उसकी पुरुष गर्जना का एक शब्द भी उसके पल्ले न पड़ा हो।

माता, भाई, भौजाई और विधवा बहन से लोहा लेकर ही गुमान उसे ब्याह लाया था। अपनी माँ के साथ वह गाँव-गाँव में फेरी लगाकर बिसाती का छोटा-मोटा सामान बेचा करती थी। स्वास्थ्य से दमकते लाल चेहरे पर उसकी तीखी नाक और बड़ी-बड़ी आँखें लामा कन्याओं की भाँति चपटी और छोटी नहीं थीं। कानों में गन्दे पीले सूत में गूँथे फीरोजा और मूँगे झूलते थे। कन्धे से टखनी तक झूलते उसके तिब्बती लबादे की ढीली-ढीली बाँहों में वह एकदम ही बच्ची लगती, पर कभी-कभी लबादे की केंचुली उतार कर वह उसकी बाँहों की रहस्यमय सींवन से ढूँढ़-ढूँढ़ कर जुएँ मारती और अब लबादे की केंचुली से रहित उसका उन्मुक्त यौवन किसी लपलपाते नाग की भाँति देखनेवाले को डसने दौड़ पड़ता। गुमान ने भी उसे एक दिन बिना केंचुली के देख लिया। ग्राम के चौराहे पर उसकी माँ ने अपनी गन्दी चादर फैलाकर दुकान खोल दी थी। जम्बू, गन्द्रैणी आदि मसालें की जड़ी-बूटियों के बीच वह स्वयं टाँग पसार कर

धूप सेंक रही थीं और एक टीले पर बैठी उसकी सुन्दरी पुत्री अपने लबादे की बाँहों से जुएँ बीन-बीन कर मार रही थी। गुमान सिंह छुट्टियों में घर आया हुआ था। सुबह उठकर वह घूमने निकला और माँ-बेटी की हाट के सामने ठिठक कर खड़ा हो गया। पुट्टी अपनी सुडौल बाँहों को अपने लबादे की मुर्दा बाँहों से टटोल-टटोल कर जुएँ निकाल रही थी। गुमान को देखा, तो लजाकर उसने हाथ खींच लिये। उसके गालों की उठी मंगोल हड्डियों के बीच गुलाबी रस का सागर छलक उठा। चौड़े माथे पर गोंद की तरह चिपकायी काले केशों की पट्टी से कुछ केश निकल कर हवा में फरफरा रहे थे। जीर्ण कुरते के बटनों की पूर्ति एक बड़ी-सी सेफ्टीपिन लगाकर की गयी थी। पर किसी वेगवती नदी के दो पाटों पर बाँधा गया रस्सी का पहाड़ी पुल जैसे साधारण-सी हवा में काँप-काँप उठता है, उसी भाँति सेफ्टीपिन रह-रह कर काँप रही थी। गुमान अकारण ही चीजों का मोल-तोल करने लगा। कभी मैली चादर पर सजे छोटे आइने में अपनी मूँछे सँवारता, कभी नीले फीरोजों का अँगूठी पहनता और कभी उठाकर तिब्बती घण्टियाँ ही टुनटुनाने लगता।

"क्यों बेकार में गड़बड़ करता!" पुट्टी की माँ ने अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में उसे झिड़क दिया—"लेना है तो लो, नहीं तो जाओ!"

उसकी युवा पुत्री के आते ही ग्राम के मनचलों की भीड़ जम जाना नित्य का नियम था, पर वह बड़ी खूँख्वार और रूखी औरत थी। जौ की शराब और भेड़-बकरे के कच्चे गोश्त ने उसका रक्तचाप शायद और भी बढ़ा दिया था। असली और नकली ग्राहक को वह चट-से बीनकर फटक देती थी। पर गुमान सिंह को दुबारा झिड़कने का साहस उसे भी नहीं हुआ। उस गोरे तरुण की निर्भीक दृष्टि में कुछ अजीब मोहिनी थी। फिर वह फौजी जवान था—ऐसा फौजी जो एक-दो दिन में ही निर्मम चीनी लुटेरों को भगाने लाम पर जा रहा था। पुट्टी की माँ का मन अकारण ही ममता से भर गया। चीनियों को वह कभी क्षमा नहीं कर पायी थी।

उसके इकलौते बारह वर्ष के पुत्र को उन्होंने चीन के किसी स्कूल में पढ़ने भेज दिया था। उसके दमे के रोगी पति को सड़क की बेगार में जोत-जोत कर मार डाला था। उसके हाथी-से विराट् याक को काट-काट कर हत्यारों ने अपनी फौजी टुकड़ी को खिला दिया था और एक दिन भी वह चूकती, तो उसकी पुट्टी को भी उड़ा ले जाते। रात ही रात में वह "मनी पद्म हुम" जपती पुत्री को खींचती, गिरती-पड़ती तिब्बत की सीमा पार कर गयी थी। उन्हीं चीनियों को मार भगाने गुमान जा रहा था, इसी से वह उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया।

वह नित्य ही उस सराय में पहुँच जाता जहाँ पुट्टी अपनी माँ के साथ रहती थी। पुट्टी उसके लिए मक्खन-नमकवाली गरम तिब्बती चाय और पशमसहित भूने गये भेड़ की रान के बड़े-बड़े टुकड़े तैयार कर लाती। पुट्टी की माँ दोनों पर अपनी छोटी-छोटी आँखों का अंकुश लगाये बैठी रहती। फिर भी न जाने कब पुट्टी के मंगोल कटाक्षों की अर्गला गुमान के हृदय-कपाट पर स्वयं ही लग गयी। जाने के तीन दिन पूर्व गुमान ने पुट्टी की माँ के सम्मुख उसकी पुत्री से विवाह का प्रस्ताव रखा, तो वह बड़े सोच में पड़ गयी। कुमय्यों के बीच खाली दाल-भात खाकर उसकी तिब्बती बेटी कैसे जियेगी? बिना जौ की शराब के उसके गले के नीचे रोटी का गस्सा नहीं उतरता और फिर दूध-चीनीवाली चाय भला कौन तिब्बती लड़की घुटक पायेगी? फिर वह गुमान की माँ और विधवा बहन को देख चुकी थी। उस क्रूर बुढ़िया के शासन में उसकी पुट्टी घुल-घुलकर रह जायेगी।

'नहीं!' दृढ़ स्वर में अपना निश्चय प्रकट करने को उसने अपनी गरदन ऊँची की, तो देखा, गुमान और पुट्टी दोनों दीन याचक की दृष्टि से उसे देख रहे थे। दूसरे ही क्षण पुट्टी की माँ को ग्राम के मनचलों का ध्यान आया जो भूखे व्याघ्र की भाँति पुट्टी को किसी भी क्षण निगल जाने को तत्पर थे। उसने अपनी सहमति दे दी। पर अभी गुमान को अपनी माँ, बहन और बिरादरी से मोर्चा लेना था। माँ ने पहाड़ से कूद जाने की

धमकी दी। बहन ने कहा, वह फाँसी लगा लेगी। पर तिब्बत की सुन्दरी कन्या को लाकर जब गुमान पाँच पंचों के सामने सीना तानकर खड़ा हो गया, तो पंच भी सहम गये। पुट्टी के सात्विक सौंदर्य ने धर्म, जाति और रूढ़ियों की उलझी गाँठें क्षण-भर में सुलझा कर रख दीं। दूसरे ग्राम से पण्डित बुलाकर गुमान के युवा मित्रों ने फेरे फिरा दिये और कुछ याकूत फीरोजे, चाँदी की तीन-चार दँतखुदनियाँ और चार बकरियों के दहेज के साथ जोर-जोर से रोकर पुट्टी की माँ ने उसे सराय से ससुराल के लिए विदा किया। न जाने कितनी गालियों से सास ने उसका वरण किया। जिठानी और ननद उसके विचित्र लबादे का मजाक बनाती जोर-जोर से हँस रही थीं। किन्तु उस बदसूरत लबादे के भीतर जगमगाते रत्न को एक ही व्यक्ति ने पहचाना—और वह था गुमान। वह जितना ही अपनी भोली विचित्र पत्नी को देखता, उतना ही उसके सौन्दर्य में डूबता चला जाता। पुट्टी बहुत कम बोलती थी और बोलने तथा हँसने में उसके गालों की ऊँची हड्डियाँ कुछ और भी ऊँची उठ जाती थीं।

गुमान का कमरा बेहद छोटा और अँधेरा था। एक कोने में ताजे खोदे गये मिट्टी से सने आलुओं का ढेर लगा था, दूसरी ओर दो टूटे हल दीवार से टिके थे जिन पर उसकी खाकी वर्दियाँ टँगी थीं। काली दीवार पर एक बड़ा-सा आईना टँगा था, जिसे गुमान मद्रास से खरीद कर लाया था। उसी आईने में युगलप्रेमियों ने एक साथ अपना चेहरा देखा, तो दिन-भर की कड़वाहट धुल गयी। रात को अपनी नवेली पत्नी के लिए गुमान कमरे में ही खाना ले आया, तो वह कटकर रह गयी। बार-बार गरदन हिलाकर उसने कमरे में खाने की व्यवस्था पर असन्तोष प्रकट किया, टूटी-फूटी पहाड़ी में अपनी लज्जा व्यक्त करने की चेष्टा की, किंतु वह जिधर गरदन फेरती, वहीं उसका सजीला पति उसके मुँह में गस्सा ठूँस देता। पुट्टी अपनी ढीली-ढीली बाँहों में मुँह ढाँकने की चेष्टा कर अपनी तिब्बती भाषा में न जाने क्या बुदबुदाती और गुमान उसकी विचित्र बड़-

वड़ाहट को दुहराता, तो वह खिलखिला उठती। गुमान होठों पर अँगुली रखकर उसे इशारे से समझाता—"श्श धीरे हँसो....वगलवाले कमरे में अम्मा लेटी हैं।" पुट्टी उसके गूंगे आदेश को चट-से समझ लेती। दोनों नन्दनवन के उन शीतल वृक्षों की स्वर्गिक छाया में थे जहाँ भाषा का कोई वन्धन नहीं रहता। वहाँ केवल एक ही भाषा ग्राह्य है, और वह है हृदय की। दूसरे दिन वह सास के पीछे-पीछे छाया-सी घूमती रही, पर वह एक शब्द भी नहीं वोली। ननद के साथ वह वरतन मलवाने बैठी, तो ननद ने उसकी ओर देखकर, पच्च से थूक दिया। पुट्टी की आँखों में आँसू छलक आये। अभी तो उसका पति यहीं था। उसके जाने पर उसकी कैसी दुर्गति होगी!

दूसरे दिन उसकी माँ उसने मिलने आयी। पुत्री के कुम्हलाये चेहरे को देखकर उसका जी भर आया। अपनी भाषा में फुसफुसाकर उसने पुट्टी के हृदय का भेद लेने की वड़ी चेष्टा की, पर पुट्टी सिर झुकाये खड़ी रही। कुछ नहीं वोली। उसके पीछे खड़ी उसकी सास और ननद आग्नेय दृष्टि से उसकी माँ को देख रही थीं। किसी ने उससे बैठने को भी नहीं कहा। तव गुमान अपने मित्रों की टोली के साथ शिकार खेलने गया हुआ था। लौटने पर अपनी माँ के अपमान की वात पुट्टी ने अपने ही तक सीमित रखी।

इसी बीच गुमानसिंह के जाने का दिन आ गया। जाने से कुछ घण्टे पहले उसने अपने खाकी कुरते में लपेटा गया एक रहस्यमय उपहार पुट्टी को थमा दिया—"पुट्टी, इसमें तेरी पसन्द की एक चीज लाया हूँ, पर अभी मत खोलना, समझी! और अकेले में देखकर इस आलू की ढेरी के नीचे गाड़कर रख देना।" पुट्टी डवडवायी आँखों से पति के हँसमुख चेहरे को देखती रही। कहती भी क्या? अपने हृदय की व्यथा को वह अपनी ही तिब्वती भाषा में ठीक से व्यक्त कर सकती थी। और उस भाषा के दुरूह शब्द उसका पति कैसे समझता! पतली मूँछों के नीचे पति की मीठी हँसी के सपने देखती वेचारी आलू के ढेर पर सिसकती रही।

एकाएक उसे पति के शब्द याद आये—'इसे अकेले में देखना पुट्टी !' हाथ की बादामी थैली को वह भूल ही गयी थी। क्या लाया होगा गुमान ? काँपते हाथों से उसने पोटली खोली और चौंककर पीछे हट गयी। पोटली से यदि काला नाग भी फन उठाये निकल आता, तो भी वह शायद इतनी नहीं चौंकती। पोटली से उसके पीले गोल चेहरे की परिधि से भी बड़ी पीले चोखे सोने की नथ झकझक दमक उठी। लाल, सफेद और हरे कुन्दन का जड़ाऊ लोलक उसके हाथ का स्पर्श पाकर घड़ी के पेण्डुलम्-सा डोल उठा। सहसा उसकी आँखें पति के प्रति कृतज्ञता से डबडबा आयीं। एक दिन उसने ग्राम के प्रधान की बहू की नयी नथ को देखकर पति से आलू के इसी ढेर पर बैठकर एक नथ की फरमाइश की थी। हाथ के इशारे से ही उसने अपनी छोटी सुघड़ नासिका के इर्द-गिर्द अँगुली से घेरा खींच-खींचकर भूमिका बाँधी थी। पहले गुमान समझा नहीं था और फिर कैसे ठठाकर हँसा था ! आज उसी आलू के ढेर पर नथ झकझक कर रही थी, पर उसे पहनकर बैठेगी तो देखेगा कौन ! टप-टप कर उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। न जाने कब उसकी माँ आकर चुपचाप उसके पीछे खड़ी हो गयी थी। सास और ननद गुमान को छोड़ने बस स्टैण्ड गयी थीं। पुट्टी की माँ शायद बाजार करने जा रही थी। माथे पर पोटली की गाँठ बँधी थी। दामाद से वह कल ही मिल ली थी। सुबह से ही पुट्टी के लिए उसका मन न जाने क्यों व्याकुल हो उठा था। सूजी-सूजी आँखों से माँ को निहारकर पुट्टी ने इशारे से नथ दिखायी। पोटली को नीचे उतारकर माँ पुत्री के निकट खिसक आयी। नथ हाथ से उठायी, तो उसकी आँखें आश्चर्य से फट पड़ीं।

"बाप रे बाप ! कम से कम छह तोले की है पुट्टी ! इतना रुपया तेरे आदमी के पास कहाँ से आया ?"

"क्या पता, माँ ! कह गये हैं, अम्मा से बचाकर जमीन में गाड़ देना।"

पुट्टी की माँ की आँखों में समधिन के प्रति घृणा उभर आयी—"ठीक ही तो कह गया। चुड़ैल अपनी बेटियों को दे देगी। ला....ला, जल्दी से कुछ ला, गाड़कर रख दूँगी, नहीं तो फिर बुढ़िया आ जायेगी। पर एक बार पहन तो बेटी, मैं भी देखूँ! ऐसी नथ और ऐसा तेरा रूप—एक बार तो देख जाता अभागा!"

सुन्दरी पुत्री के सौम्य चेहरे पर नथ की शोभा देखकर उसकी आँखें भर आयीं। डलिया में धरे टूटे दर्पण को निकालकर पुट्टी ने चटपट अपना चेहरा देखा, तो स्वयं लाज से लाल पड़ गयी—"छि:, कहीं भी अच्छी नहीं लग रही हूँ!" ऐसा कहकर वह माँ से अपने सौन्दर्य की स्तुति बार-बार सुनना चाह रही थी।

"तू अच्छी नहीं लग रही है, तो कौन अच्छी लगेगी, तेरी खूसट सास? अच्छा, ला, उतार नथ। मैं चट-से गाड़ दूँ। ऐसी चीज क्या बार-बार बनती है!"

○ ○

जब तक पुट्टी की सास और ननद लौटी, माँ-बेटी ने दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर नथ को गाड़ दिया था। नथ का इतिहास माँ-बेटी तक ही सीमित रह गया। फिर धीरे-धीरे युद्ध की दारुण विभीषिका में पुट्टी भटक कर रह गयी। भाँति-भाँति के भयावने समाचार सुनकर वह तड़प कर रह जाती। कभी सुनती, कुमाऊँ के असंख्य वीर जवानों के पावन रक्त के अबीर से नेफा और लद्दाख के वन-वनान्त रँग गये हैं। कभी सुनती, नृशंस चीनी हत्यारों ने चारों ओर से घेरकर कुमाऊँ रेजीमेण्ट की एक पूरी टुकड़ी को मॉर्टार तोपों से भून दिया है। भूखी-प्यासी वह कभी स्कूल के हेड मास्टर के रेडियो से कान सटाकर बैठ जाती, कभी बिलख-बिलखकर रोने लगती। हिन्दी वह ठीक से समझ नहीं पाती थी और ठीक से न समझे जाने पर युद्ध के भयावने समाचार उसे और भी भयानक

लगते। सास दिन भर बड़बड़ाती—"कुलच्छनी रो-रोकर कैसा अशगुन कर रही है....!"

बहुत दिनों तक गुमान की कोई चिट्ठी नहीं आयी और फिर एक दिन एक तार आया—"कुमाऊँ रेजीमेण्ट का गुमान सिंह दुश्मन की गोलियाँ झेलता हुआ आख़िरी दम तक अपनी चौकी पर डटा रहा। अंत में जाँघ में गोला फटकर लगने से वह वीरगति को प्राप्त हुआ।"

जब उसकी सास और ननद, छातियाँ पीटतीं घायल हथिनी-सी चिग्घाड़ रही थीं, तब पुट्टी शान्त प्रस्तर प्रतिमा-सी आलुओं के ढेर पर बैठी थी। वही आलुओं का ढेर उसके प्रेम का ताजमहल था। उसी ढेर पर सौभाग्य ने उसका वरण किया था और आज वही वैधव्य का विषधर उसे डँस गया था। एक-एक आलू के साथ सहस्र स्मृतियाँ लिपटी पड़ी थीं। आलुओं की मिट्टी पर गुमान ने जाने के एक दिन पहले अपना और पुट्टी का नाम अँगुली से लिख दिया था। नाम के उसी घेरे को पुट्टी एकटक देख रही थी। पुट्टी की माँ बिलखती आयी, पर पुत्री को देखकर स्तब्ध रह गयी। यह तो पुट्टी नही, जैसे स्वयं तिब्बत के मठाधीश बड़े लामा बैठे थे। उसकी आँखों में एक भी आँसू नहीं था। स्थिर दृष्टि उठाकर उसने अपनी माँ को देखा।

"पुट्टी, मेरी बच्ची, मेरे साथ घर चलेगी?" वह अपना चेहरा उसके पास सटाकर बोली।

"नहीं....नहीं, मैं यहीं रहूँगी।" आलुओं की ढेरी को ममता से देख कर पुट्टी ने मुँह फेर लिया।

पुत्र की मृत्यु ने उसकी सास को जीती-जागती तोप बना दिया। वह दिन-रात आग उगलती, पर पुट्टी पत्थर बन गयी थी। रोज रात को वह पति की वरदी सूँघती, माथे से लगाती और फिर छाती से लगाकर आलुओं के ढेर पर लेट जाती। जिधर करवट बदलती, उधर ही वरदी को भी यत्न से लिटा देती और धुएँ से काली छत को देखती रहती।

एक दिन उसने सुना, उसके ग्राम से सत्रह मील दूर की तहसील पर कमिश्नर साहब आये हुए हैं और गाँव की स्त्रियों से सोना माँग रहे हैं। सोना जमाकर देश के लिए गोलियाँ खरीदी जायेंगी, बारूद आयेगी और उसी गोली-बारूद से चीनियों से लोहा लिया जायेगा।

"पर किसके पास होगा इतना सोना ?" पुट्टी ने सुना, उसकी सास अपनी पुत्री से कह रही थी—"हमारे दरिद्र गाँव में तो दो बेला एक मूठ अन्न भी नहीं जुटता। मेरे पास तो दस तोले की नथ है, पर क्यों दूँ! इन्होंने ही तो मेरा बेटा छीन लिया!

पुट्टी मन ही मन सास पर झुनझुना उठी। इस बुढ़ापे में भी नथ का लोभ नहीं गया! उसकी आँखें सहसा अँधेरे कमरे में जुगनू-सी चमकीं। उसके हाथ स्वयं ही टटोल-टटोल कर आलुओं के ढेर को हटाकर मिट्टी खोदने लगे।

○ ○

गाँव की तहसील में बड़ी भीड़ थी। कमिश्नर साहब ये अपने बंद गले के अफसरी कोट के बटन खोलकर बड़ा जोशीला भाषण दिया। उसमें उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि किस प्रकार उनकी पत्नी ने अपनी गले की चेन खोलकर स्वेच्छा से रक्षा-कोष की झोली में डाल दी थी।

सभा में एक अजीब-सी स्तब्धता थी। तभी भीड़ को चीरकर एक तिब्बती किशोरी बढ़ आयी। उसके फटे लबादे की बाँहों से उसकी बताशे-सी सफेद कुहनियाँ निकल आयी थीं। तेजी से चलने के कारण वह अभी भी हाँफ रही थी। ललाट पर पसीने की बूँदें उसके चम्पई रंग को और भी मनोहारी बना रही थीं। जल्दी से हाथ की खाकी पोटली को कमिश्नर की थैली में डाल कर वह भीड़ में खो गयी। न उसे अपनी उदारता की घोषणा करने का अवकाश था, न कोई कामना। कमिश्नर-महीषी की पतली आधे तोले की चेन नयी सोने की नथ की कुण्डली के नीचे न जाने

कहाँ खो गयी ! बातों के धनी कमिश्नर की सतर मूँछों को पुट्टी के आकस्मिक आगमन ने सहसा खींचकर नीचा कर दिया। अपनी पत्नी के सामान्य दान की ऊँची घोषणा का खोखलापन उन्हें स्वयं धिक्कार उठा। क्या वह पतली चेन उनकी पत्नी का एकमात्र आभूषण था ? उनका सौ तोला सोना तो स्टेट बैंक के लॉकर से लाकर स्वयं उनकी माँ ने कहीं गाड़ दिया था। "युद्ध के दिनों में भला बैंक में सोना कौन धरेगा, बेटा !" —माँ ने कहा था। काँपते कण्ठ से उन्होंने भीड़ को सूचित कर दिया— "एक अज्ञात महिला अभी-अभी यह नथ दे गयी हैं। भीड़ में वह जहाँ कहीं भी हों, आकर इसकी रसीद ले जायँ।"

हाथ में पकड़ कर उन्होंने नथ उठाकर भीड़ को दिखायी। तिलमिलाते रौद्र की प्रखर किरणों में नथ झक-झक कर उठी।

भीड़ से कोई भी महिला उठकर रसीद लेने नहीं आयी, केवल नथ ही चमक-चमककर पुट्टी के सात्विक दान की रसीद अपने सुनहले अक्षरों में स्वयं लिख गयी।

गहरी नींद

अरथी के पीछे औरतें आमतौर पर कभी नहीं रहतीं, पर उस मिट्टी के पीछे औरतों का पूरा दल सर झुकाये चला जा रहा था। कोई बुरी तरह सिसकियाँ भर रही थी, किसी की आँखें और नाक रो-रो कर लाल हो आयी थीं। दो-तीन काँपते बेसुरे स्वर में रामधुन गाती-गाती फिर सिसकती जा रही थीं। खबर पाते ही उमा यादव का पूरा आश्रम उलट पड़ा था। नहीं आयी थी तो केवल अख्तरी—वह अख्तरी जिसे कितनी प्राणान्तक साधना से उमा साध पायी थी। पहले दिन वह पकड़कर आश्रम में लायी गयी तो उमा पर टूट पड़ी थी। अपने लम्बे, गन्दे नाखूनों से उसने उमा की हथेली का पूरा मांस नोच लिया था। हर तीसरे दिन उसे हिस्टीरिया का दौर पड़ता तो वह चीख-चीख कर पूरा आश्रम सिर पर उठा लेती। लिखने को कापी दी जाती तो फाड़कर दूर फेंक देती। पेन्सिल को दातौन की भाँति चवा-चवाकर धज्जियाँ उड़ा देती। पर चतुर रिंग मास्टर जैसे सर्कस की खुली सिहनी को भी साध लेता है, वैसे ही उमा यादव ने भी अख्तरी को साथ लिया था। कभी उसे बड़ी लगन से उन सती-लक्ष्मियों की कहानियाँ सुनाती जिन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर पति को मृत्यु-पथ से खींच लिया था। किन्तु अख्तरी केवल ही····ही कर खीस निपोर देती! उसका क्या एक ही पति था? मुहल्ले-टोले के कम से कम तीन दर्जन युवा, प्रौढ़ और खूसट पतियों के हृदय उसकी नन्हीं मुट्ठी में दिन-रात बन्द रहते थे। उस पर उसका गाँजे, अफीम-चरस का धन्धा भी था—कभी चोली के

भीतर छिपाकर ले जाती, कभी लहँगे के नेफे में। क्या मजा आता था दिन-रात रेलगाड़ी के सफर में! हर स्टेशन पर वह कुछ-न-कुछ चुगती रहती। इसी से वह आश्रम में हरी किनारी की मोटी धोती पहन, चने की दाल खा-खाकर ऊबने लगी थी। घर में उसके बैंजनी रेशम का गरारा, रश्के मुनीर में तर, डालडा के टिन में ज्यों-का-त्यों धरा होगा। उसका पति बशीर भी उसके धन्धे का साझीदार था। वह अन्धा भिखारी बन जाता और अख्तरी उसकी लाठी थामे गोंडा, बस्ती, गोरखपुर, नेपाल रोड तक अपने लहँगे के अभेद्य घेरों में अफीम-गाँजा छिपा-छिपाकर पहुँचाती। पाप का मूलधन इतना बढ़ चुका था कि चाहने पर वह आराम से घर बैठे भी काम चला सकती थी, पर तृष्णा बढ़ती जा रही थी।

एक दिन गोंडा स्टेशन पर दोनों पकड़े गये। पति और भी कई जुर्मों से फरार हुआ, घुटा गुण्डा था। पुलिस ने उसे जेल पहुँचा दिया। किन्तु अख्तरी की भोली-मासूम सूरत देखकर उसे पहुँचा दिया—उमा यादव के 'होम फॉर फालेन वीमन' में। जिस धैर्य और लगन से उमा ने उसे कीचड़ से निकाल लिया, वह वास्तव में सराहनीय था। वह प्रायः सबसे कहती—"यह मेरा प्राइज केस है।" आश्रम देखने आनेवाले बड़े-बड़े खद्दरधारी ऋषि-मुनियों का मन भी वह मेनका डुला देती। अख्तरी का आकर्षण उसके चेहरे का नहीं, उसकी देह का था। वह छोटे कद की थी; किन्तु उसका प्रत्येक अवयव उसी कद के अनुसार गढ़ा गया था। छोटी-सी नाक पर वह एक बड़े-से नग की लौंग पहने रहती थी। दोनों होंठ थे रसीले और खूब मोटे—ऐसे होंठ जो कलाकार को नहीं, प्रणयी पुरुष को प्रिय होते हैं। आँखें बादाम के आकार की थीं और पुतलियाँ थीं भूरी। शायद उन्हीं भूरी आँखों के कन्ट्रास्ट में उसके बदन पर उसकी लाल फूलदार कुरती बड़ी फबती थी। कुरती की देहाती सिलाई से असन्तुष्ट होकर अख्तरी ने उसे आश्रम की मशीन से चुस्त कर लिया तो उमा ने उसे डाँटा भी था। "ढीला कपड़ा हमसे नहीं पहना जाता"—मचली

बालिका की भाँति उत्तर देकर वह काम में लग गयी थी। सचमुच कुरती ही नहीं, उसके पूरे शरीर का एक-एक पेंच बड़े कायदे से कसा है। उसकी दोनों आँखों में किसी को कुछ न समझनेवाली रस्सी की-सी ऐंठ थी—ऐसी ऐंठ जो जलकर भी नहीं जाती। वह दोनों हाथ पीछे बाँधकर शायद इसलिए चलती थी कि देखनेवाले की दृष्टि में उसकी बाँहें तक व्याघात न डालें। वह धोती पहनने को किसी प्रकार भी राजी नहीं हुई तो हारकर उसे घेरों वाला छींटदार लहँगा सिला दिया गया। अपने लहँगे से अपनी ठोढ़ी पोंछने या झूठ-मूठ माथे का पसीना पोंछने का उपक्रम कर आश्रम के चौकीदार माली की ओर कटाक्ष करते उमा ने उसे एक बार रँगे हाथों पकड़ लिया था। अख्तरी अपनी आदत से लाचार थी, पुरुषों में बैठना ही उसे अच्छा लगता था। स्त्रियों की ईर्ष्या-द्वेष भरी ओछी बातें सुनते ही उसका खून खौलने लगता। उसे याद आते—रेल के हिचकोले, स्टेशन पर बिकते छोले, पान-बीड़ी-सिगरेट, लहँगे के नेफे में भरी अफीम जो गन्तव्य पर पहुँचते ही सोना उगल देती और फिर सबसे कड़वी-मीठी स्मृति अपने असंख्य प्रेमियों की।

यहाँ उसकी सब साथिनें एक-से-एक थीं। साढ़े पाँच फुट की भीमकाया, सोलह वर्ष की जट्टिनी हरदीप जिसने गँड़ासे की एक ही चोट से पति का सिर काटकर दूर फेंक दिया था, किसी सबूत के न मिलने पर छोड़ दी गयी थी और ससुरालवाले उसे आश्रम में पहुँचा गये थे; छरहरे शरीर की स्वदेशकुमारी जिसे डाकू उठा ले गये थे, पर तीन दिनों तक भूखी-प्यासी जंगल फाँदती वह फिर पति-गृह पहुँच गयी थी; किन्तु अभागी को घर में प्रवेश नहीं मिला था; तीसरी तेरह वर्ष की अहीर कन्या फूलमती जो किसी चकले से पकड़कर लायी गयी थी। और भी न जाने कितनी कानी, लूली, लँगड़ी, विकृत मस्तिष्क और व्यक्तित्व से पंगु स्त्रियाँ प्रेत मूर्तियों की भाँति उमा को दिन-रात घेरकर सिलाई की मशीनों से विचित्र आकार के कुरते, पाजामे और सलवारें सीतीं। पर उस महाश्मशान की कापालिक थी

उमा। उसने उन सब विचित्र डाकिनियों-शाकिनियों को जीत लिया था और आश्चर्य यह था कि उसने उन्हें जीता था क्षमा और अहिंसा के सिद्ध कवच से। सुबह उठते ही वह उन्हें दूर तक घुमाने ले जाती। लौटकर सब चक्कियों में अनाज पीसतीं। फिर शुरू होता उमा का सबसे बड़ा सिरदर्द—उन्हें पढ़ाना। हरदीप पिछले एक वर्ष से केवल 'अ' लिखना सीख रही थी। अख्तरी नजर बचाकर कापी के पन्ने फाड़, हवाई जहाज बनाकर खिड़की से बाहर उड़ा देती। इसके अतिरिक्त वह अपनी ही नहीं, अपनी सहपाठिनियों की भी बीसियों पेन्सिलें चबा चुकी थी। फूलमती ने पढ़ना सीख लिया था, पर वह सबके पैसे चुराकर चौकीदार से किस्सा सारंगा और तोता-मैना मँगाकर पढ़ती पकड़ी गयी थी; इसी से उमा ने स्वेच्छा से ही उसकी शिक्षा की प्रगति रोककर उसे रोटी बनाने का काम सौंप दिया था।

ऐसे वातावरण में भी उमा उनके संसर्ग के कलुष से अछूती थी। उसकी सहिष्णुता ने उसके कमनीय चेहरे को और भी सलोना बना दिया था। उमा यादव सुन्दरी होकर भी कुँआरी थी, यह संसार के लिए आश्चर्य का विषय था। पर उमा ने कौमार्य की फाँसी का फन्दा स्वेच्छा से ही गले में नहीं डाला था। पहले जब तक उसके विधुर पिता जीवित थे, एक से एक रिश्ते आते रहते थे, पर उसके पिता की पसन्द और ओहदा, दोनों ऊँचे थे। ऐसे पिता की पुत्री का विवाहाकाश प्रायः ही मेघाच्छादित रहता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसके विवाह का प्रसंग उठानेवाला भी कोई नहीं रहा। धीरे-धीरे उसके चेहरे का आकर्षण घटने लगा। जैसे नेनुए की कोमल त्वचा में पकने पर एक झिल्ली पड़कर सारी मिठास सोख लेती है, उमा की कंचन-सी देह में भी झिल्ली पड़ गयी। मोटे फ्रेम के चश्मे ने कर्णचुम्बी आँखों का और सुडौल तीखी नाक का सौन्दर्य चपटा कर दिया था, पर उजड़ जाने पर भी दिल्ली दिल्ली ही थी।

● ●

अख्तरी के जुर्म वट की शाखाओं की भाँति थे, पूरे उत्तर प्रदेश में फैले हुए, इसी से कोई न कोई पुलिस अधिकारी तहकीकात करने प्राय: आश्रम पहुँच जाते। एक दिन आ गया स्वयं डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साड़े छह फुट का रवीन्द्र पण्डित। बाप-दादा वर्षों पहले कश्मीर छोड़कर उत्तर प्रदेश में बस गये थे, पर उनके वंश के रूप-रंग ने कश्मीर को नहीं छोड़ा था।

"कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?" उमा यादव ने अपनी दोनों पुष्ट बाँहें मेज के आस-पास रखकर पान का पत्ता-सा बना लिया था। अपना चश्मा वह उस दिन कहीं उतार कर भूल गयी थीं। बिना चश्मे के वह बहुत ही मासूम लगने लगती थीं। डाकुओं के सन्धान से, घने जंगलों से लौटे उस पुलिस-अधिकारी का मन अचानक एक अश्लील उत्तर देने को छटपटा उठा, पर दूसरे ही क्षण प्रश्न पूछनेवाली की अफसरी मुद्रा ने उसे सहमा दिया।

"कुछ नहीं, मैं यही पूछने आया था कि वह अख्तरी आपको परेशान तो नहीं कर रही है? आपसे न सँभले तो हम उसे ठीक कर लेंगे।" स्वर का अहंकार चेहरे के लाल रंग से ठीक मेल खा रहा था। पुलिस की वर्दी में तो काग-भगोड़ा भी खिल उठता है, फिर रवीन्द्र पण्डित तो वास्तव में सुदर्शन था।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, धन्यवाद। मुझे आज्ञा दें....मुझे एक आवश्यक कार्य से बैंक जाना है।" वह बड़ी ही रुखाई से पल्ला झाड़कर उठ गयी तो रवीन्द्र को लगा कि वह वर्षों का भूखा है और कोई उसके सामने से छप्पन व्यंजन भरा थाल खींचकर भाग गया है। पर वह भी हार माननेवाला नहीं था। भिण्ड और मुरैना की गहन वन-कन्दराओं में उसने खूँखार डाकुओं को घेरा डालकर भून दिया था। डाकुओं की अन्तिम पकड़ के लिए वह जिस कूटनीति से अपना घेरा क्रमशः छोटा कर लेता था, उसी प्रकार उसने उमा यादव के इर्द-गिर्द अपना घेरा और जटिल कर

लिया। वह अपनी दोनों मातृहीना बच्चियों को उनके ननिहाल से ले आया। दोनों लड़कियाँ बड़ी प्यारी थीं। एक दिन वह उन्हें लेकर आश्रम पहुँच गया। फिर तो वे दोनों उमा आण्टी के पास ही रहने लगीं। पहले छोटे-से जिले में दबे स्वरों में कानाफूसियों का क्रम चला। मालकिन की आड़ में आश्रम की मनचली सदस्याओं ने अनुशासन की जंजीर स्वयं ढीली कर ली। तहकीकात हुई, असेम्बली में प्रश्न हुए, रवीन्द्र की तरक्की रोक दी गयी, पर उसे उसकी वांछित पदोन्नति मिल गयी थी—उमा यादव से उसने विवाह कर लिया।

उमा और उसकी पिछली दोनों पत्नियों में धरती-आकाश का अन्तर था। पहली तो एकदम फूहड़ थी। उसकी मृत्यु के तीसरे माह ही दूसरी आयी। वह थी ठमकेदार। पुलिस के सन्तरियों को वह अपनी गृहस्थी की कवायद में जोते रहती। कोई मटर छीलता, कोई बाग सींचता, कोई बच्चों को घुमाता और कोई गट्ठर के गट्ठर कपड़े धोता। प्रत्येक कुशल पुलिस अफसर की पत्नी की भाँति उसने पति के उत्कोच विभाग का पद स्वयं ग्रहण कर लिया था। किस थानेदार के गाँव में शुद्ध घी मिलता है, किसकी ससुराल देहरादून में है और वह एक साथ कितना बासमती चावल ला सकता है, यह सब उसे पता रहता। पर अचानक एक दिन उसे यही बासमती ले बैठा।

उमा यादव ने आते ही पति की अव्यवस्थित गृहस्थी को अपने दक्ष हाथों में ले लिया। शीशम के दो जहाज-से पलंगों को उसने गोदाम में फिकवा दिया। पिछले जीवन के प्रत्येक स्मृति-चिन्ह को वह कुशलता से मिटा देना चाहती थी। पति के साथ खिचवायी गयी दो सौतों की रंग-उड़ी तस्वीरों को उसने एक ही झटके में गायब कर दिया। एक ही सप्ताह के भीतर दोनों पुत्रियों को वह नैनीताल के एक अँग्रेजी बोर्डिंग हाउस में रख आयी तो समाज ने उस पर थुड़ी-थुड़ी की; किन्तु उन्हें भेजने के पीछे उसके हृदय में कोई दुर्भावना नहीं रही थी। मातृहीना बच्चियाँ

अनावश्यक दुलार से विगड़ती जा रही थीं। सचमुच ही एक ही वर्ष में उनकी नम्रता और शालीनता देखकर उनकी नानी ने भी दाँतों तले अँगुली दवा ली। उसके पति के अहाते में स्वीट पी और लिली महकने लगी। वँगले की सामने की दीवार पर वर्षों से कोई कलामर्मज्ञ 'गुप्त रोगों का विजली-द्वारा इलाज' और 'जालिम लोशन' का इश्तहार वड़ी तत्परता से लिख जाता था, उस पर स्वयं अपने हाथों से गेरू लगाकर उमा ने व्युनवेलिया की वेल चढ़ा दी; क्योंकि ऐसे विज्ञापनों की स्याही वड़ी जिद्दी होती है और गेरू भी गुप्त रोगों के अस्तित्व को नहीं मेट सका था।

वँगले को, वच्चियों को यहाँ तक कि घर की विगड़ैल भैंस तक को उमा ने साध लिया था, पर एक व्यक्ति को वह नहीं साध सकी, वह था गृह का स्वामी। सात डाकुओं को मारकर, उनकी छाती पर वन्दूक रखकर खिचवायी गयी पति की जिस तस्वीर के पौरुष पर वह रीझी थी, वह तस्वीर से भी कहीं अधिक खूँख्वार था। अपने हृदय के रत्न को वह पुलिस-विभाग की गन्दगी में कव का खो चुका था। पीना उसका स्वभाव था। हृदयहीनता उसके रक्त-मांस में वस गयी थी। कोई ऐसा दुर्व्यसन नहीं था जो उसे नहीं हो। घूस लेने में उसे कोई पार नहीं पा सकता था। वड़े-वूड़े नेताओं, विद्रोही दल के कीमती यजमानों का वह एक मात्र पुरोहित था। उसके ओहदे की आड़ में लाखों की चरस और गाँजा एक सीमा से दूसरी सीमा को लाँघ जाता था।

तीसरी पत्नी पर पहले तो वह भूखे व्याघ्र की भाँति टूट पड़ा, पर धीरे-धीरे वह भी वासी लगने लगी। उमा उसकी दोनों वच्चियों को वेहद प्यार करती थी, पर उसके पति का कुटिल स्वभाव उसके इस लाड़ की भी कोई कैफियत स्वीकार नहीं करता था—कोई वात न होती तो आज तक कुँआरी कैसे रहती? कई वार उसने छल-वल से अपनी सुन्दरी पत्नी के विगत जीवन का परदा उठाकर झाँकने की चेष्टा की किन्तु वह शान्त दृष्टि से पति को देखकर चुप रहती। उसकी इसी चुप्पी पर वह कुढ़कर

रह जाता। उमा की आहत दृष्टि में कामुक, वहमी पति के लिए करुणा और क्षमा का जो सन्देश रहता, वह पढ़ नहीं पाता।

अपनी सौत के मायके में उमा ने अनधिकार प्रवेश पाकर भी सबको जीत लिया था। सौत की विधवा माँ के लिए बढ़िया टसर की सफेद साड़ी, भाभियों के लिए नाना उपहार, मिठाई, फल, यहाँ तक कि सौत के मायके की महरी मिश्राइन के लिए भी वह धोती का जोड़ा रखना नहीं भूली थी। माँजी बीमार हुईं, वमन के लिए चिलमची नहीं मिली तो उमा ने दोनों हाथों की अँजुलि फैला दी। बुढ़िया ने उसके हाथों पर ही उल्टी कर दी, पर उमा के चेहरे पर एक शिकन भी नहीं उभरी। उस विलक्षण नारी के हृदय में मानव-मात्र के लिए करुणा और प्रेम का अटूट भण्डार था। घृणा, द्वेष और क्रोध उसके चित्त के दर्पण को मलिन नहीं कर सके थे। किन्तु मलिन न होने पर भी वह दर्पण एक दिन टूट गया।

अख्तरी जिद करके उसी के साथ रहने लगी थी। उमा ने उसे कई बार आश्रम भेजा, पर वह बार-बार भाग आती थी। उमा उसे कभी अकेली नहीं छोड़ती, पर एक दिन वह चूक गयी। उसकी एकमात्र आलिया मौसी भुवाली सेनेटोरियम में वर्षों से घुल रही थी; अन्तिम समय जानकर डॉक्टर ने उसे सूचित कर दिया था। वह अख्तरी को लेकर जा रही थी कि ठीक स्टेशन जाने के समय अख्तरी के पैर में भयानक मोच आ गयी। वह एक पग भी नहीं चल सकती थी। भारी मन से उमा अकेली ही चली गयी थी।

समय से पूर्व, बिना सूचना दिये वह पाँचवें दिन लौट आयी। गाड़ी रात को पहुँची थी। स्टेशन से रिक्शा लेकर वह घर पहुँची और न जाने क्या सोचकर पिछवाड़े की खिड़की फाँदकर भीतर पहुँच गयी। उसे अचानक देहरी पर खड़ा देख अख्तरी हड़बड़ा कर उठ गयी। उसका अनुमान सत्य निकला—अख्तरी उसके पलंग पर उसके पति के पार्श्व का आसन ग्रहण कर न जाने कब से सोती आ रही थी। पति की किंगकांग-सी बाँहें पलंग से नीचे झूल रही थीं। वह नशे की बेहोशी में पूरी तरह डूबा नहीं था,

लड़खड़ाती जवान से अपने जघन्य अपराध के लिए 'सॉरी' कहकर वह करवट बदलकर सो गया। अख्तरी चली गयी थी। रात-भर उमा सोफे पर बुत-सी बैठी रही। खुली खिड़की से उसने अख्तरी को अहाते से जाते देख कर भी नहीं पुकारा। उसके माथे पर एक भारी पोटली थी; क्या पता कुछ चुरा ले जा रही हो ? पर उसके गृह की वह सबसे मूल्यवान् निधि चुरा चुकी थी''''अब क्या लेगी ! दूसरे दिन पूरे घर में अख्तरी के गायब हो जाने का समाचार फैल गया। इधर-उधर ढूंढा भी गया पर अख्तरी सचमुच ही शायद शहर छोड़कर चली गयी थी। तीन दिनों तक उमा को न रात नींद आती थी, न दिन को चैन। मन की घुटन, पति की चोरी और सीना-जोरी और जिस अख्तरी को उसने नया जीवनदान दिया था उसकी धोखा-धड़ी उसे स्तब्ध कर गयी। चौथी रात को नींद न आने पर वह नहीं रह सकी। बहुत पहले बक्स में उसने नींद आने की गोलियों की शीशी लाकर रख दी थी। आधी रात को उसने वही शीशी निकाली। खुराक दो गोलियों की थी पर उसे जिस गहरी नींद की कामना थी, वह भला दो से कैसे आती ! बड़ी देर तक वह शीशी लिये खड़ी रही, फिर उसने पूरी शीशी मुँह में उँडेल ली।

जगने पर रवीन्द्र पण्डित ने पत्नी की निष्प्राण देह देखी तो घबरा गया, पर फिर बड़ी कुशलता से उसने तीसरी पत्नी की फाइल दाखिल-दफ्तर कर दी। शहर में खबर फैल गयी कि डिप्टी साहब की पत्नी को दिल का दौरा पड़ गया और वह चल बसीं।

० ०

गोंडा कचहरी स्टेशन पर, कनेर के पेड़ के नीचे, सस्ते केले रेशम का बैंजनी गरारा पहने, सिलवट पड़ी रेशमी फतुई की जेब से बीड़ी निकाल, पास की दूकान से माचिस खरीदने अख्तरी उठी, फिर न जाने क्या सोचकर गन्दी, फटी-सी पोटली को टाँगों के बीच दबाकर बैठ गयी। उसके होंठों पर लगे सस्ते लिपिस्टिक की फूहड़ रेखा ठुड्डी तक उतर आयी थी। एक

ढिवरी जलाकर खोमचेवाला उधर से निकला तो उसने उसे रोक लिया। पहले दो आने की खट्टी चटनी डली पकौड़ियाँ खायीं, फिर दो आने की मीठी चटनीवाली। मीठी गुजियावाला निकला तो उसे भी रोक लिया। चार गुजिया खाकर भी मन नहीं भरी तो खोये की खुरचन ले ली। खुरचन खाकर उसने पान के दो बीड़ों से गाल भरे ही थे कि रेलगाड़ी आ गयी। पोटली माथे पर रखकर वह भीड़ ठेलती तीसरे दर्जे के जनाने डब्बे में घुस गयी। दो-तीन गन्दे बुर्के ओढ़े मुसलमान औरतें एक कोने में दुबकी बैठी थीं। खिड़की की सीट पर बैठना ही उसे बहुत पसन्द था; चट-से गठरी रखकर वह बैठ गयी और बड़े प्रभुत्व से उसने अपनी दोनों टाँगों का रिजर्वेशन स्लिप फैला दिया। सामने से दो सिपाही उसे घूरते निकल गये। घूरते रहें ससुर! अब उसे किसी भी जिले की पुलिस का भय नहीं था। पोटली को उसने बड़े प्यार से थपथपाया। गाड़ी चल दी थी। वह थपथपाकर जैसे कह रही थी—अब कोई डर नहीं बेटा, गाड़ी चल दी है। सचमुच अब वह गाँजे की पोटली ही उसका पति और पुत्र थी। एक-एक कर स्टेशन पर खड़े कुली, बत्तियाँ—सब पीछे छूटने लगे। गाड़ी ने गति पकड़ी। हिचकोलों से तन्वी अख्तरी की लचीली देह हिलने लगी। बहुत थक गयी थी वह। नेपाल रोड स्टेशन आने में बहुत देर थी; गठरी सिरहाने रखकर वह सीट पर लम्बी हो गयी। थोड़ी ही देर में उसके खुर्राटे सुनकर मुसलमान बुर्केवालियाँ ठसकातीं-हँसतीं एक दूसरे पर गिरने लगी थीं। कैसी नींद है, बाप रे बाप! मुई मुर्दों के-से खर्राटे ले रही है! हर खर्राटे के साथ उसका सुडौल उभार उठ-उठकर गिर रहा था। रात घनी हो आयी थी और रेलगाड़ी अपनी वही सब हरकतें दुहरा रही थी जो अपने यात्रियों की नींद में व्याघात डालने वह प्रायः दुहराती रहती है। इंजन ने महा बेसुरे स्वर में डकारा। बियाबान अँधेरे जंगल के बीचोंबीच खड़े होकर अकारण ही उस दुस्साहसी इंजन ने पूरी गाड़ी के अंजर-पंजर हिला दिये। एक मुसलमान स्त्री का टोंटीदार गडुवा

मँजीरे-से वजता नीचे लुढ़क गया; दूसरी का बच्चा रोया, तीसरी को दमा का विकट दौरा पड़ा। गाड़ी चली और एक लम्बे पुल पर लड़खड़ाती, झपताल का-सा ठेका देती धीरे-धीरे चलती रही। कुम्भकर्ण की भी नींद शायद टूट जाती, पर अख्तरी वेखवर सोती रही। उसके हर विचित्र खर्राटे पर तीनों मुसलमान स्त्रियों को हँसी का जवरदस्त दौरा पड़ रहा था, पर वह घोड़ा वेचकर सो रही थी।

विचित्र शिल्पी विधाता भी कैसी-कैसी अनोखी मूर्त्तियाँ गढ़ देता है! एक को नींद के लिए शीशी भर गोलियाँ खानी पड़ती हैं और दूसरी विना गोली खाये ही गहरी नींद में डूव जाती है!

मास्टरनी

छोटे कद के तिब्बती टट्टू से उतरने में लम्बे डॉक्टर को कोई विशेष असुविधा नहीं हुई। हिलती जीन पर बैठे उस लम्बे-चौड़े डॉक्टर की टाँगें, बिना घोड़े से उतरे ही जमीन छू रही थीं। लगाम को नाशपाती के विराट पेड़ से उलझाकर, वह फुर्ती से उतरा और बाहर ही खड़े होकर, बड़े रौबीले स्वर में गरजा, "कोई है ? कह दो, डॉक्टर साहब आये हैं।"

डॉक्टर, वास्तव में साहब कहलाने योग्य था। उसके जवान चेहरे पर अभी भी कैशोर्य की चिकनाई थी, लगता था निरन्तर बिना किसी आवश्यकता के ही ब्लेड का प्रयोग करने पर भी पौरुष ने उसका आमन्त्रण अभी स्वीकार नहीं किया था। उसकी भरी-भरी काठी के शरीर का आकर्षण, निस्सन्देह उसके चतुर दर्जी ने खूब कसकर दाम लेने पर सँवारा होगा, क्योंकि हैरिसन ट्वीड का दामी कोट उसके कन्धों के साथ सिला लग रहा था। पतली मोहरी की हिपटाइट पैण्ट बिना पेटी के ही, कमर से सटी होने पर भी बीच-बीच में शायद सरक रही थी। उसी को बड़ी अदा से कसता वह अब अधैर्य से पुकारे जा रहा था, "अरे भई, कोई है नहीं क्या ?"

"ओह डॉक्टर सा'ब, आइए आइए, अन्दर चले जाइए। मैं आ रही हूँ", एक गोरी, मोटी, अधेड़ औरत, आटा सने हाथों से नमस्कार की मुद्रा में दोहरी होती, पलक मारते ही सीढ़ियाँ उतर आयी।

मकान, पहाड़ के अधिकांश देहाती मकानों की भाँति काठ का बना था, जिसके द्वार और झरोखों पर लकड़ी की नक्काशी में तिब्बती द्वारपालों

की असंख्य मूर्तियाँ उभरी थीं। कमरे में मोटे-मोटे तिब्बती गलीचे और नम्दे विछे थे। एक कोने में एक विराट पलँग प्राय: आधा कमरा घेरे था। सामने की खिड़की से सटा एक लूम धरा था, जिस पर अधबुने गलीचे में, आधी बनी शेरनी की डेढ़ आँख विचित्र लग रही थी।

"बैठिए, बैठिए, बड़ी तकलीफ की आपने, मैं चाय लाती हूँ", उस मोटी औरत की हँसी बच्चे-सी लुभावनी थी, और उसके स्वस्थ दाँतों की झलक किसी शिशुमुख में उभरी नयी दूधिया दन्तपंक्ति-सी ही मनोहारी लग रही थी।

"देखिए, मैं चाय नहीं पिऊँगा, मरीज कहाँ है? मुझे अभी जल्दी लौट जाना है", डाक्टर का साहबी हुलिया निकट से देखने पर, वह बेचारी मोटी औरत सहसा सहम गयी।

"क्या बताऊँ", उसने सर झुका लिया, एक बार खाली पलंग की ओर देखा और फिर बिना डाक्टर की ओर देखे ही कहने लगी, "अभी-अभी तक यहीं पड़ी थी। कितना समझाया छोकरी को, तीन दिन से बुखार है, तैरने मत जा, पर एक नहीं सुनी। अब आप दवा लिख दीजिए, मैं कागज ले आती हूँ।"

"नहीं", डॉक्टर का उत्तर बड़ा ही रूखा लग रहा था, "बिना मरीज को देखे मैं दवा नहीं दिया करता।" साथ ही वह हाथ का आला हिलाता, बाहर निकल गया और घोड़े की लगाम खोलने लगा।

"एक गिलास चाय तो पी लेते, इतनी दूर से आये हैं", प्रौढ़ा की आँखों में याचक की-सी करुणा छलक उठी।

बिना कुछ उत्तर दिये ही डॉक्टर उचक कर घोड़े पर बैठ गया। एड़ लगते ही घोड़ा ठुमकती दुलकी चाल से उतार उतरने लगा।

● ●

इस मास्टरनी की ऐसी की तैसी, वह मन ही मन कहने लगा, सेकेण्ड सटरडे की छुट्टी खराब कर दी। सोचा था देर तक सोकर छुट्टी मनायेगा,

ससुरी ने सुबह ही चौकीदार भेजकर छुट्टी का दिन चौपट कर दिया। उन कुण्ठाग्रस्त अध्यापिकाओं को बीमार पड़ने के अलावा शायद कोई काम ही नहीं रहता, आपस में दोनों लड़ीं और पड़ गयीं बीमार। कुछ नहीं हुआ तो दिल ही धड़का लिया। पिछले इतवार को गप्पू से गालोंवाली, भूगोल की अध्यापिका मिस पांगती ने बुला भेजा था। उसने अपनी कौलाइटिस का परिचय तीन हींग के डकारों के साथ देकर, जीभ दिखाने को मुख खोला, तो प्याज-लहसुन के क्लोरोफॉर्म से तरुण डॉक्टर का माथा चकरा गया। दूसरा इतवार खराब किया इतिहास की सीनियर अध्यापिका मिस रावत ने। उसकी सूखी सोंठ-सी देह का यौवन, दस वर्षों से सिन्धु घाटी की सभ्यता पढ़ाते-पढ़ाते, स्वयं कहीं उसी घाटी में समय से पूर्व ही दबकर रह गया था। उसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ने पर, तन-बदन का होश नहीं रहता था। किसी भी पुरुष को देखते ही वह तीक्ष्णनखा, दौरा पड़ने पर, नोंच-नोंचकर भुरता बना देती थी। अब यह तीसरी मास्टरनी मिस सिंह। मन ही मन, उसकी कल्पना कर डॉक्टर ने अपने को तैयार भी कर लिया था। सूखा पिचका चेहरा, हिस्टिरिकल फूहड़ हँसी और कुछ ऊँची बँधी धोती से झाँकते क्रेपसोल के मर्दाने जूते। पहाड़ की किसी भी अध्यापिका को वह अब दूर से ही पहचान सकता था।

बेचारा स्वयं, मेडिकल कॉलेज से, कैसी-कैसी उर्वशियों के सान्निध्य में सात वर्ष बिता कर निकला था। उसकी सहपाठिनी केरलवासिनी सलोनी डॉ० मैथ्यू, जो उसे अपनी एड़ी चुम्बी चोटी के नागपाश में बाँधकर, एरनाकुलम् ले जाना चाहती थी, लाल-लाल रँगे होंठ और तीखे नाखूनों वाली डॉ० चड्ढा, जिसने उस बाँके हाउस-सर्जन के जाने के दिन रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं, एक भी उसकी पीठ पर हाथ नहीं धर पायी।

सुबोध अपने पिता के दबंग स्वभाव को जानता था। उसके पिता मध्यमवर्गीय एकाउण्टेण्ट थे। नौकरी सामान्य होने पर भी महत्त्वाकांक्षा गगन चूमती थी। उनके मकानमालिक कायस्थ थे और जब उन्होंने अपने

आई० पी० एस० पुत्र को चालीस हजार के तिलक की वोली पर उठा दिया, तो पहाड़ी जोशीजी ने भी कान खड़े कर लिये। चालीस हजार के साथ वर्माजी को मिली थी चकाचक फियट गाड़ी, रेडियो, सोफा और खाने की ऐसी विशाल मेज कि हाथी भी चारों खाने चित्त होकर लोट-पोट लगा सकता था। सुवोध का बड़ा भाई भी आई० पी० एस० में आ गया था, फिर क्या था। खरबूजे ने खरवूजे को देखकर रंग पकड़ लिया। वड़े लड़के का कुमाऊँ के सवसे समृद्ध परिवार में विवाह कर, जोशीजी ने एक ही रात में मूँछों का नक्शा वदल दिया। पहले की झाड़-झंखाड़ मूँछों में वाँकपन देकर, अव वे छोटे पुत्र के लिए फियट-प्रसवा समधिन की खोज में जुट गये। दूरदर्शी डॉक्टर पुत्र को उन्होंने उत्तराखण्ड जाने के लिए मिनटों में पटा लिया, "आज कल इन नये-नये जिलों में जाना देश के लिए जेलयात्रा से भी अधिक फलदायक है।" उन्होंने पुत्र की पीठ थपथपायी, "एक वार चले जाओ, फिर तुम्हें हमारे समधी दिल्ली वुलवा लेंगे। देखते नहीं, उन्होंने अपने दोनों दामादों को तीन महीने के भीतर कैसे दिल्ली वुलवा लिया! उन्हीं की भानजी से तुम्हारी वातें चला रहा हूँ। अव के भी मैं फियट गाड़ी पर अड़ा हूँ, वर्माजी का कहना है कि अड़ा ही रहूँ तो काम वन जायेगा।"

पिता के मित्र वर्माजी की दृष्टि में विवाह-योग्य कन्या के कान-नाक हों या न हों, उसके दहेज में एक फियट गाड़ी का होना अनिवार्य था।

"हम पहाड़ी कभी शादी-व्याह करना नहीं सीखेंगे", उसके पिता ने उससे चलते समय कहा था, "हमारे यहाँ तो कन्या के पिता ने एक घड़ी, लाल दुशाला और नये जूते का जोड़ा रख दिया तो गंगा नहा ली। आखिर शोमैनशिप भी तो एक चीज होती है। अपने लिए तो कोई लेता नहीं, हमें भी तो विटिया व्याहनी है।"

● ●

उत्तराखण्ड के उस नये जिले का आकर्षक वास्तव में अद्भुत था।

नया-नया बना अस्पताल, उसी के बँगले से सटा था। लाल छत के पुराने डाकबँगले को ही डॉक्टर का बँगला बना दिया गया था। डाकबँगला होने से ही शायद वह चारों ओर से खुला था, जिससे अल्मोड़ा और नैनीताल से दौरे पर आये लाट, कमिश्नर, उसी बरामदे में बैठे-बैठे ही प्रकृति का सजा-सजाया गुलदस्ता सूँघ सकें। सामने हिमाच्छादित चोटियों पर रंगीन मेघों का उत्तरीय क्षण-क्षण में रंग बदलता था। काली मिट्टी का एक भीम भूधर, डायनामाइट की चोटों से क्षत-विक्षत हो, किसी मृतदानव की भाँति बँगले का अहाता घेरे पड़ा था। उसी को काट-काट कर मोटर की नयी सड़क बना दी गयी थी। सामने गब्यांग की घाटी फैली थी। उसका भोटिया नौकर जंगबहादुर उसके लिए खाना बनाकर, ढाँप-ढूँप चला जाता।

अस्पताल से लौटकर, वह बड़ी देर तक अपने बरामदे में बैठा, सुन्दरी भावी पत्नी के सपने देखता, जिसका काल्पनिक पल्लू उसके अदृश्य व्यक्तित्व का स्पर्श लेकर, उसके गालों पर फरफराकर उसे पुलकित कर देता। एक बार उसे उसने अपनी भाभी के साथ देखा था। लड़की असाधारण रूपसी न होने पर भी बेहद स्मार्ट थी। लखनऊ के लौरेटों में पढ़ने से, उसकी चाल-ढाल में कहीं भी पहाड़ी लटका नहीं था। रंग साँवला होने पर भी मुखश्री अपूर्व थी, वह चश्मा पहनती थी और कटे-सीधे बालों को घुँघराले बनाने के लिए प्रत्येक माह में एक बार दिल्ली जाती थी। फियट गाड़ी की पृष्ठभूमि में, नकली घुँघराले केशपाश फहराती आधुनिका भावी पत्नी उसे बड़ी प्यारी लगती।

उस दिन भी वह उसी का मीठा-सा सपना देख रहा था कि मास्टरनी के चौकीदार नें आकर सब गुड़-गोबर कर दिया, "एक बार चलकर देख लीजिए सरकार, मिस सा'ब को बहुत बुखार है।" मन ही मन उसकी मिस सा'ब को कोसता वह घोड़े पर जा बैठा था। मास्टरनी सरकारी नौकर थी, कहीं शिकायत कर दी तो असेम्बली के प्रश्न, उसकी नयी-नयी नौकरी के लिलार में कलंक थोप देंगे। पर इतनी दूर जाने पर जब वह

सड़ियल मास्टरनी बड़ी अदा से तैरने चल दी तो वह क्रोध से बौखला गया। ठण्डी हवा लगने से उसका क्रोध धीरे-धीरे शान्त हो गया था। अचानक नुकीले उतार पर उसका घोड़ा अड़ने लगा, उसकी गर्दन पर शेर की-सी अयाल, बार-बार उसकी आँखों पर उतर कर, उसे अन्धा बना दे रही थी और पहाड़ी घोड़ा हिनहिनाकर अड़ा जा रहा था। खीझकर सुबोध उतर गया और स्वयं लगाम खींचता आगे-आगे चलने लगा। एकाएक वह ठिठककर, तिब्बत की घाटी की अपूर्व सौन्दर्य-सुषमा को मन्त्रमुग्ध हो देखने लगा। कहीं चारों ओर खड़ी नीली ऊदी हरी पर्वत प्राचीरें थीं, कहीं एकदम सपाट मैदान, कहीं नागफनी के झुरमुट, विषैले पहाड़ी काँटों की झाड़ियाँ और कहीं सर्पगन्धा के फन उठाये बल खाते पौधे। घोड़ा उसे फिर खींचने लगा। उसने देखा, बायीं ओर लता-गुल्मों के तोरणद्वार से अस्पष्ट दीखती एक पान के पत्ते के आकार की हरी नीली झील थी। प्यासा घोड़ा उसे वहीं ले जा रहा था। सुबोध ने गिरगिट के-से रंग बदलनेवाली अनेक पहाड़ी झीलें देखी थीं, नैनीताल की, भीमताल की, नौकुचिया ताल की, पर यह अनोखी झील उन सबसे सुन्दर थी। लगता था विधाता ने, क्यूबिज्म की शैली अपनाकर, रंगों के दुःसाहसी प्रयोग से पूरी झील को रंग दिया था।

लगाम छुड़ाकर घोड़ा पानी पीने लगा। अचानक झील के अन्तिम छोर पर एक लम्बी चोटी, क्रुद्ध नागिन-सी फुत्कार उठी। पानी से भीगी, वन-कन्या की तरल आँखें क्रोध और अविश्वास से दहकने लगीं। कौन था यह असभ्य अभद्र पुरुष, जो उसके एकान्त विहार में विघ्न डालने उपस्थित होकर उसे निस्संकोच घूरे जा रहा था! सचमुच सुबोध उसे बड़ी निर्लज्जता से घूर रहा था। दोष उसका नहीं था। नीली झील के काले पानी में, चंदन-सा चेहरा और भी निखर आया था। कनपटी तक चिपकी भीगी लटों को एक हाथ से हटाती वह और गहरे पानी में उतर गयी। आज तक वह उस अज्ञात झील की एक मात्र निरंकुश साम्राज्ञी थी। पतली

गुलाबी साड़ी जो उसके शरीर की गुलाबी कान्ति से घुलमिल कर एकाकार हो गयी थी, पानी में गुब्बारे-सी फूल कर, कमलिनी की पँखुड़ियों की भाँति उसके चारों ओर फैल जाती थी, और वह बार-बार उसे सँभालने के प्रयत्न में, निरन्तर गहरे जल में उतरती जा रही थी। जल की लहरों के बीच, उसके अनावृत स्कन्ध दर्पण से चमककर, डॉक्टर की आँखों को चौंधिया रहे थे। उसके कपड़े, हाथ की घड़ी, स्कूल का रजिस्टर किनारे पर पड़े थे। सुबोध का घोड़ा पानी पी चुका था।

"आप कृपा कर चले जायें, मुझे ठीक दस बजे स्कूल पहुँचना है", झील के उसी कोने से अनुशासनपूर्ण आदेश आया। ओह तो यही थी मास्टरनी। उस सरल सुन्दरी देहाती मास्टरनी के सम्मुख अपने साहबी व्यक्तित्व का परिचय देना ही होगा।

"तो आइए ना बाहर। आप ही को देखने तो गया था। अब जब आया ही हूँ तो यहीं नुस्खा लिख दूँ", वह सचमुच ही बड़ी धृष्टता से मुस्कुराकर, दोनों टाँगे फैलाकर बैठ गया। प्रकृति की उस एकान्त वनस्थली के रंगमंच पर हल्की-फुल्की नौटंकी हो जाये तो क्या दोष था। पानी पीकर उसका घोड़ा, मास्टरनी के रजिस्टर को सूँघने लगा।

"देखिए मेरा घोड़ा आपका रजिस्टर सूँघकर यहीं बता देगा कि आज आपकी कितनी लड़कियाँ गैरहाजिर हैं", वह अब हँसकर सीटी बजाने लगा। पर मास्टरनी नहीं हँसी, वह तीर-सी तैरती एकदम उसके पास आ गयी। "आप जायेंगे या नहीं? मुझे ठीक दस बजे पहुँचना है।" स्वर में कड़ी घबड़ाहट, क्रोध या खीझ का लवलेश भी नहीं था।

"नहीं", सुबोध पर भी न जाने कौन-सा भूत सवार था। असल में बहुत दिनों से रूखी अध्यापिकाओं का इलाज करते-करते वह ऊब गया था। देर तक मरुभूमि में भटकने पर, सरस जलधार किस कलान्त पथिक को आकर्षित नहीं करती!

इतने ही में मास्टरनी गजब कर बैठी। एक छलाँग लगा, वह बिना

किसी झिझक के झील से बाहर निकल आयी। सुबोध, शायद उस पठानिन-सी लम्बी किशोरी की उस दुःसाहसी छलांग के लिए प्रस्तुत नहीं था। चन्दन की काठी-सी देह की एक-एक लुभावनी रेखा, पारदर्शी भीगी साड़ी की भाँज में स्पष्ट हो उठी और सहम कर सुबोध ने आँखें फेर लीं। लगता था संगमरमर की देवी की मूर्ति, जलाशय से निकलकर स्वयं किसी मन्दिर में प्रतिष्ठित होने जा रही थी।

उसने आँखें खोलीं तो मास्टरनी कपड़े पहनकर भीगी धोती निचोड़ फैला चुकी थी, और काँख में रजिस्टर दबाये, घड़ी का फीता बाँधती उतार उतरने लगी थी।

"बुरा मान गयीं क्या, मैं तो मजाक कर रहा था", खिसियाये सुबोध ने कैफियत दी, पर वह कुछ नहीं बोली। क्षण भर में उसे पहाड़ी पगडण्डियों के गोरखधन्धे में डुबा, वह न जाने किस अदृश्य मार्ग से उसे चकरघिन्नी दे गयी।

○ ○

इसके बाद चेष्टा करने पर भी सुबोध उसका सन्धान नहीं पा सका। एक तो बुखार में शीतोष्ण पहाड़ी झील का नहाना, उस पर पैदल चलना। हो न हो लड़की बीमार पड़ गयी थी। अब देख लेगा वह! जब तक अपनी यूनानी नाक उसके चरणों में नहीं घिसेगी वह दवा नहीं लिखेगा। पर उसकी आशा व्यर्थ गयी, मास्टरनी का चौकीदार उसे बुलाने नहीं आया।

एक दिन सुबह उठते ही उसके चकले से चेहरे वाले नौकर ने सूचना दी, "चाय खतम हो गया और बाजार आज बन्द है। स्कूल का कोई मास्टरनी मर गया, इसीसे दिन भर हड़ताल होगा।"

सुबोध का मौत से दिन-रात समझौता करने वाला पत्थर-सा डॉक्टरी कलेजा भी धड़कने लगा। दिन भर वह बिना खाये-पिये कमरे में पड़ा रहा। एक तो मास्टरनी ने उसकी दवा खाने से मृत्यु का वरण करना

श्रेयस्कर समझा, यहीं उसकी नयी डॉक्टरी पर कड़ी चोट थी, उस पर मन ही मन अपराधी की भावना उसकी आत्मा कचोटने लगी। उसी ने तो बेचारी को, यह जानते हुए भी कि बुखार है, देर तक पानी में रहने को वाध्य किया था। दो पेनिसिलिन लगा देता तो शायद बच जाती। पर मरे अभागी, उसका क्या!

वह उठकर घूमने जा ही रहा था कि रिटायर्ड मेजर नौटियाल आ गये, "अरे यार डॉक्टर, कुछ ब्रैण्डी-ब्रैण्डी है तो निकालो। हमारी बहन की ननद थी यही मास्टरनी। आज सुबह-सुबह हार्ट फेल हो गया। पहले सोचा तुम्हें ले चलें, पर क्या करते! बुढ़िया वालविधवा थी। पाप कटा, पर ऐसी तगड़ी सतयुगी हड्डियाँ थीं कि अर्थी ने कन्धा तोड़ दिया।"

ओह तो, वह मास्टरनी नहीं मरी! डॉक्टर के जी में आया मेजर को हवा में उछाल कर नचा दे। ब्रैण्डी पीकर मेजर गया, तो सुबोध ने सोचा, क्यों न जाकर वह स्वयं ही मास्टरनी को देख आये! बीमार वह अवश्य ही थी, क्योंकि पिछले एक सप्ताह से न वह स्कूल आती थी न झील में तैरने।

● ●

जंगबहादुर छुट्टी लेकर गाँव गया था। डॉक्टर ने अपना घोड़ा निकाला और एड़ लगाकर भगा दिया। झील के पास पहुँचते ही घोड़ा हिनहिनाया, तो बड़ी आशा से धड़कते कलेजे को थामकर सुबोध बढ़ा। शून्य नीली झील में सूखे मरे पत्ते तैर रहे थे। शान्त झील की एक-एक लहर मुर्दा पड़ी थी। पानी पिलाकर उसने घोड़े की लगाम खींच ली। बीस मिनट में वह मास्टरनी के घर के पास पहुँचा, तो उसका उत्साह सहसा ठण्डा पड़ गया। बिना बुलाये जाना क्या उचित था? तो क्या इतनी दूर आकर लौट जाये? कभी लगाम कसती और कभी ढीली होती देखकर घोड़ा अधैर्य से हिनहिनाया, साथ ही मास्टरनी की माँ बाहर आ गयी।

"अरे डॉक्टर सा'व, आप!" आश्चर्य से अपने दोनों हाथ फैलाकर

उसने माथे से लगा लिये, "हे भवानी मैया, तू सच्ची है, सुबह से मैं मना रही थी कि कोई माई का लाल मेरे डॉक्टर सा'ब को बुला दे तो मैं उसकी जूतियाँ चाट जाऊँ, पर देखो मैया खुद बुला लायी। आओ बेटा, छोकरी सात दिन से वाई ज्वर में पड़ी है।"

छोटे-से पहाड़ी द्वार से अपना लम्बा धड़ धनुप की प्रत्यंचा की भाँति मोड़ता, डॉक्टर भीतर गया। जहाज-सा पलंग, उसे ओवरसियर पिता की मृत्यु के पश्चात् विरासत में मिला था। उसी पर मास्टरनी विना हिले-डुले मुर्दा-सी पड़ी थी। उसकी लम्बी वेणी पलंग से नीचे लटक रही थी। ज्वर की तीव्रता से चेहरा ताम्रपात्र-सा दमक रहा था। आहट पाते ही वह उठ बैठी और बड़बड़ाने लगी, "मैं पूछती हूँ, जाते हो या नहीं? मुझे ठीक दस बजे स्कूल पहुँचना है।"

"यही हाल बेटा, रात भर उठ-उठकर बैठती रही। क्या करूँ मैं, हे भवानी!" मास्टरनी की माँ व्याकुल होकर, पलंग की परिक्रमा-सी करने लगी, "सो जा लली, मेरी बच्ची सो जा, देख डॉक्टर सा'ब आये हैं। अंग्रेजी दवा देंगे और तेरा बुखार उतर जायेगा।"

सचमुच ही शान्त होकर मास्टरनी चुपचाप लेट गयी। सुबोध ने ज्वर नापा, पसलियाँ खटखटायीं, जीभ देखी। नहीं, सन्निपात नहीं था, बुरी तरह ठण्ड लग गयी थी। थोड़ी ही असावधानी से निमोनिया भी हो सकता था। मास्टरनी का स्वास्थ्य अनुपम था। उसकी रत्नगर्भा अपूर्व देहवल्लरी, कड़े से कड़े रोग को भी पटखनी दे सकती थी।

तीसरे ही दिन सुबोध की दवा ने उसे चंगा कर दिया। अभी भी वह बहुत दुर्बल थी। सहारा देकर माँ बिठाती और बड़े यत्न से सुबोध उसकी पुष्ट नग्न बाँह में इन्जेक्शन चुभाता तो वह भय से आँखें मीचकर माँ की पीठ में मुँह छिपा लेती। कभी-कभी पीड़ा से उसकी आँखें छलक उठतीं तो सुबोध के जी में आता अपनी बाँह में भी सुई घुपा ले।

धीरे-धीरे रोग-मुक्त मास्टरनी हँसने भी लगी। हँसती मास्टरनी,

झील में तैरती मास्टरनी से करोड़ गुना सुन्दरी थी। उसके मोती से दाँत शायद उसे अपनी माँ से विरासत में मिले थे। उसकी लम्बी पलकें उभरे गालों पर रेशमी चिलमन-सी फैल जातीं। उसके गठे कुमाऊँनी राजपूती शरीर का एक-एक अंग साँचे में ढला था। उसने कभी कुमाऊँ की देहरी नहीं लाँघी थी, इसीसे पहाड़ी हवा ने सेवों की लाली से उसके गाल सदा के लिए रंग दिये थे। उसकी चौड़ी हथेली का एक तमाचा, कड़े से कड़े पुरुष को भी दिन में तारे दिखा सकता था। सबसे मोहक थी उसकी भव्य चाल। एक-एक पैर को किसी नृत्यकुशला वारांगना की-सी मादक भंगिमा में उठाती वह डॉक्टर को मुग्ध कर देती।

सप्ताह में दो दिन उसे इन्जेक्शन लगाने सुबोध आता, तो वह बिना किसी झिझक के नंगी बाह उसकी ओर बढ़ा देती। अन्तर इतना था; पहले दुर्बल रोगिणी का चित्त भय से काँपता था, अब स्वयं मसीहा बाँह —थामते ही थरथरा जाता।

एक दिन उसकी माँ बाहर गयी थी। सुबोध इन्जेक्शन लगाने गया था। मास्टरनी ने अपनी हाथी दाँत-सी शुभ्र बाँह उसकी ओर बढ़ायी, तो सुबोध ने इन्जेक्शन मेंज पर रख, झुककर बाँह को चूम लिया। दूसरे ही क्षण वह अपने दुःसाहस पर काँप गया। अगर कहीं लड़की ने हल्ला मचा दिया तो ! सुना है, इस जंगली पहाड़ी इलाके के लोग बड़े खूँखार होते हैं। कोई भी उनकी बहू-बेटियों पर नजर डाले तो आँखें निकाल लेते हैं। पर उसने डरते-डरते आँखें उठायीं तो देखा मास्टरनी मुस्करा रही थी। फिर तो नित्य ही दोनों लुक-छिपकर मिलने लगे। प्रायः ही दोनों झील के झुटपुटे साये में घण्टों पड़े रहते। जंगबहादुर को लम्बी छुट्टी देकर डॉक्टर साहब ने घर भेज दिया था। पिछवाड़े की खिड़की से फाँद कर, मास्टरनी स्टोव पर एक से एक बढ़िया खाना बनाकर डॉक्टर को खिलाती। कभी-कभी दो पीरियड की एक साथ छुट्टी पर वह समय से पर्व ही आ जाती। डॉक्टर अस्पताल से लौटकर आता तो देखता उसके पलंग

पर, हाथ-पैर सिकोड़े बिल्ली-सी मास्टरनी सो रही है। वह उसकी सुडौल नाक पकड़कर दबा देता और कान के पास फुसफुसाता, "अरी खसिणी उठ।" इस सम्बोधन से मास्टरनी बौखला जाती। उठते ही रजिस्टर खिड़की से फेंक वह स्वयं कूदने का उपक्रम करती, कि उसके शुभ्र चरण चूम-चूमकर डॉक्टर उसे मनाता, "अच्छा, माफ कर दे, अब कभी नहीं कहूँगा।" मास्टरनी बड़ी देर तक उसे क्षमा नहीं कर पाती। यह ठीक था कि पहाड़ की राजपूतनी को गर्वीले ब्राह्मण 'खसिणी' कहकर पुकार सकते थे, पर यह ब्राह्मण क्या अभी भी उसे ब्रह्मद्रोही समझता है, जब वह उसे अपना सब कुछ दे चुकी है? कभी-कभी वह उसकी लापरवाही से इधर-उधर फेंके गये कपड़ों को सँभालती, कभी उधड़े स्वेटर को ठीकठाक करती, कभी उसकी लावारिस चादरों में नाम लिखती। मास्टरनी का हर काम सुघड़ होता। चिट्ठियाँ लिखती तो लिफाफे की प्रत्येक भाँज कायदे से मुड़ी होती, खाना बनाती तो सब्जी के छिलकों तक को चौखट में-सा चढ़ाकर रख देती। डॉक्टर उस अद्भुत नारी के प्रत्येक गुण को आश्चर्य से देखता रहा। विधाता ने कहीं तो कोई दोष रहने दिया होता।

○ ○

तीन महीने की विवेकभ्रष्ट अवधि में युगल प्रेमी, बहते-बहते दूर निकल गये। प्रेम के ज्वारभाटे में मास्टरनी राजेश्वरी, गले तक डूब चुकी थी, पर सुबोध को चिन्ता का घुन लगने लगा था। उसके पिता का पत्र आया था कि दशहरे को उसके टीके का मुहूर्त निकला था, छुट्टी लेकर उसे आना होगा। पिता के पत्र ने उसकी छाती में गोली-सी दाग दी। राजेश्वरी से विवाह की बात वह जबान पर नहीं ला सकता था। आज तक कुमाऊँ के इतिहास में किसी ब्राह्मण-पुत्र ने क्षत्रिय-कन्या से विवाह करने का दुस्साहस नहीं किया था। अपने चित्त की दुर्बलता पहचान लेना मनुष्य के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है, रात-रात भर उसे वही अभिशाप दग्ध कर उठा। नित्य वह जी कड़ा कर, राजी से बात छेड़ने का संकल्प

करता, पर खिड़की से धम्म से कूद, कोने में रजिस्टर फेंक वह भागकर उसके गले में दोनों बाँहें डाल देती और उसके सारे संकल्प ढेर हो जाते।

झील में वह एक दिन मछली-सी तैर रही थी। कभी-कभी खिलवाड़ में, किनारे लेटे अपने प्रेमी के दोनों पैर, पानी में खींचकर चूम लेती और स्वयं खिलखिलाकर दूर छिटक जाती। कभी कुशल तैराक-सी डुबकी में सर इतनी देर तक छिपा देती कि सुवोध व्याकुल होकर पुकार उठता, "राजी, बाहर निकलो जल्दी, क्या मजाक हो रहा है यह!" हँसती जल-परी अपना कमलिनी-सा उत्फुल्ल हँसता चेहरा बाहर निकाल देती।

बड़े प्रयत्न से सुवोध ने प्रसंग छेड़ा, "राजी, कभी तुम्हारी बदली हो जाये, ताल भी न रहे और मैं भी न रहूँ, तब तुम क्या रह जाओगी?"

पानी में तैरती रसिकप्रिया ने अपना धड़ पानी से बाहर निकाल लिया। पानी की असंख्य कुंजर मणियाँ शुभ्र ललाट पर झलक उठीं, "क्यों? मैं रह जाऊँगी मास्टरनी!' फिर वह तैरना बन्द कर, भीगे ही कपड़ों में उसके पास आकर लेट गयी। जीवन के कुछ अमूल्य क्षण ऐसे भी होते हैं जब मुखर से मुखर व्यक्ति को भी नियति गूंगा बना देती है। सुवोध कुछ नहीं कह पाया, पार्श्व में लेटी जलपरी को उसने बाँहों में भर लिया।

दूसरे दिन दशहरे का एक दिन और कम हो गया। मास्टरनी नित्य नियमानुसार आयी। स्टोव जलाकर चाय का पानी चढ़ाया। सहसा सुवोध का उदास चेहरा देखकर उसे साँप सूँघ गया। नारी को विधाता ने अलौकिक सूक्ष्म दृष्टि दी है। किसी भावी अनिष्ट को वह पशु की-सी तीव्र घ्राण शक्ति से सूँघकर स्वयं ही अनमनी हो जाती है।

"क्या बात है सुवोध", वह बड़े लाड़ से उसके पास सरक आयी। सुवोध उस निष्पाप किशोरी को अब और नहीं छल सका, सब कुछ कह गया, पिता की महत्त्वाकांक्षा, भाभी की बहन और, अन्त में स्वयं अपनी विवशता। क्षण भर को मास्टरनी का चेहरा इतना पीला पड़ गया कि

वह अज्ञात आशंका से काँप गया। कहीं कुछ उपद्रव तो नहीं हो गया, तब तो विवाह करना ही पड़ेगा। अब शायद वह उठकर अपनी चौड़ी राजपूत हथेली का करारा चाँटा उसके गाल पर धर देगी, पर नहीं; मास्टरनी कुछ नहीं बोली। वह धीरे से उठी, मेज पर धरा रजिस्टर काँख में दबाया और बिना उसकी ओर दृष्टिपात किये, द्वार खोलकर निकल गयी। उसके सर्वहारा महान् प्रेम का कितना सस्ता मूल्य आँका गया था, उसी व्यथा और लज्जा से वह स्तब्ध हो गयी थी। उस गर्वीली राजपूतनी के अक्खड़ स्वभाव को सुबोध जानता था। वह जा रही थी और सुबोध खिड़की से देख रहा था। वह पहले उसे कभी दिन डूबे अकेली नहीं जाने देता था। उसी पगडण्डी पर नरभक्षी शेर का आतंक था, पर आज उसे इस नरभक्षी से बड़ा नरभक्षी कौन मिल सकता था। गर्दन ऊँची किये मास्टरनी धीरे-धीरे पगडण्डी से ओझल हो गयी।

० ०

दूसरे ही दिन सुबह सुबोध सारा सामान बटोरकर चला गया। बड़ी धूम से टीका चढ़ा, उससे भी धूम से विवाह हुआ। समृद्ध श्वसुर ने पुत्री-जामाता को हनीमून के लिए कश्मीर भेज दिया। कभी-कभी हनीमून के मधुर स्वप्नाकाश पर तैरती जलपरी आ जाती, तो वह व्याकुल हो उठता। लगता पानी से भीगी देह-परिमल उसे उत्तराखण्ड की ओर खींच रही है, पर दूसरे क्षण पार्श्व में लेटी नयी-नवेली उसे खींच कर लिटा देती।

लौटने तक उसकी नियुक्ति दिल्ली में हो चुकी थी। अब वह नयी फियट में घूमता, नये फ्रिज का ठण्डा पानी पीता और नयी पत्नी के पीछे-पीछे हाथ बाँधे घूमता रहता।

विवाह को एक वर्ष हो चुका था। जलपरी अब बासी पड़ चुकी थी, पर अभी भी उसकी पत्नी कभी गुसलखाने से नहाकर निकलती तो उसके भीगे बालों को सूँघते ही उसके नथुने फड़कने लगते। इसी बीच उसे मामा के पुत्र के विवाह में नैनीताल जाना था। श्वसुर ने पुत्री को नहीं

भेजा, पहाड़ के घोंसले-से मकानों में दिल्ली-निवासिनी उनकी लाड़ली का दम घुट जायगा। झल्लाकर सुबोध अकेला ही चल दिया। लौटा तो बेहद भीड़ थी, एक तो जुलाई में नैनीताल से काठगोदाम को चलती प्रत्येक बस ठसाठस भरी जाती है, उस पर उन दिनों किसी फिल्म की शूटिंग चल रही थी। बड़ी कठिनता से लोअर का टिकट लेकर वह एक बुढ़िया की पोटलियों से टकराता, बैठ ही पाया था कि सामने की सीट पर दृष्टि पड़ी। अपनी परिचित मुद्रा में, गोद में हाथ-पर-हाथ धरे मास्टरनी बैठी थी। वही थी, इसमें कोई संदेह नहीं था। उस चौड़ी पीठ और भव्य गर्दन की स्वामिनी और कोई हो ही नहीं सकती थी।

"अरे राजेश्वरी, तू कहाँ ! ले खूब भेंट हुई", एक मोटी-सी औरत, भागती-भागती उसकी खिड़की के पास खड़ी हो गयी, "क्यों, क्या बदली हो गयी ?"

"हाँ मौसी", प्राणों से प्रिय चेहरा तिरछा हुआ, सुभग नासिका में वही बल पड़े जो उसके मुस्कराने पर पड़ा करते थे, "पीलीभीत जा रही हूँ।"

"अरे, क्या बनकर गयी ? हेडमास्टरनी ?"

"नहीं मौसी, मास्टरनी।"

"तेरी अम्मा ?" वह औरत अभी भी हाँफ रही थी। एक हाथ आकाश की ओर उठा, बड़ी उदासी से राजी मुस्करायी, वहाँ।"

"हे राम, क्या बीमार हुई ? क्या उमर है तेरी, और एकदम अकेली", दयालु मौसी की सहानुभूति और मास्टरनी का उत्तर, ड्राइवर के हॉर्न में डूब गया। वह बड़े अधैर्य से हॉर्न बजाता, उस बूढ़े यात्री को कोस रहा था, जो ठीक बस छूटने के समय, उतर कर नाली पर बैठा, लघुशंका से निवृत्त होने लगा था।

"क्या बतायें साहब", ड्राइवर कह रहा था, "इन बूढ़ों के मारे आफत है। घर से कुछ कर-धर के नहीं चलेंगे, जहाँ नाली देखी, बैठ गये। अब शायद बुड़ज्यू दस दिन की एक साथ करके उठेंगे....उठो हो

गुरू । साथ ही पूरी बस के यात्री, ड्राइवर की रसिकता पर हो-हो कर हँस उठे । अकेली मास्टरनी नहीं हँसी, सर झुकाये चुपचाप बैठी रही । सुबोध अब और नहीं देख सका, हाथ का सूटकेस उठाकर पिछवाड़े के द्वार की ओर बढ़ गया ।

"अरे हजूर, कहाँ ?" कण्डक्टर ने आश्चर्य से पूछा ।

"अचानक एक काम याद आ गया, कल जायेंगे । टिकट बेचकर पैसे तुम रख लेना", वह सूखी हँसी-हँसकर उतर गया । बूढ़े के बस में बैठते ही बस चल दी ।

बड़ी देर तक सुबोध ताल के पास खड़ा रहा । वैसी ही हरी नीली झील थी, वे ही परिचित मेघखंड और झील में तैरती सूखी मरी पत्तियाँ, नहीं थी केवल जलपरी ! क्षण भर को उसके जीवन की मरुभूमि को अपनी आर्द्रता से छूकर वह तैरती-तैरती किसी अनन्त जलराशि में विलीन हो गयी थी ।

धुआँ

रामगढ़ के सीमान्त पर बसे छोटे-से नैक ग्राम में, जिस दिन रजुला का जन्म हुआ, दिशाएँ पहाड़ी दमुवे की चोट और तुतुरी की ध्वनि से आनन्द-विभोर हो उठीं। ग्राम आज भी जीवित है, पर उसके मकानों के कक्षगवाक्ष, किसी जर्जर वृद्ध की जीर्ण दन्तपंक्ति की ही भांति, टूटकर बिखर पड़ने को तत्पर हैं। जो अब दूर से, लासा के दलाईलामा के विचित्र महल-सा दिखता है, किसी समय कुमाऊँ का प्रसिद्ध सौन्दर्यतीर्थ था। छोटे काठ के यही खँडहर, कभी तबले की झनक और घुँघरुओं की रुनक से गूंज उठते थे। हिरणी के-से शत-शत नयन-कटाक्ष, दूर-दूर से तरुण, किशोर, विगलित पौरुष के क्षत्रिय, ब्राह्मण, शूद्र सबको एक अनोखी भावनात्मक एकता की डोर से बाँधकर खींच लाते थे। प्रेम के कुछ अमूल्य क्षणों का मुँहमाँगा दाम देकर, उच्च कुलगोत्र का अस्तित्व मिटा, न जाने कितने पन्त, पाण्डे और जोशी यहाँ विवेकभ्रष्ट हुए।

सेब की नशीली खुशबू में डूबा रामगढ़ तब और भी मादक था, वहाँ की हवा के हर झोंके में सेब की मीठी खुशबू रहती पर तब रामगढ़, आज की भाँति अपने सेवों के लिए प्रसिद्ध नहीं था, रामगढ़ का मुख्य आकर्षण था नैक ग्राम। वहाँ की देवांगना-सी सुन्दरी उर्वशियाँ शरीर को ऐसी लगन और भक्ति से बेचती थीं, जैसे सामान्य-सी त्रुटि भी उनके जीवन को कलंकित कर देगी। प्रेम के आदान-प्रदान में कहीं भी वारांगना का विलास नहीं रहता, वाणी में, कटाक्षमय अभ्यर्थना में, यहाँ तक कि उनके संगीत के नैवेद्य में भी कहीं पर उनके कलुषित पेशे की छाप नहीं रहती।

कभी किसी मनचले ग्राहक को, उनसे ठुमरी या गजल-दादरा सुनाने का आग्रह करने का साहस नहीं होता। सुन्दर ललाट पर पड़ा हल्के-से घूँघट का घेरा, आनत आनन पर भी अपनी पवित्र छाया डाल देता। भजन, कीर्तन और परी चाँचरियों के पहाड़ी पूजागीत सुना, हाथ में मिट्टी का जला प्रदीप लेकर, सिर झुकाये अलस-पगों से, किसी सौम्य उच्च कुलवधू की भाँति ही वे उर्वशियाँ ग्राहकों के पीछे-पीछे अपने कक्षों में चली जातीं।

○ ○

पुत्री का जन्म उस बस्ती में सर्वदा बड़े उल्लास से मनाया जाता। इसी से जब उनमें सबसे सुन्दरी मोतिया, अलस होकर नींबू और दाड़िम चाटने लगी तो अनुभवी सखियों ने घेर लिया—

"हाय, राम कसम, लड़की होगी, इसी से तो खट्टा माँग रही है, अभी से !" धना बोली।

"और क्या !" पिरमा चहकी, "लड़का निगोड़ा ऐसा पीला चटक रंग थोड़े ही ना रहने देता।"

मोतिया पान के पत्ते-सी फेरी जाने लगी, बत्तीस सुन्दरियों के हृदय प्रतीक्षा में धड़कने लगे, उनके वंश की पल्लवित लता अब सूखती जा रही थी, पन्द्रह वर्ष पहले चन्द्रा के निगोड़ा पूत ही जन्मा था। रजुला का जन्म हुआ तो सखियाँ नाच उठीं। रंगीली बस्ती के तीन-चार पुरुषों को नैनीताल भेजकर, गुरखा बैण्ड मँगवाया गया, तीन-तीन हलवाइयों ने कढ़ाह चढ़ा दिये, एक ओर ब्राह्मणों के लिए दही में गुँधे आटे के पकवान उतरने लगे, दूसरी ओर बड़े-बड़े हण्डों में क्षत्रियों के लिए समूचे बकरे भुने जाने लगे। लाल रुँवाली के पिछौड़ों से अपने रूप की बिजलियाँ गिराती, रजुला की बत्तीस मौसियाँ निमन्त्रित अतिथिगणों के हृदयों पर छूरियाँ चलाने लगीं। पण्डितजी ने, शंख को मुँह में लगाकर, तीन बार नवजात कन्या के कान में नाम फूंक दिया—'रजुला–राजेश्वरी–राधिका' और स्वयं लाल पड़कर रह गये।

"यह काम असल में कन्या के पिता को करना था", कहकर वे खिसियानी हँसी हँसने लगे।

"हो न हो, इसमें तुम्हारे ही-से किसी ब्राह्मण का रक्त है पण्डित ज्यू, मिला लो रंग", साथ ही खिलखिल करती दो-तीन मौसियों ने पण्डितजी को घेर लिया, "क्या वात कही तुमने भी !"

पण्डितजी स्वयं भी हँसने लगे—गहरी दक्षिणा, रसीली चुटकियों और मछली-सी लम्बी आँखों के कटाक्षों ने उन्हें रससागर में गले तक डुबो दिया था। "माया तो देखो भगवान् की, कल कुण्डली वनायी, तो वस देखता रह गया, रत्नांजलि योग है इसका पिरमा, हाथों से रतन उलीचे तो फिर भी हथेली रत्नों से भरी रहे !" उन्होंने काल्पनिक रत्नों की ढेरी में हथेली की अँजुली भर कर निकाली और हवा में विखेर दी। "ऐसे, समझी ? वाप रे रत्नांजलि योग", वे स्वयं ही अविश्वास से वुदवुदाने लगे।

"वह योग तो हम सवका है यार पण्डित ज्यू", रसीली पिरमा चहकी और खिलखिलाकर हँसी के मंजीरे वन गये।

वत्तीस मातृत्व-वंचिता नारियों के अभिशप्त दग्ध हृदयों का मलहम वन गयी रजुला। सन्ध्या को सव अपने शृङ्गार-कक्षों में चली जातीं तो सयानी देवकी रजुला को गोद में नचाती—

आजा मेरी चम्पाकली
सोजा मेरी चम्पावती

ऐसे ही देवी ने मोतिया को नचाया था, ऐसी ही थी भीमू, लछमी, परु और न जाने कितनी रूपसियों का स्पर्श अभी भी उसकी गोदी में सिचकर रह गया था और सव एक-एक कर ताल में पकड़ी मछलियों की ही भाँति,उसकी हथेली से फिसल कर फिर ताल ही में जा गिरी थीं। स्वयं वह भी प्रभू के भजन को घर से निकल गयी थी ! जोगिया कपड़े रंग के, सिर मूँड, वह एक नैपाली वावा के दल में वद्रीनाथ की यात्रा को

निकल गयी थी, पति लाम में मारा गया और क्रूर सास ने उसकी कोमल पीठ, गर्म लोहे की सलाखों से दाग-दाग कर रख दी थी, इसी से घर-द्वार की माया-ममता छोड़, वह अलख कहकर निकल पड़ी थी। पन्द्रह वर्ष की बालिका वैराग्य के भूलभुलैये में भटककर, न जाने कब विलास की नगरी में आ गिरी। अब तो उसने सातों नरक देख लिये थे, उसकी पहली पुत्री, बाईस वर्ष में ही भीषण रोग से सड़-सड़कर मर गयी थी, तब उसने कसम खायी थी कि वह अब मनुष्य मात्र से माया-ममता नहीं करेगी, पर इकहत्तर वर्ष में फिर बन्धन में पड़ गयी। मोतिया भी उसी की पुत्री थी। मोतिया, जैसे-जैसे गतयौवना होती जा रही थी, वैसे ही उसका भाव भी चढ़ता ही जा रहा था।

"शहद जितना पुराना हो उतना ही मीठा भी होता है मोतुली, तू हमारे कुल का खरा शहद है", देवकी ममत्व से उसे निहार कर कहती। नन्दादेवी का डोला उठता तो मोतिया की ही पुकार होती। वही डोले के आगे-आगे नाचती। मखमली लहँगा, बढ़िया लाल गोट लगा अतलसी पिछौड़ा और हाथ में इत्र की खुशबू से तर लाल रेशमी रूमाल लेकर वह नाचती और कुमाऊँ के रंगीले जवानों के दिल नाच उठते। मजाल है, किसी कुमाऊँनी लखपती के नौशे की डोली बिना मोतिया के नाच के उठ जाये! सिर से पैर तक सोने से लदी मोतिया जिधर कदम उठाती फूल खिल जाते। मोतिया की रजुला जब आठ साल की हुई तो बड़े आनन-फानन से उसकी संगीत की बारहखड़ी आरम्भ की गयी। एक बकरा काट कर, उस्ताद बुन्दू ने उसकी नागफनी के फूल-सी लाल जिह्वा पर सरस्वती बनायी। कुछ दिन बाद, उस्ताद ने भैरवी की एक छोटी-सी बन्दिश रजुला के गले पर उतारी तो उसने खिलखिलाकर इस बारीकी से दुहरा दी, कि बुन्दू मियाँ दंग रह गये, और रजुला के पैर छूकर लौट गये, "वाह उस्ताद, आज से तू गुरु और मैं चेला, मोतिया बेटी इस हीरे को गुदड़ी में मत छिपा। देख लेना एक दिन इसके सामने बड़े-बड़े उस्ताद

पानी भरेंगे। देस भेज इसे, वरना इसकी विद्या गले ही में सूखकर रह जायेगी।"

'हे राम, देस ! जहाँ लू की लपटें आदमी को जलाभुनकर रख देती हैं और ऐसो फूल-सी बिटिया....' बत्तीसों मौसियों के हृदय भर आये। पर वुन्दू मियाँ कभी ऐसी-वैसी वातें नहीं करते थे। कैसी-कैसी विद्या उनके गले में भरी थी। जब वे ही रजुला से हार मान गये तो देश ही तो भेजना पड़ेगा। वुन्दू मियाँ की वुआ की लड़की लखनऊ में रहती थी। सुना, रियासतों में ही शादी-ब्याह के मुजरों का बयाना लेती थी। "ग्रामोफून के डवल रिकार्डों में उनका गाया मेघ, पचास-पचास रुपयों में विकता है", वुन्दू मियाँ बोले, "अब तुम क्या समझो मेघ ! तुमने बहुत हुआ तो गा दिया सीधे सादे ठेके पर कोई भजन या काफी की होली, अरे बड़े-बड़े उस्तादों का गाना सुनोगी तो पसीना आ जायेगा। तबलेवाला है कि सम पै आता ही नहीं और मुरकियों के गोरख-धन्धों में तबलची को फँसा कर छोड़ दिया, कि लो बेटा चरो। आखिर तबलेवाला हारा गिड़गिड़ाया और गानेवालियों ने तान आलाप की रस्सी छोड़ी, सम पै आयी और तबलेवाले की जान बची, समझी, ये है गायकी।" वुन्दू संगीत का ऐसा विकट चित्र खींच देते कि बत्तीस जोड़ी सरल पहाड़ी आँखें फटी-फटी ही रह जातीं।

"तब तो मैं जरूर रजुला को देस भेजूँगी", मोतिया ने दिल पक्का कर लिया, "उस्ताद ज्यू, जैसे भी हो तुम इसे लखनऊ पहुँचा आओ, छोकरी नाम तो कमायेगी।" उसने वुन्दू मियाँ के पैर पकड़ लिये।

● ●

वुन्दू मियाँ रजुला को लखनऊ पहुँचा आये। वुन्दू मियाँ की बहन बेनजीर ने रजुला को पहले ही दिन से शासन की जंजीरों में जकड़ कर रख दिया। जंगली बुलबुल को सोने के पिंजड़े में चैन कहाँ ? कहाँ पहाड़ी आलूबुखारे, आड़ू और सेव के पेड़ों पर अँठखेलियाँ और कहाँ

तीव्र और कोमल स्वरों की उलझन और रियाज ! बत्तीस मौसियों के लाड़ और देवकी के दुलार के लिए बेचारी तरस-तरस कर रह गयी। कठोर साम्राज्ञी-सी बेनजीर की एक भृकुटी उठती और वह नन्हा-सा सर झुका लेती।

"मुझे मेरी माँ के पास क्या कभी नहीं जाने दोगी ?" एक दिन बड़े साहस से नन्हीं रजुला ने पूछ ही लिया। प्रश्न के साथ-साथ उसकी कटोरी-सी आँखें छलक आयीं।

"पगली लड़की, हमारे माँ-बाप कोई नहीं होते, समझी ? तेरा पेशा तेरी माँ, और तेरा हुनर तेरा बाप है। खबरदार जो आज से मैंने तेरी आँखों में आँसू देखे।"

रजुला ने सहम कर आँखें पोंछ लीं।

चन्दन का उबटन लगाकर तीन-तीन नौकरानियाँ उसे नहलातीं। बादाम पीसकर, गाय के घी में तर-बतर हलुआ बनाकर उसे खिलाया जाता और वह रियाज करने बैठती। हिंडोले पर बेनजीर उसके एक-एक स्वर और आलाप का लेखा रखती, जौनपुरी, कान्हड़ा, मालगुंजी, सहाना, ललित, परज जैसी विकट राग-रागिनियों की विषम सीढ़ियाँ पार कर, वह संगीत के जिस नन्दनवन में पहुँची, वहाँ क्षण भर को बत्तीस मौसियों के लाड़-भीने चेहरे स्वयं ही अस्पष्ट हो गये, वह धीरे-धीरे सबको भूलने लगी। अब वह सोलह वर्ष की थी, कई बार उसके घर से माँ ने चिट्ठियाँ भेजीं, पर उसे घर जाने की अनुमति नहीं मिली। तंग चूड़ीदार का दिलपसन्द रेशम, उसकी पतली किशोर टाँगों की पिण्डलियों को स्पष्ट कर देता, रेशमी कुर्ते के हीरे के बटन जगमगाकर देखनेवाले की दृष्टि बरबस उस सलोने चेहरे पर जड़ देते। किशोरी बनाते-बनाते जैसे विधाता ने उसे फिर बचपन लौटा दिया था। छरहरे शरीर पर उभार और गोलाई नाममात्र को थी, जैसे नवतारुण्य स्पर्श मात्र कर लौट गया हो। आँखें बड़ी नहीं थीं, किन्तु काले भँवरे-सी

पुतलियाँ, चञ्चल तितलियों-सी थिरकती रहतीं, गालों की दोनों हड्डियों ने बड़े ही मोहक ढंग से उठकर चेहरे को कुछ-कुछ मंगोल-सा बना दिया था। नाक भी छोटे-से चेहरे के ही अनुरूप थी, एकदम छोटी-सी। बादाम रोगन और बटेर का शोरबा भी छरहरे शरीर को अधिक पुष्ट नहीं कर सका था, किन्तु उस सुंदरी बालिका का सौन्दर्य ही उसके उड़नछू व्यक्तित्व में था। लगता था, यह मानवी नहीं, स्वर्ग की कोई स्वप्न-सुंदरी अप्सरा है, हाथ लगाते ही उड़ जायेगी। बेनजीर, इसी से उसे बड़े यत्न से रुई की फाँकों में सहेज कर रखती थी, वह उसका कोहनूर हीरा थी, जिसे न जाने कब कोई दबोच ले। रजुला भी उसका आदर करती थी—किन्तु स्नेह ? भयंकर प्रतिहिंसा की ज्वाला की भभक थी उसके हृदय में, बस चलता तो छुरा ही भोंक देती।

बेनजीर की हवेली के बगल में सटी एक और हवेली थी, सेठ दादूमल की। ठीक रजुला के कमरे के सामने ही, छोटे सेठ का कमरा था। बहुत वर्षों तक सेठजी मारवाड़ में रहने के पश्चत् हाल ही में पुत्र का विवाह कर हवेली में लौट आये थे। एक दिन रजुला ने देखा छोटे सेठ के कमरे का नीला पर्दा ऊपर उठा है और एक काली भुजंग-सी औरत, अपनी मोटी कदलीस्तम्भ-सी जंघा पर, एक साँवले युवक का माथा रखकर, उसके कान में तेल डाल रही है। युवती इतनी काली और मोटी थी कि रजुला को जोर-से हँसी आ गयी। हड़बड़ाकर युवक उठ बैठा, हँसी का अशिष्ट स्वर, आवश्यकता से कुछ अधिक ही स्पष्ट हो गया होगा, इसीसे उसने लपक कर खिड़की जोर से बन्द कर दी। सेठ दादूमल का बेटा है यह, रजुला सोचने लगी। सेठजी बेनजीर के खास मिलनेवालों में थे। कोई कहता था कि हवेली भी उन्होंने बेनजीर को भेंट दी थी। उनका पुत्र माँ की मृत्यु हो जाने से ननिहाल ही में पलकर बड़ा हुआ था, इसीसे पहले कभी उसे देखा हो—ऐसी याद रजुला को नहीं थी। 'हाय हाय, यही थी सेठ कक्का की बहू'—वह सोचने लगी और बेचारे छोटे सेठ पर उसे तरस आ

गयी। सुना, वह किसी बहुत बड़े व्यवसायी की इकलौती पुत्री थी और उन्होंने एक करोड़ रुपये का मुलम्मा चढ़ाकर यह अनुपम रत्न, छोटे सेठ को गलग्रह रूप में दान किया था।

रजुला को उस दिन सपने में भी छोटा सेठ ही दिखता रहा। कैसा सजीला जवान था, फिनले की मिही धोती ही बाँधे था, ऊपर का गठीला बदन नंगा था और गले में थी एक सोने की चैन। और कोई ऐसे सोने का लौकेट पहन लेता तो जनखा लगता, पर कैसा फब रहा था! सोलह वर्ष में पहली बार पुरुष के रहस्यमय शरीर की इस अपूर्व गठन ने रजुला को स्तब्ध कर दिया। हाय-हाय, छाती पर कैसे भालू के से बाल थे, जी में आ रहा था वह अपनी चिकनी हथेली से एक बार उस पुष्ट वक्षस्थल को सहला ले। कलाई कैसी चौड़ी थी, जैसे शेर का पंजा हो।

फिर तो रोज ही छोटा सेठ उसे दिखने लगा। जानबूझ कर ही वह खिड़की के पास खड़ी होकर चोटी गुँथती, कभी सन्तरे की रसीली फाँक को चूस-चूस कर अपने रसीले अधरों की लुनाई को और स्पष्ट कर देती। पुरुष को तड़पा-तड़पा कर अपनी ओर खींचने की ही तो उसे शिक्षा दी गयी थी। जैसे काली कसौटी पर सोने की लीक और भी अधिक स्पष्ट होकर दमक उठती है, बदसूरत नयी सेठानी को नित्य देखती, छोटे सेठ की तरुण कलापारखी आँखों की कसौटी में रजुला सोने की लीक-सी ही दमक उठी। वह सन्तरा चूस-चूस कर, नन्हें से ओंठ फुला-फुला एक फाँक छोटे सैठ क़ी ओर बढ़ाकर, दुष्टता से आँखों ही आँखों में पूछती—'खाओगे?' वह दीन याचक-सा दोनों हाथ साधकर, फाँक पकड़ने खड़ा हो जाता तो वह चट से फाँक अपने मुँह में डाल, उसे ठेंगा दिखाकर खिड़की बन्द कर देती। छोटा सेठ खखारता, खाँसता, गुनगुनाता और उसकी हर खखार, खाँसी और गुनगुनाहट में उसके प्रणयी चित्त की व्याकुलता स्पष्ट हो उठती; जैसे कह रहा हो—'खिड़की खोलो, वरना मैं मर जाऊँगा।'

आईने में अपने हर नैन नक्श को सँवार कर धीरे-धीरे खिड़की का

मुँदा पट खोलकर रजुला मुस्कराती और बादलों में छिपी स्वयं चन्द्रिका ही मुस्करा उठतीं। प्रणय का यह निर्दोष आदान-प्रदान छोटी सेठानी और बेनजीर की जासूसी दृष्टियों से बचकर ही चलता। जिस किशोरी के लावण्य को बेनजीर के यूनानी नुस्खे भी पुष्ट नहीं बना सके थे, उसे छोटे सेठ की मुग्ध दृष्टि ने ही जादू की छड़ी-सी फेरकर अनुपम बना दिया। गालों पर ललाई आ गयी, आँखों में रस का सागर हिलोरें लेने लगा, जाने-अनजाने कटाक्ष चलने लगे और रसीले अधर किसी के निर्मम स्पर्श तले कुचलकर अपना अस्तित्व खो बैठने को व्याकुल हो उठे।

एक बार शहर में बहुत बड़ी सर्कस कम्पनी आयी थी। बेनजीर ने अपने दल के लिए भी टिकट खरीदे, पर्दे तानकर फिटन जोत दी गयी। बिना पर्दे के बेनजीर की हवेली का परिन्दा भी हवा में नहीं चहक सकता था! तब चौक की कोठेवालियों की आँखों में भी ऐसी सौम्यता थी, जो अब दुर्भाग्य से उच्च कुल की वनिताओं की दृष्टि में भी नहीं रही है। उनकी वेशभूषा की शालीनता, बड़े-बड़े घर की बहू-बेटियों की शृङ्गार-शालीनता को मात करती थी। मजाल है कि कुर्ते का गला जरा-सा भी नियत सीमा को लाँघ जाय! गर्दन की हड्डियाँ तक परदे में दुबकी रहती। ऐसे ही शालीन लिबास में, बेनजीर ने रजुला को सजा दिया। उसकी छोटी-छोटी असंख्य गढ़वाली चोटियाँ कर, उसकी न्यारी ही छवि रचा दी। वह पहाड़ी हिरनी थी, पहाड़ी दिखने में ही उसका सौन्दर्य सार्थक हो उठेगा। चूड़ीदार के बदले, उसने आज सोलहगजी मग्जीदार ऊँचा लहँगा पहना था, जिसकी काली मग्जी से पायजेब छमकाते उसकी लाल-लाल एड़ियोंवाले सफेद पैर दो पालतू कबूतर-से ही ठुमक रहे थे। कानों में बड़े-बड़े कटावदार झुमके थे और गले में थी पहाड़ी कुंदनिया चम्पाकली। इस शृंगार के पीछे भी बेनजीर की शतरंजी चाल थी। आज वह वली-अहद, ताल्लुकेदार और मनचले रईसजादों की भीड़ के बीच रजुला के रूप की चिनगारी छोड़कर तमाशा देखेगी। कौन होगा वह माई का लाल, जो

मुँहमाँगे दाम देकर इस अनमोल हीरे को खरीद सकेगा !

वह रजुला को लेकर, सर्कस के तम्बू में पहुँची कि साइकिल चलाता भालू, चरखा चलाता शेर और नंगी जाँघों के दर्पण चमकाती सर्कस-सुन्दरियाँ फीकी पड़ गयीं। सबकी आँखें रजुला पर गड़ गयीं।

रजुला ने पहले कभी सर्कस का खेल नहीं देखा था, इसी से खेल शुरू हुआ तो वह जोकर के सस्ते मजाक देखकर, पेट पकड़-पकड़कर हँसती-हँसती दुहरी हो गयी। कभी शेर की दहाड़ सुनकर, भय से काँपती बेनजीर की गद्दीदार ऊँची छाती पर जा गिरती और शेर को मार गिराने को, कितने ही तरुण कुँवरों की भुजाएँ फड़कने लगतीं।

सेठ दादूमल का बेटा भी अपनी भोंड़ी भुजंगिनी को लेकर तमाशा देखने आया था, पर उसकी दृष्टि सर्कस के शेर-भालुओं पर नहीं थी, वह तो रजुला को ही मुग्ध होकर देख रहा था। रजुला ने भी उसे देखा और मुस्कराकर गर्दन फेर ली। छोटा सेठ तड़प गया, कहाँ लाल वहीखातों के बीच उसका शुष्क जीवन और कहाँ यह सौन्दर्य की रसवन्ती धारा ! वह घर लौटा तो रजुला की खिड़की वन्द थी। मन मानकर लौट गया और जब उसकी सेठानी अपनी पृथुल तोंद हिलाती, खर्राटे भरने लगी तो वह फिर ऊपर चला आया। रजुला के कमरे में नीली बत्ती जल रही थी, खिड़की खुली थी, एक-एक कर अपने पटाम्बर उतारती वह गुनगुना रही थी। छोटे सेठ का दिल धौंकनी-सा चलने लगा। कैसी गोल-गोल बाँहें थीं, शंख-सी ग्रीवा पर पड़ी लाल-लाल मूँगे की माला किस बाँके अन्दाज से उठ-उठकर गिर रही थी, उसने ओढ़नी भी उतार दी। छोटा सेठ सौंदर्य सुषमा की इस अनोखी पिटारी को आँखों ही आँखों में पी रहा था। वह थोड़ा और बढ़ा और पर्दा हटाकर निर्लज्ज प्रणय-विभोर याचक की दीनता से खड़ा हो गया। रजुला भी पलटी, उसका चेहरा कानों तक लाल पड़ गया—ऐसी मुग्ध दृष्टि से उसका यह पहला परिचय था। आज ठेंगा दिखाकर वह खिड़की वन्द नहीं कर सकी····

"वड़े वदतमीज हैं जी आप।" कृत्रिम क्रोध से गर्दन टेढ़ीकर उसने कहा, "क्या नाम है आपका ?"

"क्यों, क्या थाने में रपट लिखवानी है ? तो यह भी लिखवा देना कि इसे फाँसी के तख्ते पर झूलना भी मंजूर है, पर यह इस खिड़की को नहीं छोड़ सकता।" आधा धड़ ही उसने खिड़की से इस तरह लापरवाही से नीचे को लटका दिया कि रजुला अपनी हथेली को ओठों पर लगाकर हल्के स्वर में चीख उठी, "हाय हाय, करते क्या हैं ? गिर जाइएगा तो ?"

"आपकी वला से—यहाँ सारी-सारी रात खिड़की से लटक-लटककर काट दी है।" सचमुच ही उसने दुर्दमनीय साहस से उचककर खिड़की की मुंडेर पर आसन जमा लिया और दोनों लम्बी-लम्बी टाँगें वाहर को झुला दीं। रजुला की खिड़की और उसकी खिड़की के वीच कोई दो-एक गज का फासला था, किन्तु वीच में थी भयानक खाई, कोई गिरे तो चुनकर भी हड्डियाँ न मिलें। रजुला की खिड़की पर वाहर को निकली एक चौड़ी-सी सीमेण्ट की पाटी-सी बनी थी। उसने वड़े शौक से ही उसे अपने पालतू कवूतरों के लिए बनवाया था। वह उसी पर झुक गयी। "क्या नाम है जी आपका छोटे सेठ ?" हँसकर रजुला ने अपने पेशे का प्रथम कटाक्ष फेंका।

"लालचन्द, और तुम्हारा ?"

"हाय हाय, जैसे जानते ही नहीं।"

"मैं तुम्हारा एक ही नाम जानता हूँ और वह है रज्जी, तुम्हारी अम्मी तुम्हें पुकारती जो रहती हैं, कभी आओ ना हमारे यहाँ !"

"आपके यहाँ !" रजुला जोर से हँसी, "सेठानी मुझे झाड़ू मारकर भगा देगी, आप ही आइए न !" रात्रि के अस्पष्ट आलोक में उसका यह मीठा आह्वान लालचन्द को पागल कर बैठा, "सच कहती हो ? आ जाऊँ ? लगा दूँ छलाँग ?"

"आये हैं वड़ी छलाँग लगानेवाले, पैर फिसला तो सड़क पर चित्त ही

नजर आयेंगे।" रजुला ने अविश्वास से अपने होंठ फुला-फुलाकर कहा। वह इतना कहकर सँभली भी न थी कि छोटा सेठ सचमुच ही वन्दर की-सी फुर्ती से उसकी वित्ते भर की मुंडेर पर कूदा और लड़खड़ाकर उसी पर गिर पड़ा।

रजुला के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं—'हाय-हाय, अगर यह गिर जाता तो', वह सोच-सोचकर काँप गयी। उसका सफेद चेहरा देखकर लालचन्द ठठाकर हँस पड़ा, "कहो, लगायी न सर्कसी छलांग ?"

"हाय हाय, कितनी जोर से हँस गये आप, अम्मी ने सुन लिया तो मेरी वोटी-वोटी कुत्तों से नुचवा देंगी। इतनी रात को मेरे कमरे में आदमी !" उसकी आँखों में वेवसी के आँसू छलक उठे।

"लो, कहो तो अभी चल दूँ ?" वह साहसी उद्दण्ड युवक फिर छलांग लगाने को हुआ तो लपककर रजुला ने दोनों हाथ पकड़कर रोक लिया। एक दूसरे का स्पर्श पाकर दोनों क्षण भर को अवश पड़ गये। रजुला ने आँखें मूँद लीं। यह उसके जीवन का एकदम ही नया अनुभव था। लालचन्द ने उसे वढ़कर बाँहों में भर लिया, "जानती हो रज्जी, मैं कब से तुम्हारे लिए दीवाना हूँ ? जव तुम गाती थी, मैं इसी खिड़की पर कान लगाये सुनता था, तुम चोटी गूँथती थी और मैं छिप-छिपकर तुम्हें देखता था, तुम अपनी शरवती आँखों में सुरमा डालती थी और मैं...."

"वस कीजिए, उफ", काँप-काँपकर रजुला उसकी बाँहों में खोयी जा रही थी, गलती जा रही थी, जैसे गर्म आँच में धरी मक्खन की बट्टी हो।

"नहीं-नहीं, आज नहीं—यह सब नहीं", वह उसके लौहपाश में नहीं-नहीं कहती सिमटती जा रही थी। एकाएक स्वयं ही लालचन्द ने वन्धन ढीला छोड़ दिया, "अच्छा रज्जी, कोई वात नहीं, पर याद रखना मैं फिर कल आऊँगा।" दोनों हाथों से उसका मुँह थामकर लालचन्द झुका, अधर स्पर्श करने का उसे साहस ही नहीं हुआ। हे भगवान, यह तो उसकी तिजोरी के ऊपर टँगी स्वयं साक्षात् लक्ष्मीजी का-सा चमकता

रूप था। हाथी दाँत-से शुभ्र ललाट को चूमकर वह उचककर खिड़की की मुँडेर पर चढ़ गया।

"हाय हाय, ऐसे मत कूदिए", विकल-सी होकर रजुला पीछे-पीछे चली आयी। बड़ी ममता से, बड़े दुलार से निहारकर, आलचन्द ने एक ही छलांग में दूरी पार कर ली। पलक मारते ही वह अपने कमरे में खड़ा मुस्कुरा रहा था।

● ●

इसी सधी छलांग ने रात, आधी रात, वर्षा, तूफान, ओले सबको जीत लिया। लालचन्द का साहस दिन दुगुना और रात चौगुना बढ़ने लगा। तीन महीने बीत गये, छोटी सेठानी मायके चली गयी थी। अब पूरी आजादी थी। दोनों अभी प्रेम से चहकते उन कबूतरों के जोड़े-से थे जिन्हें बन्धन का कोई भय नहीं था, भूत और भविष्य के काले बादलों से उनके निर्द्वन्द्व जीवन का आकाश अभी तनिक भी नहीं घिरा था। खिड़की के पास दोनों बाँहें फैलाये रजुला खिलखिलाकर कभी सहसा पीछे हट जाती और भरभराकर लालचन्द पलंग पर ही औंधा गिर पड़ता। कभी सूने कमरे में उसे न पाकर वह व्याकुल होकर इधर-उधर देखता और वह पलंग के नीचे से पालतू बिल्ली की तरह, मखमली पंजे टेकती मुस्कराती निकल आती।

"कभी तेरी अम्मी पकड़ ले तो?" वह अपनी गोदी में लेटी रजुला के सलोने चेहरे से अपना चेहरा सटाकर पूछता।

"तो क्या, कह दूँगी, यह चोर उचक्का मुझे छुरा दिखाकर कह रहा था—खबरदार जो शोर मचाया, बता तेरी अम्मी चाभी कहाँ रखती हैं।"

"हाँ, यही तो कहेगी तू, आखिर हैं तो....." कहकर वह दुष्टता से मुस्करा उठता। पेशे का अस्पष्ट उल्लेख भी उसे कुम्हला देता। वह उदास हो जाती और लाख मानमनव्वलों में पूरी रात ही बीत जाती।

कभी मुल्ला की अजान से ही दोनों अचकचाकर जगते और क्षण भर में छलांग लगाकर वह लौट जाता।

"कल तेरी अम्मी भी तो मलीहाबाद जा रही है, मैं सात ही बजे आ जाऊँगा रज्जी", उसने कहा।

पर वह कल कभी नहीं आयी, लालचन्द के रसीले चुम्बनों के स्पर्श से धुले, रजुला के अधर अभी सूखे भी नहीं थे कि तीन महीने में पहली बार बाँका लालचन्द अपनी सर्कसी छलांग न जाने कैसे भूल गया। उसकी सधी छलांग खिड़की तक पहुँचकर ही फिसल गयी। धमाके के साथ, वह चौमंजिले से एकदम पथरीली सड़क पर पड़ा और एक हृदयभेदी चीत्कार से गलियाँ गूंज गयीं। पागलों की तरह रजुला शायद स्वयं भी खिड़की से कूद जाती पर न जाने कब बन्द द्वार भड़भड़ाकर, चिटकनी सटका स्वयं अम्मी उसे पकड़कर खड़ी हो गयी।

"पागल लड़की, मैं जानती थी कि तेरे पास कोई आता है, तेरे वदन से मर्द के पसीने की वू को मैंने सूंघ लिया था। ठीक हुआ अल्लाह ने वेहया को सजा दी, आज ही मैं छिपकर उसे पकड़ने को थी, पर अल्लाताला ने खुद ही चोर पकड़ लिया।"

तिलमिलाकर, क्रुद्ध सिंहनी-सी रजुला, वेनजीर पर टूट पड़ी। पर वेनजीर ने एक ही चाँटे से उसे जमीन पर गिरा दिया। सेठ की हवेली से आते विलाप के स्वर, उसके कलेजे पर छुरियाँ चलाने लगे—कानों में अँगुली डाले वह तड़पती रही। द्वार पर ताला डालकर उसे रोटी-पानी दे दिया जाता। पाँचवें दिन वह बड़े साहस से खिड़की के पास खड़ी हो गयी, उसके बुझे दिल की ही भाँति सेठ के कमरे में भी काला अँधेरा था। नित्य की भाँति घुटनों तक धोती समेटे, छलांग लगाने को तत्पर, हँसी के मोती विखेरता उसका छैला, छोटा सेठ अब कहीं नहीं था। इसी मुँडेर पर उसके युगल चरणों की छाप, अभी भी धूल पर उभरी पड़ी थी। आँसुओं से अन्धी आँखों ने उसी अस्पष्ट छाप को ढूंढ़ निकाला

और वह उसे चूम-चूमकर पागल हो गयी। 'छोटे सेठ', वह पागलों की भाँति बड़बड़ाती, चक्कर काँटती द्वार पर पहुँची। रोटी रखकर, पठान दरवान शायद अफीम की पिन्नक में ताला-साँकल भूल गया था। रजुला ने द्वार खोला और दबे पैरों सीढ़ियाँ लाँघकर, बदहवास भागने लगी। सुबह बेनजीर ने खुला द्वार देखा तो धक रह गयी। रजुला भाग गयी थी, बाल नोचती, बौखलाती, बेनजीर अपनी नगाड़े-सी छातियों पर दुहत्तड़ चलाती चीख-चीखकर रोती रही पर रजुला नहीं लौटी। बेनजीर का कोहनूर हीरा खो गया।

● ●

जिस कुमाऊँ की वनस्थली ने उसे एक दिन नियति के आदेश से दूर पटक दिया था, वही उसे बड़ी ममता से फिर पुकार उठी। रजुला ने वही पुकार सुन ली थी। ओठों पर पपोटे जम गये थे, एड़िया छिल गयी थीं, बालों में धूल की तहें जम-जमकर जटाओं-सी लगने लगी थीं। बत्तीस मौसियों का प्रासाद एकदम ही उजड़ गया था, बाहर एक बूढ़ा-सा चौकीदार ऊँघ रहा था। "सुनो जी, यहाँ जो नैक्याणियाँ रहती थीं वह क्या कहीं चली गयीं ?" डर डर कर उसने पूछा।

चौंककर बूढ़ा नींद से जग गया, "न जाने कहाँ से आ जाती हैं सालियाँ। एकादशी की सुबह-सुबह उन्हीं हरामजादियों का पता पूछना था, सती सीता, लक्ष्मी, पार्वती थीं बड़ी ! मर गयीं सब ! और पूछना है कुछ ?" सहमकर रजुला पीछे हट गयीं, बूढ़े के ललाट पर बने वैष्णवी त्रिपुण्ड को देखकर उसे अपनी अपवित्रता और अल्पज्ञता का भास हुआ, "माफ करना महाराज, मुझे बस यही पूछना था—जब मर ही गयीं तो और क्या पूछूँ !" वह मुड़ गयी।

"देख छोकरी, सुबह-सुबह झूठ नहीं बोलूँगा। सब तो नहीं मरी, तीन बच गयीं थीं, एक तो देवुली, पिरमा और धनिया। तीनों गागर में नैपाली बाबा के आश्रम में हैं। बड़ा बाबा बनता है साला, जनम पातरों की

सोहवत में गुजारा—बुढ़ापे में फिर हरामियों को बटोर लिया। तीन तो हैं चौथी आज पहुँच जायेगी।" घृणा से उसकी ओर थूक कर बूढ़ा पीठ फेरकर माला जपने लगा।

कँटीली पगडण्डियाँ पार कर वह पहुँच ही गयी। वह जानती थी नेपाली बावा ही उसके नाना हैं, क्या उसे स्वीकार नहीं करेंगे। उनके चरणों में पड़ी ईश्वर-भजन में ही वह भी जीवन काट लेगी। धूनी के धुएँ को चीर कर वह गुफा में जा पहुँची। उसके चेहरे को देखकर ही उसे सबने पहचान लिया। मोतिया का ठप्पा ही तो था, उसके चेहरे पर। बूढ़ी देवा ने उसे टटोल-टटोल कर ही देखा, उसकी आँखें जाती रहीं थीं; प्रेमा के सौन्दर्य को समय भी नहीं छीन सका था और वना मौसी को अभी भी रजुला के वचपन की एक-एक घटना याद थी। वावा गोरखपन्थी थे, इसी से सबको कनफड़ा वालियाँ पहनाकर दीक्षा दे दी थी। जिन कानों में वेनजीर के पन्ना, पुखराज और नीलम झूलते थे, उन्हीं में, सींग के बड़े-बड़े कनफड़ा वाले लटकाकर, रजुला ने भी एक दिन जिदकर दीक्षा ले ली। कभी वह धूनी रचाती, कभी प्रसादी वनाती और कभी देवा आमा की वात से लुंजपुंज देह पर, डोलू की जड़ी गरम कर सेंक करती। कभी-कभी नेपाल, गढ़वाल और तिब्बत से आये गोरखपन्थी साधुओं के अखाड़े आ जुटते, दल से गुफा भर जाती और भण्डारे की धूम के वाद झाँझ, खड़ताल और मँजीरे के साथ स्वर-लय-विहीन गाने चलते। वड़े अनुनय से नेपाली वावा एक दिन वोले, "तू गा ना मेरी लली, एक-आध सुना दे ना, तूने तो लखनऊ के उस्तादों से गाना सीखा है।"

निष्प्रभ आँखों में बिसरी स्मृतियों का सागर उमड़ उठा। कभी किसी ने उसके कितने गाने छिप-छिप कर सुने थे। फिर कितने गाने उसने सुना-सुनाकर रात ही बिता दी थी, पर उस मनहूस रात को जब उसने—'चले जइयो वेदरदा मैं रोय मरी जाऊँ', सुनने की फरमाइश की थी तो उस करमजली ने कहा था—'उँह, आज नहीं कल सुनिएगा, मैं कहीं भागी

थोड़े ही जा रही हूँ।' भाग तो वे ही गये थे। अव वह किसके लिए गायेगी ?

"क्यों वेटी, नहीं सुनायेगी ?" नेपाली वावा का आग्रह कण्ठ में छलक उठा।

पर स्वर-लय नटिनी तो वहाँ होकर भी नहीं थी। वह तो धूनी को एकटक देखती, न जाने किस अतीत के चिन्तन में डूवी थी। वावा का आदेश सुन कर चौंकी, "मुझे गाना नहीं आता वावा", कह कर उसने उठ कर धूनी में लकड़ियाँ लगायीं और आग फूँकने का उपक्रम करने लगी। "अरे राम-राम, वड़ा धुआँ है", बड़ी ममता से वावा ने कहा, "तेरी आँखों से तो पानी वहने लगा। अरी पिरमा, तू मार दे तो फूँक, इस वेचारी की तो आँखें ही लाल हो गयीं।" उदास हँसी हँसकर पिरमा उठी और आग फूँकने आयी, पर वह तो रजुला की आँखों के पानी का इतिहास जानती थी, वह क्या लकड़ी के धुएँ का पानी था ?

भोले वावा से वह कैसे कहे कि इस धूनी को फूँकफाँक कर तो वह धुआँ मिटा देगी, पर जो उस छोकरी के हृदय में निरन्तर एक धूनी धधक रही है, उसका धुआँ भी क्या वह फूँक मार कर हटा सकेगी ?

अनाथ

सोचती हूँ, क्या इसे अपनी मौलिक कहानी कह सकती हूँ ? पूरा कथानक ही तो विधाता का है; किन्तु कहने में क्या दोप है ! अब तो कहानी के नायक ने कालचक्र की यवनिका के अन्तराल में अपने जीवन के रंगमंच पर किसी कुशल अभिनेता की कार्यपटुता से दूसरा ही अभिनय आरम्भ कर दिया है और नायिका एक रहस्यमयी कन्दरा में सदा के लिए खो गयी है। फिर भी कैसा विचित्र संयोग है कि मैं एक ही माह की छोटी-सी अवधि में तीनों पात्रों से एक-एक कर फिर टकराती चली गयी हूँ !

"एई जे, कैमोन आछेन बऊदी ?"

मैं पूछनेवाले के कुछ परिचित और अपरिचित-से लगते चेहरे की ओर देखती रह गयी ।

"क्षमा कीजिएगा, मैंने पहचाना नहीं ।" मैंने एक बार फिर अपने स्मृति-द्वार की जंग लगी कुंडी खटखटायी ।

"ही-हो-हो !—"—कहता वह लम्बा-चौड़ा सुपुरुष एक प्रकार से मेरा मार्ग अवरुद्ध कर खड़ा हो गया ।

अचानक उस हँसी के कोमल स्वरों को मैंने पहचान लिया—"अरे बनर्जी, तुम ! कितना बदल गये हो तुम ! सुना, विदेश भी घूम आये हो । वहीं से यह अनुपम स्वास्थ्य की पोटली बाँध लाये क्या ?"

"ताई होवे एखौन चलून देखी ।" वह मुझे हाथ पकड़कर ले चला ।

"अरे भई, कहाँ चलना होगा ?"—मैंने हँसकर पूछा ।

"पहले चलिये, कार खड़ी है। आज हमारा गिन्नी से मिलना होगा, खोका से, पुतुल से। फिर बात होगा।"

गिन्नी सुनकर मैं चौंक पड़ी। तो क्या इस प्रिय नाम का सर्वाधिकार अब सुरक्षित नहीं रहा? रहेगा कैसे! मैं सुन तो चुकी थी, बनर्जी विलायत घूम आया है, दिल्ली में बहुत बड़ी कोठी बनवा ली है, किसी जमींदार की पुत्री से विवाह किया है, अब रूस जा रहा है। तमाल तरु-सी श्यामल कान्ति का वह बंगाली तरुण कभी मेरे पति का परम मित्र था। मुक्तेश्वर के ऊँचे पहाड़ की ढलान पर लाल छत के दो एक-से बँगले थे, उन्हीं आस-पास सटे बँगलों में से एक में हम रहते थे और एक में रहता था कुँआरा बनर्जी। उस आनन्दी स्वभाव के सरल युवक को मेरी सास भी बहुत चाहती थीं और उसके विचित्र विवाह की साँझ को उन्होंने बन्ने और घोड़ियाँ गा-गाकर धन्य किया था। पूरा मुक्तेश्वर बनर्जी के विवाह का विरोध कर उठा था—कुमाऊँ की कन्या को किस दुःसाहस से वह ब्याह ले जायेगा, वे देख लेंगे! किन्तु संयुक्ता की भाँति तेज घोड़े की पीठ पर बैठाकर ऐनी को बनर्जी नैनीताल भगा ले गया तो लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। फिर ऐनी क्या कुमाऊँ की थी? उसकी माँ थी नेपाल की, पिता थे आइरिश मेजर। ऐनी की माँ के घोर कृष्ण वर्ण पर ही रीझकर उसने विवाह किया था। ऐनी दो वर्ष की थी तो मेजर की मृत्यु हो गयी। सेब का छोटा-मोटा बगीचा और एक बँगला पत्नी के नाम पर मेजर छोड़ गया किन्तु ऐनी की माँ उसका उपभोग नहीं कर पायी। धीरे-धीरे उसके आत्मीय स्वजन उससे मिलने आने लगे। लाख छिपाने पर भी उसके महारोग का रहस्य खुल गया। ऐनी की माँ के पूरे खानदान को वही रोग था। उसका बँगला छीनकर ग्रामवासियों ने उसे पुत्री-सहित खदेड़ दिया। वह कहाँ गयी, कब लड़की इतनी सुन्दरी बन गयी, सब लोग भूल गये। उसके यौवन और सौन्दर्य के सम्मुख क्रूर समाज ने भी घुटने टेक लिये। सुन्दरी ऐनी फिर मेजर के बँगले में रहने लगी। कभी सुनहरे बालों पर

रेशमी रूमाल बाँधकर 'हेय होय हो हो' कहती, कनस्तर बजाती सेब के पेड़ों पर बैठे तोते भगाती, कभी अपने मृत पिता के विलायती सूटों के अम्बार को धूप दिखाती और कभी भागकर हमारे बँगले में आ जाती। लड़की वास्तव में पूरी अंग्रेज लगती थी। कहीं भी उसकी चाल-ढाल में शील-सौजन्य की मुहर नहीं थी। चलती तो लगता, पानी में फिसलती चिकनी मछली तैर रही है। हँसती तो दीवारें ढहा देती। ईसाई बिरादरी ने उसको गिरजे में जाने की अनुमति नहीं दी तो उसने मुक्तेश्वर महादेव के मन्दिर पर धरना दे दिया। वहाँ के पुजारी ने खदेड़ा तो शूद्रों की पजा का प्रसाद लेने पहुँची। वहाँ भी चाण्डालिका का प्रवेश निषिद्ध था। लोग फुसफुसाने लगे—"हिरुली कोढ़िन की बेटी है। बाप फिरंगी था, इसी से गाल देखो जैसे रामगढ़ के सुर्ख सेब हैं।" पर ऐनी अकेली ही समाज से मोर्चा लिये खड़ी रही। एक-आध दुःसाहसी मनचलों ने आधी रात को उसका द्वार खटखटाया तो वह रणचण्डी-सी उनके बीच कुल्हाड़ी लेकर कूद पड़ी। उसकी इसी बहुमुखी प्रतिभा पर बनर्जी मर मिटा था। लड़की सुन्दरी, साहसी और खरा सोना थी। पढ़ी-लिखी नहीं थी तो न सही, माँ कुष्ठरोगी थी तो क्या हुआ, वह उसी से विवाह करेगा। मेरे पति ने उसे समझाया भी था : "ऐसा न हो कि बाद में पछताना पड़े। सोच लो, बनर्जी"—उन्होंने कहा था।

"सोचेगा आबार क्या !" बनर्जी की भावुक आँखें चमक उठी थीं—"हमि सब सोच लिया। ऐनी हमारा गिन्नी बनेगा। कितना लम्बा, कितना सुन्दर, की मानाबे ! इसी पूर्णिमा को तुम उसको सजायेगा, बऊदी, बूझले !"

उसने मेरी ओर समर्थन के लिए दृष्टि फेरी थी। मैंने ही ऐनी को सजाया था। शरणार्थी कपड़े की दुकान के सरदारजी से ली गयी लाल आलपाके की फूहड़ साड़ी में भी वह अप्सरा लग रही थी। नीली आँखों को काजल से आयत कर काला करने की हमारी चेष्टा व्यर्थ गयी थी।

माथे का आँचल हवा से फर्फराकर उड़ गया था। मेरे पति ने कैमरा साधा तो साँवले पति की तरुण छाया में खड़ी लम्बी ऐनी के हवा में उड़ते वाल देखकर मुझे सचमुच टेनीसन की कविता का स्मरण हो आया था। दोनों का वह अलभ्य चित्र अभी तक मेरे पास है। उन दोनों की मौज-मस्ती भरा हनीमून मुक्तेश्वर की छोटी-सी घाटी की संकीर्ण बस्ती को दग्ध कर उठा। कभी जंगल में भटक गये भोले बच्चों की भाँति दोनों हाथ में हाथ डाले दिन डूबे लौटते। ऐनी के बालों में चिपकी होती सूखी पिरुल की सुनहरी पत्तियाँ। उसके कन्धे पर होता पति का कोट। और बनर्जी के माथे पर बँधा होता ऐनी का स्कार्फ। कभी वह हमराह चलते पथिकों के सामने ही नयी पत्नी को चूम लेता तो वह लाल पड़ जाती। कभी उसे खींचता पहाड़ी झरने के नीचे खड़ी कर स्वयं तालियाँ बजाता भाग जाता।

किन्तु सहसा चारों ओर भयानक भूधरों से घिरी मुक्तेश्वर की घाटी के काले विषधर ने करवट ली। लीलाधर पण्डित अपनी विप्रबुझी जिह्वा के लिए प्रसिद्ध था। ऐनी को पाने में उसके प्रौढ़ चित्त ने बुरी तरह मात खायी थी, उसी ने बनर्जी के पिता को पत्र लिख दिया। परशुराम-सा क्रोधी बूढ़ा बनर्जी को चील की भाँति बंगाल भगा ले गया। हम आये तो बगल की बँगलिया खाली थी। कुछ ही दिनों में बनर्जी का त्यागपत्र आ गया। सुना, उसके पिता ने उसे विदेश भेज दिया था। अभागी ऐनी अचानक एक दिन शाम को मेरे द्वार पर खड़ी थी। बनर्जी से उसे कोई शिकायत नहीं थी; किंतु उसकी संतान की वह माँ बनेगी तो कौन उसे देखेगा! मैं पसीज गयी। पर मेरी सास ने कहा था—"ना बावा, ना! गस्सा दे दे पर वस्सा मत देना। कुछ धेला-पैसा थमा दे, पर खबरदार, यह इल्लंत मत पालना!"

मैंने कहा और वह सिर झुकाकर चली गयी थी। आज बनर्जी को देखकर मैं अवाक् रह गयी। विशाल बँगले की बारादरी में कार रोककर वह उतर गया। लॉन में कुरसी डाले बैठी, मोटे-मोटे लेन्स का चश्मा

लगाये अध्यापिका-सी लगती एक लम्बी-चौड़ी युवती अभ्यर्थना के लिए बढ़ आयी। पिता की कार का शब्द सुनकर साँवली-सी दुवली-पतली लड़की सकुचाकर मेरे पास खड़ी हो गयी और कीमती वावा-गाड़ी में एक हृष्ट-पुष्ट वच्चे को घुमाती, स्वच्छ साड़ी पहने आया हाथ जोड़कर वड़े अदव से खड़ी हो गयी। शरवत लाओ, ये लाओ, वो लाओ कर वनर्जी ने दिशाएँ गुँजा दीं और उनके विलासी आतिथ्य ने मेरा गला-सा घोंट दिया। अपनी बड़ी-बड़ी गाय की-सी निरीह आँखों से वनर्जी की गिन्नी मुझे विचित्र संदेह की दृष्टि से देख रही थी। मुक्तेश्वर में हमारा परिचय हुआ था। कहीं मैं ही तो उसके पति की प्रथम प्रेयसी नहीं थी! वनर्जी का फ्लैट वास्तव में भव्य था। एक-एक हाथ की दूरी पर मन्त्रियों से हाथ मिलाते-मुसकराते वनर्जी-दम्पति के अभिनव चित्र सजे थे। कमरे की सजावट में रुचि का प्रदर्शन उतना नहीं था जितना वैभव का। मैं मन ही मन वनर्जी गिन्नी के विजली की किरण छोड़ते कर्णफूलों का दाम आँक रही थी—कम से कम पाँच हजार के तो होंगे ही। हीरों से दमकती उस विचित्र युवती की मोना-लीसा की-सी रहस्यमयी मुसकान से मुझे सहसा असह्य सिरदर्द होने लगा—"अव चलूँ, बनर्जी, फिर उन्हें लेकर आऊँगी।"

मैं विदा लेकर भारी मन से लौट आयी। ठीक पन्द्रह दिन वाद नैनीताल लौटी। फरवरी का अन्त और मार्च का आरम्भ नैनी का सवसे सुखद संगम है। कहीं-कहीं वरफ गलाकर पेड़ नहा-धोकर वदन झाड़ रहे थे। कहीं वर्फ के मोटे ऐवेलैंश सर्र-सर्र कर फिसलते आ रहे थे। मुझे अपने एक आत्मीय के लिए सर्पगन्धा के पौधे ढूँढकर भेजने थे, अकेले ही घूमती-घामती चीना पीक की ओर चल दी। वहुत-से पौधों के वलखाते फनों को हाथ में भरकर लौट रही थी। निर्जन बीहड़ मार्ग मुझे किसी स्नेही आत्मीय की भाँति गलवहियाँ देकर खींचता लिये जा रहा था।

"सलाम, मेम साहव!"

मुझे सहसा साँप-सा सूँघ गया। ऐनी ही तो थी!

"अरे, तुम यहाँ इस जंगल में ?" मेरे क्रेपसोल के जूतों के भीतर भी ठण्ड से अँगुलियाँ ऐंठी जा रही थीं। वह सुनहरे बालों पर फटा स्कार्फ बाँधे नंगे पाँव एक पत्थर पर खड़ी—वैसी ही लम्बी, गोरी, कनकछड़ी-सी ऐनी।

"तुम क्या यहीं कहीं रहती हो ?" मैंने बढ़कर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये, पर वह अचकचाकर दो कदम पीछे सरक गयी।

"हाँ, उस गुफ़ा में हमारा पूरा बिरादरी है।"

गुफ़ा की बिरादरी मेरा कण्ठस्वर सुनकर बाहर निकल आयी और सकुचाकर ऐनी अपने नाखून दाँतों से कुतरने लगी। भयभीत होने पर वह सदा ऐसा ही करती थी। बिरादरी के शिव की बारात के-से रंग-बिरंगे गण एक-एक कर निकलते आ रहे थे। मेरा अंग-अंग घृणा से सिहर उठा। किसी की नाक नहीं थी, किसी का सूजा निचला ओठ डबल रोटी के कटे टुकड़े की भाँति नीचे लटक रहा था।

"तो क्या तुम्हें भी यह बीमारी....?"—कहकर मैंने अपना प्रश्न कण्ठ ही में खींच लिया। छिः छिः क्या हो गया था मुझे ! कोई बात थी पूछने की भला !

"नहीं, मेमसाब !" अपने कथन की पुष्टि के लिए ऐनी ने अपनी लम्बी-लम्बी अँगुलियाँ मेरे सामने फैला दीं—"हम सोचा, जब बाहर का बिरादरी हमारा छूत मानता तो हम यहीं रहेगा।"

उसने अपनी विषाद से भींगी नीली आँखें मेरी ओर उठायीं तो मैं उससे अपकी दृष्टि न मिला सकी—मैं भी तो उसी हृदयहीन समाज की एक सदस्या थी !

"यहाँ सब हमारा अपना लोग, वह हमारा नाना है, मौसी है। माँ का हालत बोत खराब है, मेमसाब ! हाथ-पैर कुछ नहीं, लकड़ी का गाड़ी में हम घुमाता"—उसने सर झुकाकर कहा।

"और ऐनी, तुम्हारा बच्चा ?"—डरते-डरते मैंने पूछा। क्या पता, अभागिनी के दुर्भाग्य से वह भी न रहा हो !

"हमारा लड़का हुआ था। मिशन माँगा, विरादरी माँगा, पर हम नहीं दिया। उसका वाप हिन्दू था, इसी सें हम हिन्दू अनाथालय को दे दिया।"

पुत्र की स्मृति के गह्वर से उसका कण्ठ क्षणभर को अवरुद्ध हो गया।

"तो क्या तुम्हें यह भी पता नहीं, वह कहाँ है?" सहसा उसकी अल्प बुद्धि पर मुझे क्रोध आया।

"क्या करेगा पता करके! उसके लिए भी ठीक, हमारा लिए भी। लोग जानेगा तो कहेगा, इसका नाना कोढ़ी, नानी कोढ़ी!" उसका गला फिर भर आया पर वह रोनेवाली लड़की नहीं थी। अपना विनोदी स्वभाव वह अभी तक वचा सकी थी, इसी से शायद अब तक जी रही थी। "बनर्जी से कभी मिला, मेमसाव? वह तो तुम्हारे सवका वहुत फ्रेण्ड था।"

जिस विषय को मैं न छेड़ने का प्रयत्न कर रही थी, उसे उसने स्वयं ही छेड़ दिया। मैं हिचकिचायी। सत्यकथा प्रस्तुत करनी होगी या मिथ्या का पुट देकर इस घायल के घाव को चूमना होगा!

"हाँ, मैं मिली थी, ऐनी, बहुत दुबला हो गया है बेचारा!" मैंने वड़े प्रयत्न से दुःखभरी साँस खींची और आँखों ही आँखों में बनर्जी का पुष्ट चेहरा तैरने लगा।

"उसने फिर शादी बनाया, मेमसाव?" ऐनी अपना पीला रुग्ण-सा चेहरा मेरे पास ले आयी। मैंने चारों ओर देखा। बियावान जंगल के बीचोंबीच बनी पहाड़ी चट्टान की प्राकृतिक ठोस गुफ़ा, जिसके द्वार पर एक विशाल पत्थर लगाकर गुफ़ावासी अपने अनोखे आलम में डूव जायेंगे, एक बड़ा पत्थर तराशकर प्रकाश और हवा के लिए एक खुदरी खिड़की बनी थी, उसी से फक्-फक् कर साल की जलती डालियों का कड़ुआ धुआँ मेरी नाक में घुस गया।

"ऐनी, जल्दी करो, बाबा बुलाता!"—एक पतली-पतली टाँगोंवाला लड़का उसे पुकारने लगा।

"ओ आता !" अधैर्य और झुंझलाहक की रेखाओं से ऐनी का लम्बोतरा चेहरा लटक गया।

"जल्दी करो !"—लड़का फिर चीखा।

"ओ गॉड, हम आता, अब्बी !"

ऐनी फिर मेरे निकट खिसक आयी। सहसा उसका नाना हाथ में एक मशाल लेकर आ गया। उसकी दोनों आँखें शायद रोग के आधिक्य से लाल अँगारे-सी दहक रही थीं। हरे कुरते का चीथड़ा आधा तन ढँके था, एक फटा भाग हवा में फड़फड़ाकर गार्ड की हरी झण्डी-सा लग रहा था। मुझे लगा, किसी वियावान जंगल के वीच किसी छोटे से स्टेशन पर मेरी ट्रेन रुक गयी है और अनजान यात्रियों के वीच मैं एकदम अकेली हूँ। न जाने कैसा भय हुआ।

"जा छोरी, भीतर !" चिड़चिड़ा वूढ़ा नेपाली भाषा में वुद-वुदाकर कुछ कहने लगा।

"जान्छू····जान्छू वावा !"—कहती ऐनी मेरे कानों के पास फुस-फुसायी—"वनर्जी शादी वनाया, मेमसाव ?"

"नहीं ऐनी, अव वह कभी शादी नहीं वनायेगा।"

"हम जानता था, मेमसाव, हम जानता था !" प्रसन्नता से उसने मेरे हाथों को झकझोर कर चुम्वनों से भर दिया। चुम्वन यदि चौखट में मढ़ाने योग्य वस्तु होती तो मैं उन पवित्र चुम्वनों को अपने पूजागृह में सहेजकर नित्य पूजती। जिस दुर्वलहृदय, निर्वीर्य पुरुष ने उसे निर्ममता से फेंक दिया था, उसपर उसका विश्वास कितना अगाध था····कितना महान् ! ऐसे मधुर, पवित्र क्षणों को विदा के शब्दों से मलिन किस दुःसाहस से करती ?

आगे-आगे मशाल दिखाकर पथ-प्रदर्शन कर उसका वावा चल पड़ा तो सर झुकाये चुपचाप मैं भी चल दी। एक वार मुड़कर देखा था, ऐनी उसी पत्थर पर खड़ी, सर का स्कार्फ खोल, उसे हिला-हिला मुझे विदा

दे रही थी। हवा में उड़ते सुनहले बालों का घेरा उसके शान्त चेहरे को एक पवित्र आभा प्रदान कर रहा था। थोड़ी देर में वह अपनी बिरादरी में जाकर खो जायेगी। आज रात उसे उसके अभिशप्त जीवन के सबसे रंगीन सपने दिखेंगे, यही मुझे सन्तोष था। उसका बनर्जी शादी नहीं बनाया और कभी बनायेगा भी नहीं! पुरुष के हृदय पर नारी निरंकुश सम्राज्ञी बनकर ही राज करना चाहती है। ऐनी का साम्राज्य मैंने उसे सदा के लिए सौंप दिया था। किन्तु कैसा विचित्र साम्राज्य! न पहनने को ताज, न बैठने को सिंहासन!

कहानी का अन्त वास्तव में यहीं हो जाता, यदि लेखिका मैं होती तब न! किन्तु पाठकों की आँखों में सस्ते आँसू अत्याधुनिक लेखकों की भाँति विधाता भी नहीं चाहता। कथानक की नवीनता में उस महान् शिल्पी ने हम सबको हरा दिया।

मैं आँगन में बैठी ऊन का गोला बना रही थी कि बेसुरे बैण्ड का स्वर सुनकर झल्ला उठी।

"माताजी, अनाथाश्रम....!"

हद है! जब देखो तब निगोड़े चन्दा उगाहने चले आ रहे हैं! अच्छा धन्धा है, ज़रा-जरा से बच्चों से भीख मँगवाना!

खूब कसकर डपटने का इरादा कर बाहर गयी।

दस-बारह साल के लम्बे, गोरे लड़के ने चन्दे की मुड़ी-तुड़ी मैली नोट-बुक मेरी ओर बढ़ा दी। नीली आँखों में करुणाभरी याचना थी। सूखे चेहरे को हँसी से सँवारकर वह फिर बोला—"माताजी, चन्दा!"

मैं डाँट नहीं सकी। उसके हाथ की खँजड़ी के घुँघरू बीच-बीच में हवा से शायद स्वयं खनक उठे।

वह आश्चर्य से मुझे देख रहा था। मैं जैसे गूँगी हो गयी। सब्जी मँगाने के लिए पाँच का नोट थामे थी, वही चुपचाप उसकी ओर बढ़ाकर मैं फिर उसे देखने लगी—ओह वही था! निश्चय वह वही था!

नोट पाकर वह अविश्वास से मुझे देखने लगा—पाँच का नोट तो क्या, एक का नोट भी उसे शायद आज तक कभी चन्दे में नहीं मिला था। दस गालियों के साथ मिलती थी कभी एक दुअन्नी या चवन्नी। आँखें तिरछी कर वह ठीक अपनी माँ की भाँति मुस्कराया।

कितने सारे प्रश्नों की तरंगें मेरे कण्ठ के प्राचीर से टकरा-टकरा कर टूट गयीं।

मेरे कुछ पूछने के पहले ही वह तीर-सा छटककर अपने दल में नोट दिखाने भाग गया। शायद उसे डर था, मैं कहीं रेजगारी वापस न माँग लूँ!

"तुम किस अनाथालय के हो, बच्चे?"—मैंने चीखकर पूछा। पर प्रश्न के साथ ही साथ लोहे की छड़ों-भरी तीन-चार मिलिटरी ट्रकें निकलीं, फिर घण्टे टनटनाती फ़ायर ब्रिगेड की पूरी बारात और अन्त में 'रामनाम सत्य' के गाम्भीर्य की गर्जना के साथ-साथ एक सजी अरथी का लम्बा जुलूस। इन सबके गुजरने के बाद सड़क साफ हुई तो अनाथालय का वह दल खो गया था। उसके बाद कई अनाथाश्रमवाले आ-आकर चन्दा ले गये हैं, पर जिस गोरे, लम्बे, तिरछी आँखोंवाले कमनीय किशोर चेहरे को मैं ढूँढती हूँ, वह नहीं दिखता।

एक अनाथालय के दल के एक चतुर-से लड़के से पूछा तो वह बोला—"अनाथालय क्या एक-दो हैं, माँजी? अनाथ भी कई तरह के होते हैं—सरकारी, बेसरकारी, पिराइवेट।" वह सन्दर्भ-सहित उनकी व्याख्या करके अपना ज्ञान बघारने लगा।

वह अनाथ न सरकारी की श्रेणी में आता था, न बेसरकारी की।

"उसके माँ-बाप, दोनों जिन्दा हैं, भाई!"—मेरे मुँह से झल्लाहट के साथ निकल पड़ा।

"तब फिर वह अनाथ कहाँ है?" मेरे अज्ञान पर वह हँसकर, चन्दा बटोरकर चला गया।

पर मैं उसे कैसे समझाती कि माँ-बाप के जीवित रहने पर भी उस अभागे से बड़ा अनाथ इस विराट् विश्व में और कोई नहीं है!

गूँगा

सर्जन पंड्या को दूर से देखने पर लगता, कोई अँग्रेज चला आ रहा है। सुर्ख गालों पर सुख, सन्तोष और स्वास्थ्य की चमक थी। उनके हाथ में कुछ ऐसा यश था कि उनकी प्रतिभा का स्पर्श पाते ही, मुरझाये मरीज भी चंगे होकर बैठ जाते। उनकी फीस भी उनके व्यक्तित्व की ही भाँति रोबीली थी, ऐसा-वैसा व्यक्ति तो उनकी फीस सुनकर ही पीला पड़ जाता, पर रोगी के पीले चेहरे से भी, उनकी आँखों में करुणा नहीं उभरती। कभी-कभी वे अपनी विकट फीस में थोड़ा-सा अन्तर भी कर देते थे। वशर्ते, मरीजा सुन्दरी हो या मरीज किसी मौलिक बीमारी का नमूना हो। पर असंख्य रोगियों को जीवन-दान देनेवाला यह अनोखा मसीहा अपनी ही पत्नी का इलाज नहीं कर सका था। एक ही पुत्री को जन्म देकर उनकी पत्नी सौर में ही पगला गयी थी और सर्जन उसे ठीक नहीं कर पाये थे, सोलह वर्ष से वह आगरा के पागलखाने में पड़ी थी। वीच-वीच में सर्जन उसे देखने भी जाते थे और कुछ लोग तो कहते थे कि वह उतनी पागल नहीं थी कि उसे घर न लाया जा सके, पर सर्जन कभी लौटकर पत्नी के उन्माद का प्रसंग भी पुत्री के सामने नहीं छेड़ते और न पुत्री ही कुछ पूछती। सर्जन की कन्या का नाम था कृष्णा। रंग था गेहुँआ, पर मुखश्री अनुपम थी, सघन कृष्ण वेणी को वह ढीली-ढाली गूँथ कर पीठ पर डाल देती। माँ के अभाव को पिता के स्नेह ने कभी खटकने नहीं दिया था। देखरेख की लगाम तो नहीं थी, पर पिता का शासन कड़ा था। कृष्णा ने पढ़ाई के साथ संगीत और नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। पैरों में घूँघर

बाँधते ही वह स्वर्ग की अप्सरा वन जाती, वड़े-से-वड़ा कला-मर्मज्ञ हो या नृत्य-संगीत से एकदम ही अनभिज्ञ कोई अरसिक, सब उसके नृत्य की रस-माधुरी में डूब कर रह जाते; यही उसके नृत्य की विशेषता थी।

एक वार एक नृत्योत्सव में तीन घण्टे तक नाचकर दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध किया और अन्त में जब हाथ जोड़कर दर्शकों की ओर सिर झुकाया, तो तालियों से हाल गूँज उठा। सर्जन की आँखों में आनन्दाश्रु छलक उठे। अन्तःकरण को अमृतवृष्टि से परिप्लावित करती उस छवि को एकटक देखते, एक और व्यक्ति की भी आँखें तरल हो गयी थीं और वह था तरुण स्क्वैड्रन लीडर वी० डीसूजा। वह कृष्णा के पड़ोसी डॉ० डीसूजा का पुत्र था, उसके पिता सर्जन के क्लिनिक में ही काम करते थे और सर्जरी में ही हाथ में छुरी लग जाने से टिटेनस में उनकी मृत्यु हो गयी थी। पिता की मृत्यु के वाद मातृहीन डीसूजा, सर्जन के साथ ही छुट्टियाँ विताता। कृष्णा के आकर्षण-जाल में वह किस बुरी तरह फँस गया है, यह वह उसी दिन जान पाया। स्वभाव से ही लजीले उस सौम्य गोवानी युवक पर सर्जन का अत्यन्त स्नेह था। उसके लम्वोतरे चेहरे पर साँवले रंग की चमक थी, पतली मूँछों के नीचे उसके पतले होठों पर सदा संयम की चावी लगी रहती। वह वड़े नम्र स्वर में वोलता और वड़े ही सलीके से कपड़े पहनता। उसके जूते ऐसे चमकते कि कोई चाहे तो अपना मुँह देख ले! सर्जन, उसके जूतों की इसी चमक पर फिदा थे। "शाव्वास वेटे, तुम्हारे जूतों की चमक देख-कर हमारी तवियत खुश हो जाती है। जो शख्स अपने जूते चमकाकर रखता है, उसका दिल भी हमेशा चमकता रहता है।" पता नहीं सर्जन का कथन किस अंश तक सच था, पर डीसूजा का दिल सचमुच ही एकदम साफ था। वह जितना ही कृष्णा से वच कर निकलता, वह उसे उतना ही घेर लेती।

इसी वीच सर्जन को अपने निःसन्तान बूढ़े चाचा की क्रिया निबटाने पहाड़ जाना पड़ा। कुछ ही दिन पूर्व उनके चाचा का अनुनय भरा पत्र

आया था—"मैं मरणासन्न हूँ, मेरी मृत्यु के वाद जैसे भी हो, मुझे पीपल-पानी कर जाना, नहीं तो मेरी आत्मा भटकती रहेगी।" सर्जन प्रगतिशील विचारों के होकर भी घोर सनातनी थे। अपने राजप्रसाद के गुसलखाने में लघुशंका से निवृत्त होने भी जाते, तो जनेऊ कान पर चढ़ा होता। चाचा की आत्मा को तो उन्होंने भटकने से वचा लिया, पर पुत्री की आत्मा भटक गयी। तेरहवीं कर लौटे, तो चित्त प्रसन्न था। आत्मीय स्वजनों ने उनकी पुत्री के लिए एक हीरे-सा टुकड़ा वर ढूँढ़ दिया था। कृष्णा उन्हें लेने एअरपोर्ट पर आयी—"क्यों बेटी, कान्तम्मा तुम्हें छोड़ कर छुट्टी ले घर तो नहीं चली गयी?" उन्होंने पूछा। कान्तम्मा उनकी वर्षों पुरानी बूढ़ी आया थी—"ना पापा" नम्रमुखी कन्या उन्हें कुछ पीली-सी लगी। "पापा, मेरे लिए पहाड़ की मिठाई वालसिंघौड़ी लाये या नहीं?" बच्ची की तरह मचल कर उसने पूछा। "लाया क्यों नहीं, और भी एक चीज लाया हूँ अपनी दुलारी बेटी के लिए, जानती हो क्या?" सर्जन ने मुसकराकर कहा।

"क्या पापा?"

"एक सुन्दर-सा वर, जिसे ढूँढ़ने ही शायद भगवान् ने मुझे पहाड़ भेजा था।" सर्जन ने कनखियों से बेटी की ओर देखा और ममता से उनका गला भर आया। थोड़े ही दिनों में उनकी बेटी पराई हो जायगी। कृष्णा का चेहरा आश्चर्यजनक रूप से सफेद लग रहा था, वह पहले गुमसुम हो गई, फिर अचानक पलट कर दृढ़ स्वर में बोली—"आपको मेरे लिए वर नहीं ढूँढ़ना होगा—मैंने वर ढूंढ़ लिया है!"

सर्जन दंग रह गये, कहती क्या है लड़की—कहाँ से वर ढूंढ़ लिया, यहाँ तो अपने समाज का एक परिवार भी नहीं था।

"क्या बात कर रही है पगली, कैसा वर?" उन्होंने स्वर को करुण बनाकर पूछा।

"हाँ पापा, मैं विकी से ही व्याह करूँगी।" सामान्य-सी किशोरी के कठ की दृढ़ता में कहीं भी नम्रता की मिठास नहीं थी। सर्जन क्रोध से

काँपते चुपचाप अपनी मूँछें नोचने लगे। सामान्य-सा पाइलट डीसूजा, उस पर भी ईसाई और कहाँ कुमाऊँ के महापण्डितों के खानदान की पुत्री कृष्णा! कार घर पहुँची, तो डीसूजा को बुलाने आदमी भेजा, पता लगा—डीसूजा मद्रास चला गया है। शासन की लक्ष्मण-रेखा में पुत्री को बाँध कर सर्जन निश्चिन्त हो गये। बिना उनसे पूछे अब वह गुसलखाने भी नहीं जा सकती थी। सर्जन को इसी बीच जयपुर की मेडिकल सेमिनार में अध्यक्षता करने जाना पड़ा। कान्तम्मा को कड़ी हिदायतें देकर वे दो और बूढ़ी नौकरानियाँ तैनात कर गये, किन्तु तीन जोड़ी बूढ़ी आँखों को धोखा देने के लिए कृष्णा की एक ही जोड़ी जवान आँखें काफी थीं। डीसूजा खबर पाते ही छुट्टी लेकर आ गया और दोनों फिर लुक-छिपकर मिलने लगे। "पापा के आने में केवल आठ दिन हैं विकी।" एक दिन कृष्णा ने उसकी छाती पर माथा टिका कर कहा—"तुम्हें पाँच दिन बाद लम्बी ट्रेनिंग के लिए फ्राँस जाना है, क्यों न हम सेंट पाल के बूढ़े पादरी की खुशामद कर शादी कर लें? पापा फिर कर ही क्या लेंगे?"

एक शाम, दोनों जंगल में खो गये। बच्चों की भाँति, एक-दूसरे का हाथ कसकर पकड़े, सेंट पाल से लौटे। तीसरे दिन डीसूजा चला गया। सर्जन लौटे, तो ढाई तीन माह तक मरीजों में फँसे रहे। एक दिन लेटे-लेटे वे अखबार पढ़ रहे थे कि पहले ही पृष्ठ पर 'तरुण भारतीय पाइलेट की मृत्यु' की खबर देखकर चौंक गये। डीसूजा की मृत्यु हो गयी थी। वे मन-ही-मन ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दे रहे थे कि एक चीख सुनकर चौंक पड़े। कृष्णा उनके पीछे खड़ी थी। उसका रोना और कोई न सुन ले, यह सोचकर सर्जन ने चट से उसे उसके कमरे में धकेलकर अन्दर से चिटकनी चढ़ा दी। पर कृष्णा सिसकती रही। "क्या तूफान मचा रखा है तुमने? कोई नादान बच्ची तो नहीं हो, तुम्हें पता होना चाहिये कि तुम्हारी शादी तय हो चुकी है।" बाल बिखराये ही कृष्णा तड़पकर उठ बैठी—"मेरी शादी हो चुकी थी पापा!"

"क्या वकती है ?" सर्जन ने तिलमिलाकर वेटी की ओर चाँटा साधा, फिर वड़ी चेष्टा से विना मारे ही हाथ पीछे खींच लिया।

"हाँ पापा, तीन माह पहले सेंट पाल के पादरी ने हमारी शादी करवायी थी—विकी मेरा पति था।", उसके होंठ काँपने लगे।

"चुप कर वेहूदी। तुम अभी नावालिग हो, शादी हो ही कैसे सकती थी ?" गुस्से से पैर पटककर सर्जन धड़धड़ाते पादरी के पास गये, न जाने कितने के चेक से उसका मुँह वन्द किया। लौटे तो कृष्णा को समझाते हुए कहा—"मैंने पादरी को समझा दिया है, वह सव रिकार्ड जला देगा। खिलवाड़ को कोई भी धर्म शादी नहीं कह सकता।"

"पर एक वात और है पापा", सिर झुकाकर कृष्णा जमीन पर गड़ गयी।

"क्या ?" चीखकर ही पूछा सर्जन ने। "मैं माँ वननेवाली हूँ।" दोनों हाथों से मुँह ढाँप कर वह सिसक उठी।

नियति से जूझकर सर्जन अव धराशायी थे। रात-भर वे पिंजड़े में वन्द शेर की तरह चक्कर लगाते रहे, फिर भोर होते-होते उन्होंने कमर कस ली। दूसरे दिन वे पुत्री को लेकर यह कहकर चले गये कि सगाई की रस्म पूरी करने वे पहाड़ जा रहे हैं। मार्ग में उन्होंने वेटी को कितना समझाया, अठारह वर्ष की जिन्दगी, वह अकेली नहीं काट सकती। देहली में एक वहुत बड़े महिला आश्रम की संचालिका काशीबाई को वे जानते थे। कुछ वर्ष पूर्व उसे ब्रेस्ट कैन्सर हो गया था। उन्होंने उस विधवा सुन्दरी को कभी जीवन-दान दिया था। आज उसीका प्रतीदान माँगने जा रहे थे। सव कुछ सुनकर काशीबाई हँसकर वोली—"आप निश्चिन्त रहें सर्जन, किसी को कानों-कान खवर नहीं होने की।"

भाग्य ने सर्जन पर दया करके समय से पूर्व ही कृष्णा को मुक्ति दे दी। सतमासी पुत्र को जन्म देकर वह चार माह वाद घर लौट आयी। कुछ ही दिनों वाद उसीके विवाह की तैयारियाँ जोर-शोर से होने लगीं।

सात फेरे लगाकर सप्तपदी पूर्ण हुई, तो सर्जन के दिल का पहाड़ हट गया। काशीवाई पर उन्हें पूरा भरोसा था और किसी को कानों-कान कुछ खटका भी नहीं हुआ था। धीरे-धीरे समय वीतता गया। विवाह को अव छः वर्ष पूरे हो गये थे, कृष्णा के एक पाँच वर्ष का पुत्र भी था, किन्तु अभी भी उसके सौन्दर्य में वही अल्हड़-सा भोलापन था। वह नृत्य का निरन्तर अभ्यास करती थी, उसके ओडिसी और भरतनाटयम् की ख्याति राजधानी तक पहुँची और महारानी के स्वागत-समारोह में उसे आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया। वह अपने पति और पुत्र के साथ ही आयी थी, क्योंकि ठीक सातवें दिन उसके पति को वाशिंग्टन दूतावास में सेक्रेटरी के पद का भार ग्रहण करने पहुँचना था। दुर्भाग्य से ठीक नृत्य-समारोह के दिन ही राजीव को तेज ज्वर हो आया। इकलौता जिद्दी लाड़ला, माँ के गले में अपनी ज्वराक्रान्त तपती वाँहें डालकर झूल गया—"नहीं ममी, तुम यहीं रहो।" बड़ी कठिनता से एक इलैक्ट्रिक ट्रेन और चाकलेट का उत्कोच देकर कृष्णा को छुट्टी मिली। उस दिन के नृत्य-प्रदर्शन ने उसके गले म कीर्ति की जयमाला डाल दी, स्वयं महारानी एलिजावेथ ने उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे वधाई दी। प्रशंसा और तालियों के नशे में झूमती वह पति के साथ कार में लौट रही थी कि सर्र से महिला आश्रम के पास से कार गुजर गयी। एक पल ही में उसकी सारी प्रसन्नता उड़ गयी। जिस घाव की सूखी पपड़ियाँ तक झर गयी थीं, वही आज नासूर वन गया था। घर पहुँची और वच्चे को छाती से चिपटाकर लेट गयी; पर सो नहीं सकी। माँ को पाकर राजीव ने प्रसन्नता से छाती में मुँह छिपा लिया।

पीपल के पेड़ के साये में घिरी आश्रम की छोटी-सी कोठरी में मूंज की झूला-सी चारपाई पर एक अभागा सो रहा था, उसके पास मुँह छिपाने को किसी की छाती नहीं थी। उसे सदा के लिए छोड़ जाने पर भी माँ ने किसी प्रकार का समझौता नहीं किया था। न उसे माँ के लौटने का इन्तजार था, न विछोह का दर्द। वह दिन-भर आश्रम के लावारिस वच्चों

से पिटता रहता। उसकी शान्त आँखों में एक अजब उदासी थी, न वह किसी से बोलता था, न किसी से झगड़ता।

झगड़ता भी कैसे? वह बहरा था और बोलता भी क्या? बेचारा जन्म से ही गूँगा था। कृष्णा को यह सब कुछ भी पता नहीं था। पाँच वर्षों में वह कई बार उसे देखने को व्याकुल हो उठी थी, पर उसने पापा को आश्रम में कभी पैर भी न रखने का वचन दिया था। फिर क्या पता, शायद मर ही गया हो। बेचारी कृष्णा क्या जानती थी कि ऐसे बच्चे, जिनकी मौत की मिन्नतें माँगी जाती हैं, कभी नहीं जाते। जाते हैं वे जिनकी जिन्दगी की भीख के लिए दामन फैलाये जाते हैं। सोमवार को उसे विदेश जाना था, बच्चे का बुखार उतर गया था और वह अपनी रेल से खेल रहा था, पति कहीं गये थे, कृष्णा ने अपनी कार निकाली और उसी दुकान पर पहुँची, जहाँ से खिलौने की रेल खरीदी थी। ठीक वैसी ही रेल खरीदी, एक बड़ा-सा भालू लिया और कई चाकलेटों से बैग भरकर आश्रम की ओर चल पड़ी। थोड़ी दूरी पर कार पार्क कर उतरी तो कलेजा धड़कने लगा। क्या पता, काशीबाई की बदली हो गयी हो! साहस कर भीतर गयी तो काशीबाई गेट पर ही मिल गयी।—"ओह तुम! वाह, आओ, आओ! दफ्तर ही में बैठें।" हाथ पकड़कर उसे भीतर ले गयी। "कहो, आज बहुत दिनों में याद किया।" स्वर का तीखा व्यंग्य कृष्णा के हृदय के घाव पर नमक छिड़क गया।

"आती कैसे! पापा को वचन दिया था।" कहकर कृष्णा ने माथा झुका लिया।

"क्या उसे देखोगी?" बड़ी आत्मीयता से काशीबाई आगे को झुक गयी।

सिर हिलाकर कृष्णा ने मौन स्वीकृति दे दी।

"देखो कृष्णा, मैं बुलवा लेती हूँ, पर जरा अपने दिल पर काबू रखना। वह अभागा गूँगा है, ये नौकरानियाँ साली बड़ी हरामी हैं, जरा

भी शुबहा होगा, तो ब्लैकमेल करना भी जानती हूँ।" "पूरनदेई !" कहकर उसने घंटी बजायी, एक अधेड़-सी जल्लाद औरत आकर खड़ी हो गयी। "देखो, गूँगा बाबा को ले आओ, बड़ी डॉक्टरनी आयी हैं उसकी जबान देखेंगी।" पूरनदेई चली गयी तो संसार की सारी हथौड़ियाँ कृष्णा की कनपटी पर चलने लगीं। रुमाल निकाल कर वह पसीना पोंछ रही थी कि 'चल-चल' कहती हुई खच्चर की तरह हाँकती पूरनदेई गूँगे को ले आयी। वह शायद किसी की मँगनी की कमीज पहने था, जिसकी बाँहें, उसके हाथों से बहुत नीचे लटक रही थीं, या शायद कमीज की लम्बाई महज इसलिए बढ़ा दी गयी थी कि जीर्ण निक्कर ने नीचे के अंगों की लाज ढाँकने से एकदम ही इन्कार कर दिया था। "तैयार क्यों नहीं किया इसे ?" सकपकाकर काशीबाई ने पूरनदेई को डाँटा।

"जिद्दी कैसा है यह हरामी ! कितना कहा कपड़े बदल ले, माने तब ना।" पूरनदेई आग्नेय दृष्टि से गूँगे को भस्म कर बाहर चली गई। कृष्णा की सजल आँखों में नन्हें राजीव का चेहरा नाच उठा। जिसके सौ-सौ नखरे उठाते हुए वह, आया और उसके पति हार-हार जाते थे। द्वार पर कुंडी चढ़ाकर काशीबाई ने इशारे से गूँगे को नजदीक बुलाया— "आओ बेटा !"

"घम-घम" गूँगे ने किसी महान् दार्शनिक की भाँति हँसकर अपनी गूँगी दलील पेश की। जैसे कृष्णा से कह रहा हो—"माँ, इसकी बातों में मत आना, यह बड़ी लबारी है।" कृष्णा ने बेटे की बात समझ ली— ऐसी भाषा केवल माँ ही समझ सकती थी। झरझरकर उसकी आँखें बरस पड़ीं। छोटा-सा डीसूजा ही तो खड़ा था। वही संयमी दृष्टि और वैरागी मुस्कान। लपककर उसने गूँगे को खींचकर छाती से लगा लिया। कभी उसकी लटों को चूमती, कभी मैल से काली कलाइयों को। लगता था, चूम-चूमकर ही गूँगे को अपने में भर लेगी।

"अरे, बस भी कर। क्यों गूँगे का सिर फिरा रही है ?" अपनी

जल्लादी आँखों को और भी कठोर बनाकर काशीबाई बोली । तिलमिलाकर कृष्णा ने उसे छोड़ दिया । मुक्ति पाते ही गूंगा खिलौनों के पास खड़ा हो गया । "ले, सब तेरे हैं ।" कहकर काशीबाई ने उसे डिब्बे थमा दिये । गूंगी आँखें चमक उठीं, कभी इंजन को उठाता, कभी रंगीन लाल-हरे रेल के डिब्बों को, कभी ताली बजाता और कभी गोलगोल घूमकर नाचता—"घम घम मम मम !"

"अब तुम जाओ कृष्णा, बड़ी देर से दरवाजा बन्द है, मुई पूरनदेई कहीं द्वार पर ही कान लगाये खड़ी न हो । वाह, अँगूठी तो बड़ी सुन्दर है तुम्हारी !" लालची दृष्टि का सन्देश कृष्णा समझ गयी, चट अँगूठी उतार कर उसने काशीबाई को पहना दी और मूक करुण दृष्टि से अपना सन्देश भी दे दिया—"मेरे गूंगे का ध्यान रखना ।" फिर हृदय पर पत्थर रखकर वह उठी, एक बार गूंगे को चूमा और तीर-सी बाहर छिटक गयी ।

सोमवार को वह पति के साथ विदेश चली गयी । कुछ ही महीनों में भारतीय सेक्रेटरी की नृत्य-प्रवीणा पत्नी की चर्चा पूरी एम्बेसी में थी । एक बार टेलीविजन पर उसका नृत्य हुआ और एक दिन उसे एक पत्र मिला, एक गूंगे-बहरे बच्चों की संस्था-संचालिका मदर मारिया का । "क्या वे उनके अभागे बच्चों के सम्मुख अपना मनोहारी नृत्य प्रस्तुत कर कृतार्थ करेंगी ?" कृष्णा ने एकदम स्वीकृति दे दी । तीन घण्टे तक वह नाचती रही—गूंगे चेहरों पर खुशी की चमक उसके लिए करोड़ों तालियों की गड़गड़ाहट से भी बढ़कर थी । नृत्य समाप्त हुआ और मदर का हाथ पकड़कर एक देवदूत-सा सुन्दर बालक आया, और उसे फूलों का गुच्छा भेंट किया ।

"धन्यवाद बच्चे, क्या नाम है तुम्हारा ?" पूछते ही कृष्णा को अपनी अल्पबुद्धि पर क्रोध आया । "ओह मिसेज त्रिपाठी, यह बेचारा तो जन्म से ही गूंगा है ।" मदर ने कहा—"इसकी माँ इसे हमारे आश्रम के द्वार

पर डाल गयी थी, फिर पलटकर भी नहीं आयी—ईसू उसे क्षमा करे !" मदर ने क्रास बनाया।

कृष्णा एक टक उस बच्चे के सुनहरे माथे को देखती रही और फिर टपटप कर उसके आँसू उसके रत्नजटित वलयों को भिगोने लगे।

"यह क्या मिसेज त्रिपाठी, आप रो रही हैं !" आश्चर्य से मदर ने पूछा और फिर बढ़कर उन्होंने कृष्णा के दोनों हाथों को चूम लिया—"काश, ऐसे ही प्रत्येक मानव दूसरे के दुख-दर्द के लिए रो सकता। एक विदेशी गूंगे बच्चे के लिए आपकी आँखों में आँसू देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, कितनी !"

बेचारी मदर क्या जानती थी कि वे आँसू केवल उस विदेशी गूंगे बालक के लिए ही नहीं थे। वे उसके लिए भी थे जो अपनी दुबली कलाइयों से, खिड़की की सलाखों को जकड़े ही सो रहा था। उसकी छाती से एक मैला-सा कपड़े का भालू चिपका था। उसकी रेल काशीबाई ने आश्रम के खिलौनों के कमरे में बन्द कर दी थी। वह कितना रोया था, पर कौन सुनता ? आश्रम में, मोटरों में बैठकर, खादी की टोपी लगाये मेहमान आते, बच्चों को साफ कपड़े पहनाये जाते, मिठाई बँटती, पर गूंगा मिठाई फेंककर, अपनी रेल के लिए मचलता रहता। समुद्र की उत्तुङ्ग लहरों की भाँति, नाना तर्क-वितर्कों की लहरें उसके नन्हे-से कलेजे की कछार पर सिर पटक-पटककर व्यर्थ ही लौट जातीं। वह कितना कुछ पूछना चाहता है—मेरी रेल क्यों छीन ली ? इतने मेहमान आते हैं, पर वह क्यों नहीं आती जिसने मुझे प्यार से चूम-चूमकर खिलौने दिये थे ? आज मेरी पीठ पर काशीबाई ने बेंत क्यों मारे ? मैंने तो पूरनदेई की पीठ पर दाँत ही काटे थे; पर वह जो मुझे रोज-रोज मारती है, उसे बेंत क्यों नहीं पड़े ? पर वह अभागा कुछ भी नहीं पूछ सकता। अंधे बेजान भालू को छाती से चिपकाकर छिड़की के अँधेरे कोने में दुबक गया है, जहाँ थोड़ी देर तक न उसे काशीबाई ढूंढ सकती है, न पूरनदेई। सात समुद्र

पार उसकी माँ भी सिसक रही है—शायद उन्हीं लाड़भीनी सिसकियों की लोरी ने गूँगे को भी सुला दिया है। मीठी नींद में डूबा गूँगा, अपने गूँगे सपनों की दुनिया में पहुँचकर खो गया है, वहाँ न काशीबाई है न पूरनदेई, वहाँ तो बस बड़ी-सी बिजली की रेल है, सोने के पेड़ों पर खिलौने झूल रहे हैं, और वही सुन्दर-सी औरत उसे गोद में उछाल-उछालकर चूम रही है।

नींद ही में गूँगा मुस्कराकर भालू को और भी कसकर छाती से लगा लेता है।

बन्द घड़ी

माया ने छाया जीजी को हरे पर्दे खिसकाकर देखा, दूर-दूर तक कोहरा फैल गया था, अँधेरे में चमकती छिपती रोशनियाँ, जुगनू-सी दप-दप दमक रही थीं। गरजते मेघों का तर्जन सुनकर लगता था कि पानी वड़े वेग से वरसेगा। "अभी तक जीजी हॉस्पिटल के राउंड से नहीं लौटीं। क्या पता किसी कमवख्त को दर्द उठ आया हो? वच्चे कव के स्कूल से लौट आये होंगे।" झुंझलाकर माया ने छाता उठा लिया और जीजी के खानसामे से वोली, "जीजी से कहना, मैं आयी थी। वड़ी देर रुकी रही। कल फिर आऊँगी।" कोहरा चीरकड़ वह घर की ओर चल दी, "कितनी अच्छी पिक्चर आयी थी: 'लव इन दी आफ्टरनून' और जीजी ने सव चौपट कर दिया—कल का दिन वीच में है, परसों फिर उसके पैरों में वेड़ियाँ पड़ जायेंगी। बुध को लौटेगा गिरीश। खैर, कल सही—कल जीजी को फिर कोई निगोड़ी मरीज न वाँध वैठे।"

घर पहुँची तो गोल कमरे की वत्ती जल रही थी। रानीखेत की हिमशीतल वयार और हृदय के आतंक ने उसे कँपा दिया—तो क्या लौट आये हैं? वह भीतर गयी ही थी कि सोनिया भागती हुई उससे लिपट गयी "ममी", वह फुसफुसाकर वोली, "पापा दौरे से लौट आये हैं, मूड वहुत खराब है। इत्ता खराव।" वह अपनी नन्हीं-सी वाँहों को शून्य में फैलाकर पिता के भयंकर मूड का घनत्व वतलाने लगी। "वाई गॉड ममी, ड्राइवर से बोले, सूअर का वच्चा और...."

"अच्छा अच्छा, बस कर।" माया ने झुंझलाकर उसे अपने से अलग कर कहा।

इसी बीच गुसलखाने का द्वार खुला, द्वार क्या खुला कि सर्कस के शेर का पिंजड़ा खुल गया, "अच्छा कहिए, घूम आयीं। जानलेवा घाटियों पर जीप दौड़ाकर इन्सान घर आता है तो एक प्याली चाय का ठिकाना नहीं—जाइए न, और घूम आइए।" गिरीश ने उसे क्रूर दृष्टि से चीरकर रख दिया।

अपनी शान्त दृष्टि से पति का व्यंग और क्रोध झेलकर माया बोली, "घूमने नहीं, छाया जीजी के यहाँ गयी थी।"

"बड़ी कृपा की।" गिरीश ने स्वर का बाण मारा और अखबार उठाकर पढ़ने लगा।

डबडबायी आँखें पोंछकर माया चौके में जाने लगी तो 'ममी ममी' कहता दो वर्ष का अतुल पैरों से लिपट गया। उसके पीछे कूदता-फाँदता ऐल्सेशियन रौस्ट्री आ गया। उसकी कूदाफाँदी से पीतल का फूलदान झन-झनकर गिरा। अखबार हटाकर गिरीश ने एक लात रौस्ट्री को जड़ दी और गरजकर बोला, "भाग जा हरामजादे, दो मिनट तो कहीं शान्ति से बैठने को मिले।"

सहमकर क्षण-भर में पूरा परिवार बिखर गया। माया आकर अतुल बाबा को ले गयी, 'बाप रे बाप! साहब हैं या बम का गोला।' वह मन ही मन बुदबुदायी। माया ने चट गुसलखाने में जाकर द्वार बन्द कर लिये। सहमी सोना अपनी होमवर्क की रफ कॉपी में भयंकर दैत्याकृतियाँ बनाकर लिखने लगी, 'पापा इज ए डेविल।' 'पापा भूत हैं।' 'पापा इज ए बिग फैट डेविल।' प्रतुल अपने मित्र के यहाँ अंग्रेजी गाने के रेकार्ड सुनने गया था, तंग मुहरे की पैंट की जेब में हाथ डालकर मस्तानी चाल से गुनगुनाता भीतर घुस आया, 'लिपस्टिक ऑन योर कालर' गिरी मेज

और विखरे फूलदान को विना देखे ही कंठस्वर तीव्रतर करता वह वढ़ता गया। सहसा कोने की कुर्सी पर पापा को देखा तो साँप सूँघ गया।

"अक्खाह, आइए प्रिन्स ऑव वेल्स।" व्यंग के तीखे स्वर में पापा वोले, "कहिए, कितनी पिक्चर देखी ? यह लिपस्टिक वाला वाहियात गाना भी उसी पिक्चर का है क्या ?"

"न पापा, यह तो विनाका 'टॉप हिट' है।" रुँआसा-सा होकर प्रतुल वोला।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं ! वाप साला हड्डियाँ तोड़कर पैसा कमाता है कि लाडले यही हिट सुनें। चल, ये जनानी चूड़ीदार-सी पैंट वदलकर आ। वेशरम जमाना वोल रहा है, वाप के सामने वेहूदे गाने गाये जाते हैं। चल, हिसाव की कॉपी लेकर वैठ। इनकी उमर में हमें चक्रवर्ती की अंकगणित जीभ की नोक पर थी, पर इनसे पूछिये सोलह का पहाड़ा, तो साफ। हरामी स्कूल के मास्टर और दो अंगुल वढ़कर ये छोकरे।" सहमकर प्रतुल पैंट वदलने चला गया।

गिरीशचन्द्र शर्मा अपने विभाग का सवसे सम्मानित एवं ख्यातिप्राप्त इंजीनियर था, दुर्गम पहाड़ों के वक्ष चीरकर नयी-नयी मोटर रोड़ वनाने का भार इसीसे उसे सौंपा गया था किन्तु लोहे का पुल और वड़े-वड़े पहाड़ डायनामाइट से उड़ा कर चौड़ी सुगम सड़क वनाने की प्रणाली वह अपने व्यक्तिगत जीवन में भी खींचकर लाना चाहता था। कठोर अनुशासन ममता और वात्सल्य की डोर को चतुर चूहे की भाँति भीतर ही भीतर कुतरे जा रहा था, इसका उसे ध्यान ही नहीं था। इसीसे वह दौरे पर जाता तो घर में शहनाइयाँ वजने लगतीं, अत्ती को आया को सौंप माया जीजी के यहाँ चली जाती। घंटों दोनों वहनें गप लड़ातीं और दिन डूवे माया घर लौट आती तो सोचती, "हाय छाया जीजी, कितनी सुखी हैं ! न वच्चों की चें-पें, न पति की झिड़कियाँ। काश मैं छाया जीजी होती !" और छाया सोचती, हाय, माया कितनी सुखी है, फूल से वच्चे और

कार्तिकेय का-सा सुन्दर पति । काश मैं माया होती !" छाया थी साँवली, देखने में अति सामान्य किन्तु पढ़ने में प्रखर बुद्धि । इसीसे वह बन गयी डॉक्टर और माया थी सुन्दरी, भावुक, शरीर और मन दोनों से दुर्बल । सिविल सर्जन पिता की लड़ैती पुत्रियाँ बड़े दुलार में पलकर बड़ी हुई थीं । माया नाजुक और छोटी होने के कारण पिता के बहुत मुँह लगी थी इसीसे बड़े यत्न से उसके लिए वर-चयन किया गया था ।

गिरीश रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज का मेधावी छात्र था । लाखों में एक जानकर ही उसके सम्पन्न श्वसुर ने उसे चुना है, यह वह जानता था । किन्तु उनका धन-वैभव उसके व्यक्तित्व को मोलतोल की डोर में कभी नहीं बाँध सकेगा, यह उसने एक प्रकार से स्पष्ट कर दिया । दोनों का व्यक्तित्व नहले पर दहला था, झड़प होती तो माया और गिरीश साँप और नेवले की भाँति आमने-सामने खड़े हो जाते । जय-पराजय का लेखा कब किसके पल्ले रहा, कोई जान भी न पाता । माया थी भावुक, गिरीश को भावुकता से चिढ़ थी । माया को शोख रंग की साड़ियाँ पसंद थीं, कभी-कभी लिपस्टिक भी लगा लेती, तो गिरीश कहता, "चूहा मारकर खून लगा लो न ओठों पर, और अच्छी लगोगी ।" माया जल-भुनकर रह जाती । माया को रोस्ट चिकन चिचोड़ने में स्वर्गीय आनन्द आता और गिरीश को गोश्त देखकर उबकाइयाँ आती थीं ।

छाया जीजी कभी बड़ी चेष्टा और चातुर्य से छोटी बहन से बातें उगलवा लेतीं, "हद है यह गिरीश ! अजब कसाई है, गोया बाप नहीं हौआ हो गया ! कल ही कहूँगी मैं ।" वह कहतीं, पर मन ही मन वह स्वयं उस मान-मनोबल के लिए तरस कर रह जातीं । कैसे अमूल्य होते होंगे वे मान-अभिमान के मधुर क्षण ! वह रूठना, वह मनाना उसके जीवन में आकाश-कुसुम-चयन-सम रहेंगे ।

उधर गिरीश उससे मन ही मन चिढ़ उठा । जब से छाया की बदली रानीखेत को हो गयी, माया एकदम ही परायी-सी हो गयी थी । पति-पत्नी

में बोलचाल 'हाँ हूँ' तक ही सीमित थी। निरंकुश स्वेच्छाचारी सम्राट् की भाँति गिरीश ने शासन की बागडोर, अव्यवस्था के भय से और कड़ी कर दी। खाने की मेज पर सब किलकते, पर गिरीश के आते ही अनुशासन का कठोर मेघ-सा छा जाता। यन्त्रवत् कौर निगलकर सब चुपचाप उठ जाते। मेज पर लगे कहकहे, चुहलबाजियाँ जैसे सब भूल गये। ममी और पापा के सामान्य से झगड़े ने भीषण रूप धारण कर लिया। नन्हें मासूम भोले चेहरे बेरौनक हो गये, जैसे दूकान पर सजे बहुत पुराने खिलौने हों। घर की झुँझलाहट बाहर निकलने लगी। मेमसाहब महरी और आया से बेमतलब उलझने लगीं। उधर दफ्तर के हेडक्लर्क और चपरासियों पर साहब जरा-जरा-सी बात पर बरसने लगे। एक तो मार्च का महीना, बिलों और फाइलों का अम्बार, उधर पत्नी और बच्चे मोर्चा बाँधकर अलग हो गये। ममी और पापा के झगड़े में बच्चों की सहानुभूति ममी के साथ देख गिरीश जलभुन बैठा। उसने अत्याचारों की झड़ी लगा दी, पराँठे बनते तो फुलके माँगता। पहले मूँग की दाल से कोसों दूर भागता, अब दिन-रात मूँग की दाल की फरमाइश होती। खाकर झनाक से थाली पटक देता, कभी झनक से गिलास! उधर क्रोध और झुँझलाहट से भरी माया चौके से ही चिमटे और सँड़सी का जलतरंग बजाकर प्रत्युत्तर देती। ऐसी बाढ़ आ गयी, जिसका कूल-किनारा नजर नहीं आता था। लगता था, क्रोध की नदी हरी-भरी गृहस्थी को निगल कर ही मानेगी।

● ●

एक दिन माया हल्दी की पुड़िया खोलकर सँभाल रही थी कि पुड़िया के कागज पर दृष्टि दौड़ गयी। फटे अखबार का पृष्ठ था : "बीस वर्षीया स्त्री की दुखद मृत्यु। घर के झगड़े से ऊबकर बीस वर्षीया मिसेज खेर ने कल मिट्टी-तेल डालकर आत्महत्या कर ली।" डूबते को तिनका मिला, क्षण भर की यातना और वह सदा के लिए मुक्त हो जायेगी। आज ही

वह यह संकल्प पूरा करेगी। माया की आँखें चमक उठीं। खूब सबक मिलेगा बच्चू को! अकल ठिकाने आ जायगी। जरा रख तो लें धोबी और दूध का हिसाब! चला तो लें घर खर्चा, जान लेंगे बच्चू कि कै बीसी सैंकड़ा होते हैं! एक रात अतुल बीमार पड़ जाय तो छठी का दूध याद आ जायगा! पर सहसा मातृहीन अतुल की काल्पनिक बीमारी की आशंका ने पति के प्रति प्रतिहिंसा की ज्वाला पर ठंडा पानी गिरा दिया। माँ के गले का हार पकड़े बिना अतुल दूध की बोतल मुँह में नहीं लेता। एक दिन उसे छाया के यहाँ से लौटने में देर हो गयी थी, तो 'ममी ममी' चीखकर उसे बुखार हो आया था। सोनिया को स्कूल जाने से पूर्व, माँ से लिपटकर नित्य दो आने वसूल करने की कुटेव है। एक आने का वह आम का पापड़ लेती है और एक आने की खट्टी-मीठी गोली! और उसके सौ-सौ लाडों का लड़ाया प्रतुल! महीने में दस अंग्रेजी कॉमिक पढ़े बिना उसे पेचिश हो जाती है, घर के डेफिसिट बजट को खींच-खींचकर उसके पेचिश की दवा भी माया को ही जुटानी होती है। स्वयं गिरीश! कितना ही गरजे और तरजे, पर माया के बिना मणिहारा सर्प-सा व्याकुल हो उठता है सो?

हुं, जाय भाड़ में सब! मान-अभिमान से माया की छाती फूल उठी। अपनी काल्पनिक मृत्यु पर स्वयं ही उसकी रुलाई फूट पड़ी। सोनिया लौटेगी तो देखेगी नित्य की भाँति ममी चाय की मेज पर नाश्ता सजाये खड़ी नहीं है! बड़ी-सी चादर से उसकी लाश ढँक दी गयी है। अपराधी गिरीश विषाद से काला चेहरा लिये कुरसी पर स्तब्ध बैठा है। अतुल आकर माँ की लाश से चिपट कर कहता है, 'ममी उतो' तभी अपने को रोक नहीं सकता गिरीश! फक्का फाड़कर रो उठता है, "माया इतनी बड़ी सजा क्यों दे गयी?"

परम संतोष से माया ने मिट्टी-तेल की बोतल पकड़ ली। सहसा माया को याद आयी, छाया जीजी ने उसे नयी आलिव ग्रीन साड़ी लेकर दी। एक दिन भी तो नहीं पहनी उसने! क्यों न आज अन्तिम बार पहन ले?

माया ने मुँह धोया, नयी साड़ी पहनी, जूड़ा बनाया, सफेद माथे पर बड़ी जतन से बिंदी धरी और अन्तिम बार शहीद की करुण दृष्टि से अपना मोहक प्रतिविम्ब आइने में देखा। एक बार, केवल एक बार अतुल को देखने की इच्छा बलवती हो उठी। धीरे-धीरे वह दबे पैरों से गोल कमरे तक गयी। अकेला बैठा अत्ती बूटपालिश की डिबिया को फर्श पर लुढ़का रहा था और भाग-भागकर मुँह में दबाकर रौस्ट्री उसे फिर-फिर नन्हें मालिक के चरणों पर रख रहा था। दोनों हाथों से तालियाँ बजाकर, किलकारियाँ मारता अतुल फिर उसे पहिये की भाँति लुढ़का दे रहा था। पुत्र की क्रीड़ारत छवि को डबडबायी आँखों में भरकर माया देहरी से ही लौट आयी! घड़ी में दो बजे थे, तीन बजे बच्चे लौट आयेंगे। इससे पहले ही मन पक्का कर मुक्ति पा लेनी होगी उसे। मिट्टी-तेल की बोतल और दियासलाई लेकर वह गुसलखाने में घुसने को ही थी कि सहसा स्मरण हो आया, प्रतुल सुबह कह गया था, "ममी मेरी सफेद कमीज में बटन टाँक देना, मुझे डिबेट में जाना है।" झुँझलाकर बाहर निकली और कमीज निकाल कर बटन टाँकने बैठ गयी। कभी याद करेगा, ममी के हाथ का टँका आखिरी बटन। बेसमझ आँखें फिर बरसने लगीं। अतुल की किल-कारियाँ और नन्हीं-सी हथेली की तालियाँ उसके हृदय पर घन की-सी चोटें कर रही थीं। पर अब नहीं रुकेगी वह, बाथरूम में घुसकर कुंडी चढ़ायेगी, और····

पर क्या इतनी सुन्दर आलिवग्रीन कांजीवरम पर मिट्टी-तेल छिड़कना बुद्धिमानी होगी? क्यों न कोई फटी-सी इकलाई पहन ले। "इसे कभी सोनिया पहनेगी।" एक लम्बी साँस खींचकर उसने सोचा। वह सोच ही रही थी कि गिरीश का स्वर आया, "अरे दुष्ट, यह क्या लंगूर-सी शकल बना ली है? ओ हो हो हो!" और पति का वही चिरपरिचित उन्मुक्त हास्य जिसे वह प्रायः भूल ही गयी थी। स्नेहमयी वात्सल्यपूर्ण झिड़की ही थी, क्रोध का लेश भी न था उसमें, "हत् तेरी नानी की दुम! क्या चेहरा बना लिया है रे भूत!"

"क्या किया पापा ?" सोनिया और प्रतुल का स्वर था, साथ ही पिता और बालकों का सम्मिलित राशिभूत अट्टहास ! चट मिट्टी-तेल की बोतल कोने में पटक वह बाहर निकल आयी। घड़ी में अब भी दो ही बजे थे। सर्वनाश ! तो क्या घड़ी बन्द थी ? कान के पास घड़ी ले जा कर देखा तो सचमुच घड़ी बन्द थी। चाय का पानी भी तो नहीं चढ़ाया था उसने ! इतने में ही अतुल को कन्धे पर बिठा कर गिरीश आ गया, उसके पीछे प्रतुल, सोनिया और सबके पीछे दुम हिला-हिलाकर नन्हें मालिक के अनुपम कला-चातुर्य की दाद देता रौस्ट्री !

बादलों को चीर कर जैसे सहसा तरुण चन्द्र की धौत चन्द्रिका म्लान वनवनान्त को रंग जाती है, ऐसे ही पुत्र को देख मधुर हास्य से माया का वेदना-विकीर्ण म्लान-मुखमंडल उज्ज्वल हो उठा। पति के कन्धे पर बन्दर का-सा चेहरा बनाये श्री अतुलचन्द्र शर्मा विराजमान थे—बूटपालिश की काली डिबिया से उसने अपने चन्द्रमुख को नाना आकार के त्रिपुंडों से शोभित कर लिया था और अपने दो दाँतों की अनुपम छटा बिखेरते फक-से मुसकुरा रहे थे। पति की ओर देखकर माया ने आँखों ही आँखों में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। माया को देखकर अतुल उसकी गोद में आने को मचलने लगा। बाँहें फैलाकर माया उसे लेने लगी तो पति के कन्धे से उसका हाथ छू गया। बच्चों की दृष्टि बचाकर गिरीश ने उसकी बाँह में चिमटी काट दी 'उफ' माया ने स्नेहपूर्ण कटाक्ष से गिरीश की ओर देखकर अतुल को गोद में ले लिया और मन ही मन सोचने लगी, '"कैसी नासमझ हैं छाया जीजी ! कहती थीं, तेरा पति कसाई है—कसाई भला ऐसी स्नेहभीनी हरकतें कर सकता है !"

"देख तो सोनी, घड़ी में क्या बजा है, सवा चार बजे मुझे एक मीटिंग में जाना है।" गिरीश ने कहा।

भाग कर सोनिया घड़ी देख आयी, "हाय पापा, कैसी कनस्तर घड़ी

हैं, जब देखो तब बन्द ! उसमें तो दो ही बजा है। यह देखिए।" सच घड़ी में अब भी दो ही बजे थे।

माया ने कृतज्ञता-कातर दृष्टि से बन्द घड़ी को देखा। उसे लगा जैसे उस बन्द निर्जीव घड़ी से सुन्दर अन्य कोई वस्तु संसार में हो ही नहीं सकती !

ठाकुर का बेटा

विशाल दीवानखाने में मसनद लगाकर बैठे ठाकुर हयातसिंह ने सुवासित तम्बाकू की कश खींचकर, त्रिपुंडधारी पंडितजी से बड़े मीठे स्वर में कहा—"डरो नहीं पांडेज्यू, जो लिखा है कुंडली में बतला दो एकदम।"

"महाराज, कैसे कहूँ, विचित्र जोग बना है कुंडली में।" पंडितजी ने अनेक त्रिकोण-षट्कोणों के जाल में उलझकर कहा—"पुत्रयोग प्रबल है; किन्तु........" कहकर बेचारे ने विवश दृष्टि से चारों ओर देखा, जैसे उसे किसी की उपस्थिति का-सा भय हो रहा था।

"कहो कहो; पुरोहितजी, निश्चिन्त रहो। सिवाय दीवारों के यहाँ कोई नहीं है।" हयातसिंह गुड़गुड़ी छोड़कर बैठ गये।

"महाराज पुत्र होगा, किन्तु आपकी इन दोनों पत्नियों से नहीं, एक और विवाह करना होगा आपको, सुलक्षणी कन्या की ग्रहस्थिति विशेष रूप से देखनी होगी—एक बात और भी बड़ी विचित्र है........" कहकर पंडितजी गहरे ध्यान में डूब-से गये।

"क्या ?" कहकर ठाकुर ने उचककर पंडितजी के दोनों पैर पकड़ लिये। पुत्र-प्राप्ति की भविष्यवाणी से उनकी लटकी मूँछें तक सतर हो गयीं।

"पुत्र आपका वन-विहारी ही रहेगा महाराज, आपके राजमहल का सुख आप ही भोगेंगे, हरि इच्छा, हरि इच्छा।" कहकर पंडितजी ने पोथी-पतरे एक ओर खिसका दिये।

थोड़ी देर को हयातसिंह कुछ सोच में डूब-से गये। सहसा जोर से हँसकर उन्होंने पंडितजी की पीठ में कसकर थप्पड़ मारा—"वन-विहारी नहीं बनेगा, तो काम कैसे चलेगा? हयातसिंह के कत्थे का ठेका, चीड़ का ठेका, फिर कुमाऊँ के ओर-छोर तक फैले चाय के वगीचों की माया को क्या राजमहल में बैठकर सम्हालेगा। क्या बात कह गये हो लाख की गुरु! देखो पंडित, तुम्हारी गणना सच निकली, तो तुम्हारी वामणी को सिर से पैर तक सोने से मढ़ दूँगा—समझे!" अपनी नीलम की अँगूठी उन्होंने पंडितजी की उँगली में पहना दी—"लो गुरु, यह रहा तुम्हारा वयाना।"

आशीर्वाद देकर पंडितजी चले गये, तो हयातसिंह का समस्त उत्साह ठंडा पड़ गया। चौथेपन में तीसरी शादी! दुनिया क्या कहेगी, वेटियों के वेटे हो गये थे, दामादों से मुँह छिपाकर सेहरा कैसे बाँधेगा? फिर उसकी पतिव्रता पत्नियों का राधा-रुक्मनी का जोड़ा। जिन्होंने कभी सौतों का रिश्ता नहीं माना, सगी वहनों में भी ऐसा प्रेम नहीं होता। कौन कहता है एक मियान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं! छोटी ठकुरानी चन्द्रा कहती—"खूब रह सकती हैं, वशर्ते मियान भी मखमली हो।" सचमुच ही हयातसिंह के दिल की मियान मखमली ही थी, एक को वह पन्द्रह तोले का चन्द्रहार वनवा देते तो दूसरी के लिए भी पन्द्रह ही तोले का हार वनता। राई-रत्ती कम नहीं। उनके हाथीदंत छप्परखट के अगल-वगल, सोलह शृङ्गार किये दोनों ठकुरानियाँ ईर्ष्या-द्वेष के सारे हथियार डालकर, लेट रहतीं। हयातसिंह को किसी से न तो अधिक दुराव था, न अधिक प्रेम! नाप-तोलकर दोनों को प्रेम की मदिरा ऐसी नियत मात्रा में देते थे कि दोनों छककर पड़ी रहतीं। 'हयात कोट' की छटा भी किसी राजप्रसाद से कम नहीं थी। कहते थे कि ठाकुर ने सीमेन्ट और गारे के स्थान पर उड़द की दाल पिसवाकर विछवा दी थी, जयपुर के कारीगरों का वनाया वह अभेद्य दुर्ग, कुमाऊँ की वनस्थली का एक अनोखा शृङ्गार-मुकुट था। डूवते सूर्य की रक्तिम आभा में चारों ओर से गिरि-शिखरों

से घिरी ह्यातसिंह की उस मायापुरी की शोभा वास्तव में दर्शनीय हो उठती। एक-से-एक आधुनिक कलाकृतियों के अतिरिक्त, उनके प्रवेश-द्वार पर एक वीनस की मूर्ति बना हाथीदाँत का फौवारा था, जिसके कस्तूरीमिश्रित सुवासित जल का ही खर्चा चार सौ रुपये माह था, किन्तु ठाकुर हयातसिंह किस्मत के ही नहीं, दिल के भी बादशाह थे, रुपया उनके हाथ का मैल था, दौलत उनकी हाथ बाँधे खड़ी बाँदी थी। दोनों पत्नियों से उनकी चार लड़कियाँ हुईं, चारों को उन्होंने एक-से-एक अच्छे खाते-पीते घरों में ब्याह दिया था। आज तक वे चैन की नींद ही सोते थे, किन्तु पंडितजी की गणना ने उन्हें अशान्त कर दिया। दोनों ठकुरानियों ने पति की अशान्ति भाप ली—"सुनती हो, लक्षण ठीक नहीं हैं" छोटी ने कहा।

"क्यों नहीं बहन, सब समझती हूँ, आया था न दाढ़ीजार पंडित, सिखा गया होगा कुछ।" उधर बेचारे हयातसिंह के जीवन के पैंतालीस वर्षों में ऐसी विकट रातें कभी नहीं बीती थीं, इधर करवट लेते तो दिखती बड़ी पत्नी सावित्री, जिसके गोल गाल चन्द्रमा के थाल-से मुँह पर निष्कपट प्रेम की आभा थी, छाती पर सौत बिठाने पर भी जिसने कभी पति का तिरस्कार नहीं किया था। उधर करवट बदलते तो दिखती पुष्ट यौवन से गदराई चन्द्रिका, जिसकी तिब्बती माँ के सौन्दर्य ने उसे मछली-सी आँखें उपहार में दी थीं, उन तिरछे कटाक्षों में वारांगना का विलास था, उसके सलीके से पहने गये मखमली घाघरे के आठ-आठ पाटों की मनमोहक घुरनियों ने हयातसिंह को बाँध लिया था। दोनों पत्नियों के प्रेम के अमृत-कलशों को क्या वह लात मारकर गिरा दे? किन्तु पितरों के प्रति भी उनका कुछ कर्त्तव्य है—कुमाऊँ के राजपूत के लिए पुत्र के बिना निरवंसिया जीने से मौत भली है, मन पक्का कर उन्हें विवाह करना ही होगा।

पंडितजी ने गणना ही नहीं की, कन्या भी ढूँढ़ दी। मुक्तेश्वर की घाटी में एक आलू का ठेकेदार था रामसिंह। उसकी पहली पत्नी से एक

पुत्री थी हंसा, विमाता उसे बैल की तरह काम में जोते रहती, किन्तु दिन-रात परिश्रम की अग्नि में झोंकने पर भी छोकरी का रूप फटा पड़ता था। रामसिंह भी पंडितजी का ही जजमान था और एक दिन विना किसी आडम्वर के ही ठाकुर उसे व्याह लाये। सावी और चन्द्रा ने डोली देखी और दोनों पिछवाड़े भागकर एक-दूसरे से लिपटकर घंटों रोती रहीं, जैसे उनका सुहाग उजड़ गया हो।

आलू के ठेकेदार की कन्या का सौन्दर्य देशी उस्तरे की धार की ही भाँति तीखा था। आते ही उसने अपना कमरा अलग कर लिया, हयातसिंह दिन-रात चाय के वगीचों में भटकते। अव वह भी साथ जाती। गहनों की तिजोरी की चावी उसने अपनी पतली-सी कमर में लटका ली। दो नशीली आँखोंवाली नैपाली दासियाँ थीं—शिवकली और रामकली। दोनों ही ठाकुर साहव के वहुत मुँहलगी थीं, अकारण ही वे उनके कमरे के चक्कर लगातीं—कभी पान लेकर, कभी सिगरेट जलाने के वहाने उन पर गिरी पड़तीं। हंसा ने चौथे ही महीने दोनों को छुट्टी दे दी और अपने मायके से दो वूढ़ी वदसूरत ठकुरानियाँ ले आयी। एक विधवा ताल्लुकेदारनी और उनकी सुन्दरी पति-परित्यक्ता पुत्री नीलम, ठाकुर साहव के क्लव की सहचरी थी। उनकी जमी जड़ों को सावी और चन्द्रा के सतीत्व का तेज भी नहीं उखाड़ सका था, पर हंसा ने अपनी एक ही आग्नेय दृष्टि से उन्हें भस्म कर दिया।

एक दिन दोनों आयीं, तो हंसा ने पुत्री के कटे वालों को खींचकर, उसके लिपस्टिक-रंजित चेहरे पर कसकर तमाचा खींच दिया—"खवरदार जो आज से यहाँ देखा, कोठे में क्यों नहीं बैठ जाती ?" इस प्रकार हवा और तूफान से लड़ती हंसा पति के हृदय-प्रासाद के प्रत्येक कपाट पर सावधानी से अर्गला लगाकर स्वयं एकछत्र साम्राज्ञी वनकर बैठ गयी। ठाकुर नयी ठकुरानी के चरणों के दास वन गये थे, फिर ईश्वर ने उनकी आशा की वेल हरी कर दी थी। हंसा के रसीले ओठों पर पपड़ियाँ जम गयी थीं, जिसकी एक-एक वोटी फड़कती थी, वह अव अलस होकर घंटों

सोती रहती, खाने से उसे अरुचि हो गयी थी, कभी वह हिरन के भुने गोश्त खाने को मचलती, कभी कच्ची मूलियाँ हीं चवा डालती।

विवाह को साल-भर हो गया था। इस एक वर्ष में सावी और चन्द्रा भी मुलायम पड़ गयी थीं। सौत ही क्यों न हो, थी तो छोरी अपनी ही विटियाओं के उम्र की। एक कहती—'ऐसे मत उछल, नवाँ महीना लग गया है'। दूसरी कहती—'हाय-हाय, ऐसे में शहद कौन चाटता है?' सौतों के स्नेहपूर्ण प्रतिवन्धों में बँधकर हंसा निहाल हो गयी। विमाता की ताड़ना ने उसके सुनहरे वचपन में विष घोल दिया था, दोनों सौतों के अप्रत्याशित स्नेह से सव विष धुलकर वह गया। उन्हीं के प्रेम के विमल नीर में वह डुवकियाँ लगा रही थी कि पाँसा पलट गया। हयातसिंह के तराई के खेतों में जंगली हाथियों के एक दल ने महान् उत्पात मचा दिया था। हंसा पूरे महीनों से थी, किन्तु उन्हें छोड़कर जाना ही पड़ा। साँझ हो गयी थी, तीनों फ़व्वारे की छटा निहार रही थीं। "दिज्यू, तवियत घवड़ा रही है भीतर चलिये" हंसा ने वड़ी सौत के गले में हाथ डालकर प्यार से कहा।

"चल मरी, तेरी तो एक दिन ही में तवियत घवड़ा गयी, हमसे तो सालों विछुड़े रहे, फिर भी हमने एक लम्वी साँस भी नहीं खींची—क्यों री चन्द्रा....?" सावित्री ने हँसकर कहा "और क्या!" चन्द्रा फ़ौव्वारे की धारा में हाथ डुवाकर खेल रही थी "पर ये ठहरी पटरानी दिज्यू—है ना हँसी!" "नहीं दीदी, सच हल्का-हल्का दर्द उठ रहा है, आप दाई को वुलवा लीजिये" हंसा का स्वर सचमुच रुँआसा हो गया—"हाय-हाय, वे भी नहीं हैं" सावी ने घवराकर कहा, दूसरे ही क्षण उसने देखा चन्द्रा का चेहरा जर्द पड़ गया था और वह उसे इशारे से कुछ दिखा रही थी। सावी भय से स्तब्ध रह गयी। न जाने कहाँ से घने अन्धकार को चीर एक महादानव की आकृति उनके वीच खड़ी थी। पूरे शरीर पर वड़े-वड़े काले वाल और छाती पर सफेद वालों का चौकोर घव्वा—भयानक भालू

खड़ा था। सहसा बचपन में सुनी एक-एक कहानियाँ हंसा को याद हो आयीं। कुमाऊँ का जंगली भालू, नासिका-लोलुप ही नहीं, नारी-लोलुप भी होता है। अपनी अंगारे-सी आँखों को घुमा-घुमाकर उसने तीनों के रूप-यौवन को परखा और फिर चीखती हंसा को बाहों में भरकर कद्दावर डगें भरता अन्धकार में खो गया। अर्धमूर्छित-सी चन्द्रा और साबी भय से विक्षिप्त-सी हो गयी थीं। उन्हें चीखने का भी अवकाश नहीं हो पाया था। 'हयातकोट' के सुरक्षित दुर्ग में जहाँ प्रवेश-द्वार पर सदैव एक गुरखा चौकीदार दुनाली लिये खड़ा रहता था, न जाने वह भालू किस दीवार को फाँदकर आ गया था!

रात ही को हयातसिंह अपनी जीप भगाकर आ गये। कुमाऊँ के इतिहास में ऐसी अनहोनी घटना कभी नहीं घटी थी। ठाकुर हयातसिंह ने कुमाऊँ के जंगल छनवा दिये, किन्तु गहन वनों की अभेद्य दुर्गमता को चीरना आसान नहीं था। हंसा कहीं नहीं मिली। कुछ माह पहले यह घटना घटी होती, तो उसकी दोनों सौतें, शायद घी के दिये जलातीं, किन्तु आज उसी सुन्दरी सौत का विछोह उन्हें असह्य हो उठा। धीरे-धीरे दस वर्ष एक व्यर्थ प्रतीक्षा में बीत गये। हयातसिंह ने सब शौक त्याग दिये। क्लब की माया छूट गयी, कभी इक्के-दुक्के एक-आध पेग चढ़ा लेते। पहले बोटी के बिना गस्सा नहीं तोड़ते थे, अब उसी चौके में प्याज भी नहीं कटता। दस वर्षों में भी वे अपनी सुन्दरी पत्नी की स्मृति को भुला नहीं पाये थे।

एक दिन वे बहुत दिनों से जंग लगी अपनी दुनाली को साफ कर रहे थे, रात बहुत हो गयी थी। उनकी दोनों पत्नियाँ जब सो गयीं, तो वे चुपचाप बन्दूक लेकर गोल कमरे में आ गये थे। द्वार खटका, उन्होंने खोला तो देखा, गुमान खड़ा था। गुमानसिंह हयातसिंह से वयस में बहुत छोटा होने पर भी उनका अन्तरंग मित्र था। ठाकुर हयातसिंह के विवाह होने से पूर्व हंसा से उसके विवाह का प्रसंग भी चला था और उस प्रस्तावित

रिश्ते को लेकर कभी-कभी दोनों मित्रों में रसिक छींटाकशी भी चलती थी; किन्तु हयातसिंह से हंसा का विवाह हो जाने पर भी दोनों की मैत्री सुदृढ़ थी। हयात की दोनों पत्नियों को वह भौजी कहकर पुकारता, पर हंसा से कहता हंसी। 'कुछ भी कहो हयात, आलू के ढेर में पड़े इस हीरे को पहले मैंने ही देखा, पर झपट्टा मारकर तुम ले गये।' हंसा लाल पड़ जाती। उसके गाँव में वह शिकार खेलने अक्सर आता था और कभी उस छैल-छवीले जवान ने उसकी भूख-प्यास ही हर ली थी। रिश्ते में वह उसकी विमाता का चचेरा भाई था। वह प्रायः शिकार खेलने आता और उन्हीं के घर टिकता। हंसा कभी उससे खाली कारतूस माँगती, तो वह हँसकर कहता—"मामा क्यों नहीं कहती मुझे? मामा कहेगी, तब दूँगा।" "क्यों कहूँ—तुम मामा होते, तो कहती भी।" वह शैतानी से मुस्कराकर कहती।

"तो क्या हूँ री मैं तेरा?" कहकर उसने एक दिन उसकी चोटी इतनी जोर से खींच दी कि वह खिंचती स्वयं उसकी छाती पर ही आ गिरी थी—"मैं तुझे अपनी मंगेजे (सगाई) के लिए माँग लूँगा हंसा। विद्या कसम, इसी इतवार को आऊँगा" वह कह गया था। पर इतवार के पहले आता था शनि और शनीचर के दिन ही पांडेज्यू उसे ठाकुर हयातसिंह के लिए माँग ले गये। हयातसिंह था लाखों का मालिक, गुमानसिंह था एक सामान्य-सा ठेकेदार। विवाह होने के पश्चात् उसने गुमानसिंह को अपने यहाँ हयातसिंह से हँसते-बोलते देखा, तो भय हुआ कि कहीं ईर्ष्यावश वह उसकी कारतूस-याचना का भेद न खोल दे, पर उसकी अलमस्त हंसी सुनती, तो उसका भय बह जाता। अपने वैभव में भी वह उसके उदास चेहरे को भूल नहीं पाती। हंसा के खो जाने के बाद भी वह प्रायः तराई से चला आता था। पर इतनी रात को उसे देखकर ठाकुर अवाक् रह गये—"गुमान इतनी रात को कैसे चले आये?" उन्होंने अपनी बन्दूक नीचे रख दी।

"मैंने आज एक अजब नजारा देखा है हयात! सोचा, तुम से नहीं

कहूँगा, तो पागल हो जाऊँगा'' उसके रूखे बाल बिखरे थे और चेहरा जरा-सा निकल आया था।

''क्या बात है गुमान, बैठो, लो थोड़ी-सी ब्रैण्डी लो'' कहकर ठाकुर ने अपने सेल्फ से बोतल निकाली—एक साँस में ब्रैण्डी घुटककर गुमान ने हयात के कंधे पर हाथ रक्खा। 'हयात' बहुत धीमी आवाज में वह बोला—''मैंने आज तुम्हारे बेटे को देखा।''

''पागल हो गये हो क्या या निरी जिन चढ़ाकर आये हो?'' हयातसिंह ने आश्चर्य से अपने मित्र की ओर देखा—''नहीं हयात, गंगा की सौं, सिर से पैर तक तुम्हारा बेटा, पक्के ठाकुर का बेटा! आज देवलधार के जंगल से होकर आ रहा था। देखता क्या हूँ कि एक भयानक भालू चला आ रहा है। पीछे-पीछे चार हाथ-पैर टेकता राजकुमार-सा एक नौ-दस साल का बच्चा। हंसा को उसने मारकर फेंक दिया, पर इस चाँद के टुकड़े को नहीं मार सका....''

''कैसे कह रहे हो कि हंसा को मार दिया?'' क्रोध और अविश्वास से ठाकुर का स्वर झुँझला उठा—जैसे अभी भी वह अपनी प्रेयसी की मृत्यु को अफवाह रूप में ही सुनना चाहते थे।

''तो सुनो हयात, आज नहीं, उसने हंसा को उसी दिन मार दिया था। कह नहीं सकता कि अभागिनी की मृत्यु उस दानव भालू के हाथों हुई या गहन अंधकार से घिरे जंगल में प्रसव-वेदना ने उसके प्राण लिये। जब तुम कुनाऊँ के जंगल छनवा रहे थे, मैं भी स्वयं रात-रात मशाल लेकर ओना-कोना छान रहा था। तीसरे ही दिन देवलधार के जंगल में खून से लतपथ उसकी लाश मुझे मिली थी। जंगल की लकड़ियाँ जुटाकर मैंने उस चन्दन-सी काया का दाह किया। तुमसे नहीं कहा हयात, इसलिए कि तुमसे पहले मैंने ही उसे प्यार किया था। जिसकी जीवित काया को पाने के लिए मैं तरसता रहा; उसकी निष्प्राण देह पर भी मेरा

उतना ही मोह था, उसे छाती से लगाकर मैं रात-भर बैठा रहा। प्रातः होने से पूर्व ही एक तीव्र दुर्गन्ध से मैं तटस्थ हुआ। सूरज उगने से पहले ही मैंने उसकी चिता रचा दी। जिस अग्नि में मैं झुलसता आया था, उसी में तुम्हें भी झुलसाने का मेरा न जाने कैसा बचपना था। सुनो हयात, मन का पाप कह देने पर पाप नहीं रहता—मैंने उसे बहुत प्यार किया था और तुम हमारे बीच न आते, तो शायद वह भी मुझे बहुत प्यार करती। अब वह नहीं रही हयात, पर उसके बेटे को—तुम्हारे बेटे को छुड़ाकर लाना ही होगा।

हयातसिंह फटी-फटी आँखों से उसे देख रहे थे, जैसे अनहोनी घटना को वे किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर पा रहे थे।

"चलो हयात, सोच क्या रहे हो, बड़ी चतुरता से ही गोली चलानी होगी। बच्चा उसके पीछे सटकर रहता है। उस दिन तेंदुए पर तुम्हारा निशाना काँप गया। तुम बच्चे को पकड़ना, मैं ही गोली चलाऊँगा"—वह पागलों की तरह बकता जा रहा था—"निशाना चूका, तो कहीं के नहीं रहेंगे हयात, बन्दूक छीन लेता है भालू, चलो-चलो देर मत करो....।"

चुपचाप दोनों बन्दूकें लेकर पिछवाड़े से दीवार फाँदकर चोरों की भाँति निकल गये। साबी-चन्द्रा जग जातीं, तो तूफान मचा देतीं। 'इतनी रात को शिकार, वह भी भालू का........!'

ग्राम का थोकदार धरमदेव लुटिया लेकर दिशा-जंगल जा रहा था, सहसा वह धमककर खड़ा रह गया। देवलधार की जानलेवा चूने की चट्टान से दो टूटी चट्टानें-सी लुढ़कती चली आ रही थीं। पीछे-पीछे दो काली लकड़ियाँ। निकट आने पर उसने देखा, वे चट्टानें नहीं, गुमान और हयातसिंह की क्षत-विक्षत देह थी और काली लकड़ियाँ थीं, निर्ममता से तार की भाँति मोड़ी-मरोड़ी दो बन्दूकें। गुमानसिंह का चेहरा नुचे मांस से बीभत्स बन गया था और उसमें प्राण के कोई चिह्न नहीं थे, किन्तु

ठाकुर हयातसिंह की साँस थोड़ी-थोड़ी चल रही थी। धरमदेव भागकर सबको बुला लाया, लादकर उन्हें हयातकोट ले गये। मुख में गंगाजल की बूँदें डालकर साबी और चन्द्रा ने उनके ओंठों के पास कान सटा लिये। रक्त से सने, सूजे ओंठ बुदबुदाये—"ठीक कह रहा था गुमान—ठाकुर का बेटा है, ठाकुर का।" और लहूलुहान शरीर निष्प्राण पड़ गया।

प्रतीक्षा

मेज पर दस तस्वीरें बिखरी थीं। चल-चित्र की तारिकाओं के-से गोल, तिकोने, अण्डाकार, चपटे चेहरों पर, खिड़की के काँच से आती सूर्य की किरणें कोण-त्रिकोण प्रस्तुत कर रही थीं।

ज्योतिष और हस्तरेखा का सुविज्ञ पण्डित विमल, उन चेहरों की ज्यामिति के असाध्य साध्यों में तीन दिन से उलझा पड़ा था। आज तक किसी भी चेहरे के विभिन्न अवयवों की कुंजी से, वह चेहरे के स्वामी अथवा स्वामिनी के जटिल-से-जटिल ताले को भी खोल लेने की अद्भुत क्षमता रखता था। पतले होठों का कितनी डिग्री का कोण मनुष्य को क्रूर बनाता है? किस प्रकार की अधमुँदी-आँखें व्यक्ति के कृपण-स्वभाव की द्योतक होती हैं? कन्धे उचका-उचकाकर बातें करनेवाले व्यक्ति की क्या परिभाषा होती है—सबका उत्तर विमल की नीर-क्षीर विवेचना क्षण-भर में दे देती थी। लजाकर पलकें झपकानेवाली कन्या का लज्जा-घृत असली है या वनस्पति-जाति का—वह पलक झपकाते ही सूँघ लेता। मानव-स्वभाव के उलझे-से-उलझे ऊन की गुत्थियों को वह राह चलते सुलझाता रहता। उसे इस विद्या में आनन्द ही नहीं, अपने विलक्षण चातुर्य और पटुता पर गर्व भी होता था, किन्तु आज उसका दर्प चूर्ण हो गया था।

दस तस्वीरें उसके सामने पड़ीं, उसकी खिल्ली उड़ा रही थीं—लो, पहचानो हमें, पहचाना न ठेंगा!

पहली तस्वीर थी किसी मीता नागर की। दुबला, इस्त्री किया-सा चेहरा आँखें न उदार न कृपण। ललाट प्रशस्त, वह भी ऐसा कि सौभाग्य

या वैधव्य, किसका द्योतक है—कहना कठिन था। होठों पर रहस्य-भरी मुसकान, यदि मुसकान असली थी, तो महादुरूह और यदि नकली थी, तो लड़की की असाधारण प्रतिभा उसको जीवनभर दास बना देगी।

नम्बर दो अनीता बनर्जी : किसी दिवंगत स्वास्थ्यमन्त्री की कन्यारत्न थी। पिता के ओहदे का अस्तित्व अभी भी पुत्री के चेहरे पर विद्यमान था। बिना बाँहों के अत्याधुनिक पट्टी-से ब्लाउज पहनने से बाँहों की मछलियाँ और भी सुस्पष्ट लग रही थीं। इसी प्रकार नम्बर तीन, चार से लेकर दस तक, एक भी ऐसी सूरत नहीं थी, जिस पर वह दो पल आँखें टिकाकर शीतल कर सकता। दस के दस चेहरे उसे पेड़ ही पर आवश्यकता से अधिक गदराये फलों से दिखने लगे। ऊबकर उसने दसों तस्वीरें, लम्बी चिट्ठियों के पतरे और स्वयं अपने विज्ञापन की कतरन दराज में धर दी।

अब क्या करे ? क्या बाबूजी और अम्मा की ही पसन्द की गयी, ढोल-से चेहरे और मजीरे-से कानवाली लड़की विमला से ही विवाह करने की स्वीकृति दे दे ? वही विमला, जिसने बीच से माँग निकाल अपने चपटे चेहरे को और भी चपटा बना लिया था। कभी नहीं ! इससे वह कुँआरा ही भला ! उसके साथी दो-दो बच्चों के बाप बन गये थे और वह अभी तक लण्डूरा ही बना फिर रहा था, किन्तु अपनी परिमार्जित रुचि का गला वह घोंट कैसे सकता था ! लड़कियाँ भी उसके समाज की नहले पर दहला थीं। कोई ही-ही कर मूर्खा-सी हँसती रहेगी, कोई हँसेगी ही नहीं, कोई आवश्यकता से अधिक दुबली होगी, तो कोई बेहद मोटी।

● ●

राधा उसे कुछ जँची थी, पर तीन बार विमल ने उसे देखा और तीनों ही बार उसे नजले ने बेहद परेशान कर रखा था, हर बार अपनी सुन्दर नाक सुड़कती, वह अपनी बुआ को बुलाने उठ गयी थी। नाक कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, बार-बार सुड़काये जाने पर उसका सौन्दर्य कुछ-न-कुछ घट ही जाता है। दिन-रात की घोटमघोट ने बेचारी के लम्बे चेहरे को सुखा

डाला था। राजनीति, हिन्दी और अर्थशास्त्र में एम० ए० कर अब वह संस्कृत में एम० ए० की तैयारी कर रही थी। उस बेचारी पर तो विमल को सचमुच तरस आने लगा था। उसे लगता था, यदि किसी ने राधा से विवाह नहीं किया, तो वह पाली, अरबी, चीनी सब विषयों में एम० ए० कर डालेगी, किन्तु उसे बचाने की इच्छा होने पर भी, वह इतना बड़ा त्याग नहीं कर सकता था।

विमल ने विवाह न करने का ही संकल्प कर लिया था, किन्तु इधर नौकरों की लूट-खसोट ने उसका जीना दूभर कर दिया था। सोने के बटन, दाढ़ी बनाने का ब्लेड, नहाने का साबुन, टैल्कम पाउडर पल भर में हवा में उड़कर विलीन होने लगे। धोबी का घर नवों-निधियों से जगमगाने लगा। गृह के स्वामी की चादरें, कमीज और पैण्ट, धोबीघाट की विशाल उदधि में सदा के लिए विलीन होने लगीं। एक तो विमल की नियुक्ति झाड़-झंखाड़ से भरे एक पिछड़े इलाके में हुई थी, जहाँ आदिवासी अर्धनग्न स्त्रियों के भावहीन चेहरों और फटी-फटी आँखों को देखता-देखता वह बुरी तरह ऊँबने लगा था। एक दिन, खेल-ही-खेल में उसने अखबार में वह विज्ञापन दे डाला था—चलो कुछ मनबहलाव ही सही। 'आवश्यकता है', उसने लिखा था : 'एक उच्च कुल के उच्चपदस्थ भारद्वाज गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण नवयुवक के लिए सुन्दरी कॉन्वेण्ट शिक्षिता ब्राह्मण-कन्या की। अन्तर्जातीय विवाह मान्य होगा।'

फिर क्या था! नागर, नम्बूद्री, बनर्जी, मुकर्जी दुहिताओं की गर्जन-तर्जन के साथ शिलावृष्टि होने लगी। एक कुमाऊँ चुप था।

मन-ही-मन विमल ने दाँत पीस लिये। उन्हीं की तो वह परीक्षा ले रहा था। शिखासूत्र को मुट्ठी में दबाये बैठे रहेंगे, चाहे ताड़-सी कन्या छाती पर बैठकर मूँग दलती रहे, टस-से-मस नहीं होंगे हिमालय के बेटे। यदि कहीं भी उसने अपनी जन्मभूमि का उल्लेख किया होता, तो अब तक

उसे विजेता हॉकी-टीम के कप्तान की भाँति वे हाथों-ही-हाथों में उछालते नजर आते। खैर, कोई बात नहीं, देख लेगा वह !

पर देख कहाँ पा रहा था, रिसेप्शनिस्ट, रेडियो आर्टिस्ट, नृत्यकुशला, टेलीविजन-तारिका—किसी में भी तो वह अपने मन की राधिका को अब तक नहीं ढूंढ़ पा रहा था।

अचानक डाकिया एक पत्र डाल गया। होगा किसी कन्यादाय-ग्रस्त पिता का। उसका अनुमान ठीक ही निकला, किन्तु जहाँ आज तक आये पत्रों की बनावटी भाषा और आडम्बरपूर्ण शब्द-चयन उसे आधा ही पत्र पढ़कर उबा देता था, वहाँ उस छोटे-से सरस पत्र की सजीव भाषा ने उसके अन्तर को छू लिया। 'महोदय' के 'म' को देखते ही उसने लिखनेवाले व्यक्ति के व्यक्तित्व को बैठे-बैठे ही सूँघ लिया। कैसी सुस्पष्ट बनावट थी 'म' की। चीनी स्याही से लिखे गये हिन्दी अक्षर, किन्हीं प्राचीन ग्रन्थों के भोजपत्र पर लिखे गये मुक्ताक्षरों से होड़-सी ले रहे थे। पत्र क्या था—किसी संग्रहालय से उड़कर आ गया, सुलिखित, सुरक्षित किसी पूर्वकालीन ग्रन्थ का फड़फड़ाता पन्ना था।

'महोदय' से आरम्भ किये गये पत्र में, प्रत्येक अक्षर की दूरी जैसे इंची-टेप से नापी गयी थी।

'आपका उदार विज्ञापन देखकर चित्त प्रसन्न हो गया, कल रविवार है और हमारे सौभाग्य से आप नैनीताल आये हुए हैं, हमारे साथ जलपान ग्रहण करने का कष्ट अवश्य करें।

विनीत,
शिवेन्द्रमोहन पन्त'

विमल उछल गया। न कहीं विवाह योग्य कन्या का उल्लेख न निरर्थक दीनता।

हो सकता है एक भी दुहिता न हो, केवल उत्सुकतावश ही न्यौता दिया हो, और हो सकता है, दर्जन भर विवाह योग्य कन्याओं के पिता हों।

वाह, वाह, एकदम एगाथा क्रिस्टी के उपन्यास के तीसरे पृष्ठ का-सा आनन्द आने लगा था। नाम भी कितना भ्रामक था। पहाड़ी नाम आमतौर पर ऐसे नहीं हुआ करते। क्या पता महाराष्ट्री हों? कुमाऊँ का गजेटियर विमल को कण्ठस्थ था। पितर ने कुछ आपत्ति की, तो वे कोंकण से आकर कुमाऊँ में बस गये। गौतम पन्त का नाम गजेटियर खोलकर दिखा देगा। क्या अन्तर्जातीय विवाहों को तब मान्यता नहीं मिली थी? बंगले का नाम भी बड़ा रोचक था: 'रोडोडेनड्रोन लॉज'। अपरचीना स्थित उस बंगले के विकट मार्ग का गाइड घोड़ेवाले को बनाकर, वह ढूँढ़ता-ढाँढ़ता पहुँच ही गया। बंगला वास्तव में रोडोडेनड्रोन लॉज कहलाने की योग्यता रखता था। चारों ओर से बुरुंष के लाल पुष्पगुच्छ, जापानी क्रेप-पेपर के कन्दीलों की भाँति झूल रहे थे। बंगले के अहाते में सूखी पत्ती तो दूर, एक-एक तिनका भी जैसे जीभ की नोक से उठाकर फेंक दिया गया था। काँच की खिड़कियों में हरे, नीले, पीले पुष्पों की आभा स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रही थी।

सफेद कड़ी कलफ में सधे पर्दे मनोहारी चुन्नटों में एक कतार में खड़े थे। विमल साहबी रुचि का अफसर था। बहुत पहले नैनीताल के ही एक जर्मन डॉक्टर का ऐसा चमचमाता बंगला देखा था उसने। अब तो बड़े-से-बड़े अफसर के लान में भी कपड़े सूखते हैं। आज तक तीन लड़कियों को उसने इसी सामान्य बात पर नापसन्द किया था। जब वह उन्हें देखने गयी, तो आठ-आठ सौ पानेवाले हर पिता की पुत्री के आँगन में कतार-की-कतार, घर के धुले कपड़े सूख रहे थे। हर कतार में एक पेटीकोट और हर पेटीकोट में धोती की किनारी का फूहड़ नाड़ा। जिस घर की माँ या बेटी अपने पेटीकोट में कायदे का नाड़ा नहीं डाल सकती, वह क्या खाक मेमसाहब बनेगी?

किन्तु शिवेन्द्रमोहन पन्त के बंगले की झकाझक सफाई देखकर उसके जी में आया कि वह उस गृहस्थी के सुयोग्य शासक की उँगलियाँ चूम ले।

"अरे आप ! मि० जोषी, आई प्रज्यूम ? मेरा सौभाग्य है, अरे, लिली, आओ-आओ, कहाँ हो, मि० जोषी आ गये हैं।"

शिवेन्द्रमोहन दोनों हाथों से उसका हाथ झँझोड़ते उसे भीतर खींच ले गये।

कमरा दर्शनीय था। निस्सन्देह यह व्यक्ति रुचि और स्वभाव में विमल को बुरी तरह मात दे सकता था। कितना नम्र, साथ ही कितना रोबीला ! देखने में शिवेन्द्रमोहन सुदर्शन तो नहीं थे, किन्तु वाणी का सौजन्य उनके चेहरे की बदसूरती को बहुत पीछे ढकेल देता था। एक काफी लम्बा टेबुल, गुदगुदे विदेशी कालीन में धँसा-फँसा पड़ा था। उसीके चारों ओर तीन-चार कुर्सियाँ बिखरी थीं। विमल को अपने साथ की कुर्सी पर बिठा, हाथ के सिगार की राख झाड़, उन्होंने फिर पुकारा, "लिली, लिली डार्लिंग, मि० जोषी आ गये हैं।"

मि० जोषी का पहाड़ी कलेजा बुरी तरह धड़कने लगा। लग रहा था शिवेन्द्रमोहन पन्त नहीं, पब्लिक सर्विस कमीशन के चेयरमैन ही उसका इण्टरव्यू लेने लगे हैं।

ऐसी हीन भावना ने उसे पहले कभी त्रस्त नहीं किया था, जिधर देखता, उधर ही शिवेन्द्रमोहन की वैभव-पताका फहराकर उसे चुनौती दे रही थी। एक साधारण, घर के बुने डबलनिट रैगलन में वह पूरा कार्टून लग रहा होगा, क्या हो गया था उसकी बुद्धि को ? यह ठीक था कि शिवेन्द्रमोहन के व्यक्तित्व की तुलना में उसके निजी व्यक्तित्व का पलड़ा बहुत भारी था, पर एक नूर का व्यक्ति शिवेन्द्र अपने सौ नूर के कपड़ों में पूरा सम्राट् जँच रहा था। उनकी पिन स्ट्राइप की विदेशी कमीज को कौन नहीं पहचानेगा, पैण्ट की क्रीज क्या थी, उस्तरे की धार ! गले पर फेर दें तो सर और धड़ अलग-अलग। मूँछों पर हल्की सफेदी छाने लगी थी, किन्तु टेढ़ी माँग में सँवरे बालों के गुच्छे घने काले थे।

"लिली, माई स्वीट, हरी अप", पाइप को ओठों में ही दबाये बातें करना भी एक कला है, यह विमल को उसी दिन लगा।

पर्दे की खसखस के साथ ही विमल ने कान खड़े कर दिये। "माफ कीजियेगा, मैं नहा रही थी।"

लिली नाम की सार्थकता को व्यर्थ करती भारी-भरकम शरीर की वह गतयौवन महिला, धम्म से सोफे पर बैठ गयी। साथ ही सोफे का एक बहुत बड़ा अंश पृथ्वी के गर्भ में धँस गया।

"ओह कैसी ठण्ड है, कैसी ठण्ड!" दोनों चौड़ी हथेलियाँ एक दूसरे से घिसती, कभी फूँकती वह होंठो से 'हू हू हू हू" कर कँपकँपी का शब्द प्रस्तुत करती पति के कान में कुछ कहने लगी। साथ ही शिवेन्द्रमोहन 'हो हो' कर हँसने लगे।

"जानते हैं, मेरी पत्नी क्या कह रही है? कहती है उसे आज जीवन में पहली बार एक सुन्दर भारतीय देखने को मिला है।"

विमल का चेहरा लज्जा से लाल पड़ गया। यही उसके गौरवर्ण का सबसे बड़ा अवगुण था। कोई भी कुछ कहता, तो न चाहने पर भी उसका चेहरा लड़कियों की भाँति लाल पड़ जाता।

शिवेन्द्रमोहन की स्थूलांगी पत्नी लिली विदेशिनी थी। फिरंगी मेम की दुहिता का ढोल गले से लटकाकर वह क्या सुखी रह सकेगा?

वर्ष भर असंख्य व्रत-अनुष्ठानों के व्यूह में चक्र-सी घूमती उसकी अम्मा, कठोर अनुशासनप्रेमी उसके बाबूजी? उन सबकी ओर क्या वह आँखें मूंद पायेगा?

लिली चाय बनाने उठ गयी। ऐसा विराट् शरीर विमल पहली बार देख रहा था। आज तक वह दुबली सोंठ-सी सूखी प्रौढ़ा स्त्रियों को फूटी आँखों भी नहीं देख सकता था। प्रौढ़त्व के साथ सामान्य मोटापा भी उसकी परिमार्जित रुचि के अनुसार, प्रत्येक गरिमामयी माँ, चाची या ताई के लिए अनिवार्य था, पर यह भी क्या कि एक ठुड्डी के नीचे बीसियों ठुड्डियाँ लटक रही हैं; चेहरे का सौन्दर्य मोटापे की परतों में बँटता-बँटता शून्य में विलीन हो गया है।

विमल का मन भागने को छटपटाने लगा। कहाँ आकर फँस गया था अभागा। एसे ठिगने-ठुस्के पिता और हिडिम्बा-सी माता की दुहिता क्या कभी तन्वी हो सकती थी ?

सहसा उसकी विचारधारा को चाबुक-सा लगा। हाथ में ट्रे लिये स्वयंवरा मुस्कराती खड़ी थी।

लिली ने बढ़कर ट्रे उसके हाथ से ले ली। "मेरी पुत्री मिनी है, मि० जोषी", शिवेन्द्रमोहन ने हँसकर उसका परिचय दिया तो विमल सकपका गया। लड़की सिर से पैर तक पूरी अंग्रेज थी। नीली आँखें, सुनहले बाल और निःसंकोच हँसी। सूरत में न वह अपने भारतीय ठिगने पिता से मिलती थी, न भीमकाया विदेशी जननी से।

"हनी, मि० जोषी यहीं के निवासी हैं, तुम्हें नैनीताल खूब घुमा देंगे", विदेशी दुहिता के भारतीय जनक, मोटी मछली फँसाने के लिए दनादन आटे की गोलियाँ फेकने लगे, "पहले चाय पी लो—मिनी, फिर मि० जोषी को बाग दिखा लाना।"

विमल केक के टुकड़े से खेल-सा रहा था। उस स्वयंवरा के साथ बाग देखने में उसे भय-सा हो रहा था। जिस स्वतन्त्रता से वह मुग्ध होकर उसे घूरे जा रही थी, लग रहा था, सुअवसर पाते ही, अपनी गोरी बाँहें उसके गले में डालकर झूल पड़ेगी। मन की प्रशंसा को तो ये लड़कियाँ मन में हमारी लड़कियों की भाँति दबाकर नहीं रखतीं, चट से दिखा ही देती हैं।

● ●

लड़की सुन्दरी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वह सौन्दर्य विदेशी ट्यूलिप और डैफोडिल का सौन्दर्य था, जिनके दामी बीज विदेश से मँगवाकर लाट साहब के उद्यान सजाये जाते हैं, गृहस्थ की साधारण पुष्प-वाटिका नहीं। कैसी मूर्खता कर बैठा था, विज्ञापन देखकर खरीदारी करनेवाला कौन ग्राहक, आज तक नहीं पछताया ?

"चलिए, अब आपको अपना बरामदा दिखलाऊँ, पूरा नैनी का बर्ड्स आई व्यू है, ब्रुकहिल, चीना पीक, शेर का डाण्डा सब हथेली पर धरा है", बड़ी आत्मीयता से उसे गलबहियाँ देकर, शिवेन्द्रमोहन एकान्त में खींच ले गये। बरामदे से ही लगा उनका शयनकक्ष था। विमल को लगा, उसे जानबूझकर ही उस कमरे के वैभव से परिचय कराने वहाँ ले जाया गया है। दो बड़े-बड़े नक्काशीदार पलंगों पर डनलप के गद्दे, कैण्डलविक पलंगपोशों से ढँके थे। शीशम की चमचमाती मैण्टलपीस पर परिवार का एक चित्र था। चाँदी के मोमबत्तीदान में एक लम्बी मोमबत्ती जल रही थी। खिड़कियों के भारी पर्दों के बीच, नैनीताल का कोहरा, चक्र बनाता, जलती अगरबत्ती के धुएँ की भाँति चीना पीक की ओर उठता स्पष्ट दीख रहा था।

"ड्रिंक्स ?" शिवेन्द्रमोहन ने विमल की ओर झुककर धीमे स्वर में पूछा।

"जी, नहीं, धन्यवाद, मैं नहीं पीता।"

"गुड", शिवेन्द्रमोहन उस सौम्य सुदर्शन युवक को आँखों ही आँखों में पी रहे थे।

"चलिए बैठा जाय", उन्होंने विमल को खींचकर अपने सामने की कुर्सी पर बिठा दिया, "सच पूछिए तो पत्नी और पुत्री के सामने आपसे बातें नहीं कर पा रहा था। यह मेरी इकलौती पुत्री है मि० जोशी। देखने में कैसी है यह तो आपने देख ही लिया। वैसे तो अपनी पुत्री और दूसरे की पत्नी सबको ही अच्छी लगती है।" वे तिरछी दृष्टि से विमल की ओर देखकर मुस्कराने लगे।

"आप जैसा रत्न उसे मिल जाय, तो मुझसे बड़ा भाग्यवान कोई नहीं होगा।"

"तीस वर्ष विदेश में ही बीत गये, जोशी", शिवेन्द्रमोहन स्वयं कहे जा रहे थे, "केम्ब्रिज से ट्राइपोज लेकर लौटने लगा, तो लिली से परिचय

हो गया, वहीं घर बसा लिया। एक बात और भी थी, जोषी", शिवेन्द्र-मोहन गम्भीर होकर उसकी ओर झुक गये, "सोचा, टाइपोज लेकर लौटने के बाद क्या अपने समाज में अपनी टक्कर का जोड़ा पा सकूँगा ?"

"पहाड़ तो आपने देखा ही है, विदेश में लोग चन्द्रलोक की जमीन के मुरब्बों का मोल-भाव करने लगे हैं, पर हमारा कुमाऊँ अभी भी वंश, गोत्र की बारहखड़ी रटे जा रहा है। डिसगस्टिंग ! अब लिली को देखिए, सात भाषाएँ जानती है। आजकल कठोपनिषद का फ्रेंच अनुवाद कर रही है। मिलती कोई ऐसी मुझे अपने समाज में ?"

"सच कहिए यदि अब भी हमारे समाज में सुयोग्य कन्याओं का अभाव नहीं होता, तो क्या आप विज्ञापन की शरण लेते ?"

शिवेन्द्रमोहन आवेश में दोनों घुटनों के मजीरे-से बजाते, घूमनेवाली कुर्सी को कभी दायें कभी बायें घुमा रहे थे।

"एक बात और भी है, जोषी", अब वे विमल का कन्धा पकड़कर कान के पास सट गये, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे विवाह की सन्तान भी जीनियस होती है, मेरी मिनी····।"

उनकी बात बीच ही में एक चीख से दब गयी।

"आण्टी, आण्टी, हाय मैं मर गयी····!"

दोनों ने फौजी टुकड़ी की तत्परता से एक साथ गर्दन मोड़ी।

"सब दूध उबल गया आण्टी, सब····!" किसी के कच्चे गले की हँसी का स्वर आते ही शिवेन्द्रमोहन बोले, "क्षमा कीजिएगा मि० जोषी, मेरी भानजी है ! गाँव से आयी है, बेहद भोली है, दूध क्या गिरा जैसे आसमान गिर गया। पगली कहीं की !"

"माधवी ! माधवी !" उन्होंने पुकारा।

"हाँ मामा", सर झुकाये, पर्दे को खोलकर माधवी आ खड़ी हो गयी। लाल पर्दे की रक्तिम आभा ने गोरे चेहरे को और भी रक्तिम कर दिया था। विमल मुग्ध होकर उसे देखता रहा। ऐसा रंग और तीखा नैन-नक्श तो कुमाऊँ की ठसकेदार शाहनियों में ही देखा जाता है।

"माधवी बेटी, दो प्याला चाय बना लाओ", शिवेन्द्रमोहन ने दोनों पैर फैलाकर गर्दन के पीछे गद्दी ठीक से लगा ली।

"मुझे आज्ञा दें, चाय नहीं पिऊँगा", विमल उठ गया। "फिर कभी दर्शन करूँगा····।"

"फिर कभी क्यों जोषी, कल हमारे साथ लंच लोगे तुम। हमारी माधवी एकदम पहाड़ी खाना खिलायेगी आपको, है न, माधवी?"

मुस्कराती माधवी पर्दा मरोड़ती रही।

विमल ने देखा लड़की की पलकें आश्चर्यजनक रूप से लम्बी थीं और मुस्कराने पर दोनों गालों में गहरे गढ़े पड़ जाते थे। सुदर्शना नारी के गालों के गढ़े भी कभी तराई के खौफनाक दलदल के गढ़ों की भाँति ही सांघातिक होते हैं!

विमल उसी दलदल में धँस गया। लंच का प्रस्ताव टाल न सका।

o o

वह दूसरे दिन आया, पर खाने की मेज पर माधवी नहीं आयी। मामा ने ही कैफियत भी दी। जन्म से ही अल्मोड़ा के सरल नगरवासियों में रही है, कहती है मेज पर बैठकर छुरी-काँटे से नहीं खा पाती। चौके में ही खा रही है।

"सिली", आण्टी ने फिर तुरुप मारी, "मैंडोवी, मैंडोवी!" उन्होंने अपने मांसल कण्ठ के घण्टे-घड़ियाल सब बजा डाले, पर माधवी नहीं आयी।

खाना खाकर विमल पगडण्डी से उतर रहा था, तो एक चट्टान पर गठरी-सी बनी माधवी को देखकर ठिठक गया।

बँगले से इतनी दूर, अकेली गुमसुम माधवी ही तो थी।

"अरे, आप! अकेली यहाँ क्या कर रही हैं?" वह चट्टान के पास ही बैठ गया।

उसे अचानक अपने सम्मुख खड़ा देखकर, ध्यानमग्ना माधवी हड़बड़ा कर उठ गयी।

"मैं रोज इस चट्टान पर बैठकर, कालाढुगी की नयी सड़क को देखती हूँ, देखिए न कितनी सुन्दर लगती है, एकदम प्रश्न का चिह्न !"

वह हँसी, और उसकी निर्दोष हँसी आँखों से छलकती उसके पूरे चेहरे को भिगो गयी।

"खाना खा लिया ?" उसने पूछा।

"नहीं", विमल ने सामान्य रसिकता करने की चेष्टा की, "आप तो आयी नहीं, खाता कैसे ?"

माधवी, पहले बड़ी-बड़ी आँखें पूरे चेहरे पर फैलाकर, अबोध शिशु की भाँति उसे देखती रही, फिर रसिकता का सूत्र हाथ में आते ही ठठाकर हँस पड़ी, "देखिए न, मैं बार-बार भूल जाती हूँ कि काँटा किस हाथ में पकड़ा जाता है, इसी से नहीं आयी। चलूँ, आण्टी मैडोबी मैडोबी कर रही हैं", वह फिर हँसने लगी।

विमल आश्चर्यचकित होकर उन लाल प्रवाल-से अधरों की प्राकृतिक लालिमा देख रहा था। अपने जिले की कितनी ही अप्सराओं को वह नित्य-प्रति देखता रहता था, लिपस्टिक के जितने ही विचित्र शेड उतनी ही बहुरंगी मुस्कानें। किसी के रँगे अधर देखकर लगता श्वेतकुष्ठ हो गया है या जलकर पूरी चमड़ी ही बदरंग हो गयी है। क्या आधुनिका शृंगारिकाओं की रुचि का स्तर इतना गिर गया था ?

सौन्दर्य यह है, जिसे देखते ही पैर थरथराने लगते हैं, कण्ठ बाष्प-स्तम्भित हो जाता है। कैसी कटावदार आँखें हैं और क्या रंग पाया है लड़की ने ! वह जिलाधीश की पत्नी ही नहीं, किसी भी कमिश्नरी की नूरजहाँ बनायी जा सकती है।

जैसे भी हो इस रत्न को राजकोष में लाना ही होगा—सोच कर वह जी-जान से जुट गया।

जिस चट्टान पर बैठकर माधवी नयी सड़क देखती थी, उसे लुढ़का कर, पास के ही एक गहन वन में स्थापित कर दिया गया। ऊपर अखरोट

के वृक्ष की घनी छतरी ऐसे तनी थी कि दूर से तो क्या, पास से झाँकने पर भी कोई उस लतागुल्मोच्छादित चट्टान का ओर-छोर नहीं देख सकता था।

माधवी को बचपन से ही ऊँचे पेड़ों पर चढ़ने की दक्षता प्राप्त थी। अखरोट के ऊँचे पेड़ पर चढ़, वह दुष्टता से अपनी दोनों सुडौल टाँगें शून्य में लटका कर, दूसरी डाल से ऐसे झूलने लगती, जैसे सरकस के 'ट्रैपीज' का प्रदर्शन कर रही हो। पन्द्रह ही दिनों में वह वित्ते भर की लड़की उसके कितने निकट आ गयी थी। किस दक्षता से उसने अपने नवीन प्रेमी के हृदय-साम्राज्य का शासनभार ग्रहण कर लिया था। एक डाल से दूसरी पर चिड़िया-सी चहकती वह विमल को छेड़ने लगती, "अच्छा, बताइए तो, मिनी से आपकी शादी हो गयी, तो आपके बच्चों की आँखें मिनी जैसी होंगी नीली या आप जैसी—देखूं, कैसी आखें हैं आपकी ?" वह डालें चरमराती, विमल की आँखों का रंग देखने धम्म से नीचे कूद पड़ती, किन्तु रंग देखने के पहले ही विमल, उसे बाँहों में पीस कर उसकी सुचेष्टा व्यर्थ कर देता।

"मैंडोबी, देखो आण्टी तुम्हें पुकार रही हैं, लगता है आज फिर दूध गिरा आयी हो।" किन्तु आण्टी की चीख-पुकार का अब कोई महत्त्व नहीं था। विमल को कभी-कभी भोली माधवी के छलनाचातुर्य को देखकर दाँतों अँगुली दबानी पड़ती। नित्य वह मामी और मामा को घिस्सा देकर उपस्थित हो ही जाती, किन्तु विदेश से ट्राइपोज लेकर लौटे शिवेन्द्रमोहन ने दाल में काला देख लिया था।

कई बार मिनी को विमल के साथ अकेली छोड़ चुके थे, पर प्रस्ताव तो दूर, छोकरा चेष्टा भी नहीं कर रहा था। उधर माधवी का नाम सुनते ही उसकी आँखें चमकने लगती थीं। भोली माधवी भी जादू की छड़ी का-सा स्पर्श पाकर, सन्ध्या होते ही कहीं विलीन हो जाती थी। कभी कहती, 'हमारे कॉलेज की प्रिन्सिपल मिल गयी थीं, वही खींच ले गयीं।' कभी कहती, 'घूमने गयी थी।'

इधर छोकरी के चेहरे को एक अनोखी लालिमा ने रंग दिया था, विमल अपनी छुट्टियाँ अकारण ही बढ़ाता जा रहा था। क्या सचमुच ही उनकी सरला मातृहीना भानजी ने उनकी पुत्री को पछाड़ दिया था?

उनका अनुमान ठीक ही निकला।

जाने के कुछ दिन पूर्व विमल ने उनके सम्मुख अपना दुःसाहसी प्रस्ताव रख दिया—वह माधवी से ही विवाह करेगा।

"जोपी, तुम जानते हो तुम क्या कर रहे हो?" शिवेन्द्रमोहन बौखला कर, पूरे कमरे में चहलकदमी करने लगे, "मेरी ही मूर्खता है, तुम्हें पहले आगाह कर देना था, यह विवाह तुम नहीं कर सकते।"

"क्यों?" विमल का स्वर अधैर्य से झुँझला उठा, उसे अचानक वह ठिगना व्यक्ति महाकुत्सित लगने लगा।

"मेरी भानजी, पिछले वर्ष चार महीने पागलखाने में बिता चुकी है। पिछली बार परीक्षा देने के बाद ही इसका दिमाग फिर गया था, मैं ही इसे बिजली के झटके दिलवाने बरेली ले गया था। कभी भी मानसिक उत्तेजना, बिजली से दवाये गये इसके रोग को उभार सकती है। तब क्या करोगे?"

इस आकस्मिक तब के लिए विमल के पास कोई उत्तर नहीं था।

क्या उसकी सुकुमार प्रेमिका को सचमुच किसी निर्दयी ने बिजली के झटके से कँपाया होगा या पुत्री का सौभाग्य-द्वार बन्द होते देखे, ईर्ष्यावश बुड्ढा झूठ बोल रहा था?

विमल को, अखरोट की डाल से लटककर, नटिनी के-से छलबल का प्रदर्शन करनेवाली अपनी कौतुकप्रिया में भी उन्मादिनी का ही रूप दिखने लगा। कभी-कभी वह प्रेम की तरंगों में बहती, उसके गले को बाँहों में कसकर झूल पड़ती। "छोड़ पगली, छोड़", कह वह हँसते-हँसते अपने को छुड़ा लेता था, तब क्या पता था कि कभी इसी सम्बोधन का विषधर उसे सचमुच डसने दौड़ पड़ेगा।

"मेरी भानजी मुझे मिनी के समान ही प्यारी है, जोषी, पर थिंक ओवर इट यंग मैन", वे विमल का कन्धा थपथपाकर वोले, "जीवन भर का सवाल है।"

विना कुछ कहे, विमल सीटियाँ बजाता पगडण्डी फाँदने लगा। अचानक नित्य के अभ्यास से झाड़ी में छिपी दो दुवली वाँहों ने उसे भीतर खींच लिया। जंगली बिल्ली की भाँति, माधवी उससे लिपट गयी, "क्या कहा मामा ने ?"

विमल क्या कहता ?

चुपचाप उसे अविश्वासपूर्ण दृष्टि से देखता रहा। कैसा विरोधाभास था—माधवी और पागलपन ! हँसी की फुलझड़ियाँ छोड़ती, हँसने और हँसानेवाली गुलजार माधवी !

उन वड़ी-वड़ी कटोरे-सी आँखों में क्या कभी उन्माद का विष छलक सकता था ?

"मामा नाराज हैं माधवी !" उसने झुककर अपनी प्रेमिका का माथा चूमा, फिर दोनों हाथों में उसका चेहरा भरकर वड़ी देर तक ऐसे देखता रहा, जैसे दर्पण देख रहा है "बकने दो माधवी उन्हें, विवाह अवश्य होगा", कहकर वह चीते की-सी छलांग लगाकर चट्टान पर बैठ गया।

● ●

विवाह सचमुच ही सम्पन्न हो गया। अनेक तर्क-वितर्कों के व्यूह से वह जीता-जागता निकल ही आया। शिवेन्द्रमोहन के बँगले से ही माधवी का कन्यादान हुआ। कन्या के पिता, दरिद्र देहाती हेडमास्टर थे, किन्तु आण्टी ने यथासाध्य दहेज भी दिया। बरातियों में विमल के तीन-चार मित्र ही जुट पाये। श्वसुर को भावी पुत्रवधू के रोग का पूर्व का इतिहास ज्ञात हो चुका था, उन्होंने घोर आपत्ति भी की थी, किन्तु विमल के प्रेम का जिरहवख्तर, उनके क्रोध के बमगोले को साहस से झेलता गया।

मन-ही-मन शिवेन्द्रमोहन उस दुःसाहसी युवक की आन पर सौ-सौ

वार निछावर हो रहे थे। माधवी को श्वसुर-कुल का एक भी आभूषण नहीं मिला था। आण्टी ने ही अपना एक मोटा-सा विदेशी कंकण उसकी कलाई में डाल दिया था, फिर भी माधवी देवांगना-सी दमक रही थी। नयी वहू को लेकर विमल सन्ध्या की बस पकड़, दूसरे ही दिन अपने जिले में पहुँच गया था। उसी दिन, उसकी अफसरी बिरादरी के अलाँ-फलाँ साहब मेमसाहिबाओं का मेला-सा जुट गया। "जोषी नयी गुड़िया-सी दुल्हन लाया है!"

"हाऊ क्यूट!"

"हाऊ स्वीट!"

"ह्वाट ए चाइल्ड!" आदि के गुलदस्तों से वेचारी माधवी का दम घुट गया। हिन्दी तो कोई वोलती ही नहीं थीं! इण्टर पास करने पर भी माधवी अंग्रेजी का एक शब्द भी नहीं वोल पाती थी।

विवाह के चार महीने युगल-दम्पति ने पलक झपकाते विता लिये। माधवी की पतली कलाइयाँ भरने लगीं। पीले गालों पर सुर्खी आ गयी, गालों के गढ़े दिन-पर-दिन गहरे दिखने लगे। अली-कली से विंधा प्रेमी आये दिन दफ्तर से छुट्टी लेने लगा। एक दिन वह छुट्टी लेकर, घर पर ही डाक देख रहा था कि एक वादामी लिफाफा खोलते ही उछल पड़ा। पास ही खड़ी माधवी को उसने अपनी संशक्त वाँहों में पकड़ कर ऊँचा उठा लिया। "थ्री चियर्स फॉर मैंडोवी", वह वच्चों की भाँति किलक उठा "छिः छिः, क्या करते हैं, चपरासी आता होगा, छोड़िए। क्या विल्कुल शरम नहीं है आपको?" माधवी उतरने को छटपटाने लगी।

"आने दो चपरासी को, तुम्हारे श्रीचरणों की जय हो, मिसेज जोषी, हमारी वदली हो गयी.....।" उसने वड़े लाड़ से पत्नी को नीचे उतार कर मेज पर विठा दिया।

"कहाँ को हुई वदली?" माधवी ने उत्सुकता से लिफाफा लेने को हाथ वढ़ाया।

"नहीं, पहले बताओ क्या दोगी", दोनों हाथों से लिफाफा पीठ पीछे छिपाकर विमल ने याचक की दीनता से गिड़गिड़ाकर पूछा।

"छिः छिः, जब देखो तब वही", माधवी ने पास खिसकते पति को दूर ढकेल दिया।

"देखूँ, कहाँ को हुई बदली ?" लिफाफा छीनकर उसने देखा। बदली बरेली को हुई थी।

"हम तो ऊब गये थे डार्लिंग, इस उरई से" वह कहने लगा, "सिवाय पाँच सेर के एक-एक गुलाबजामुन के और कुछ मिलता है यहाँ ? जाओ, बढ़िया चाय बना लाओ तो इसी बात पर।"

○ ○

माधवी चाय बनाकर ले आयी। विमल ने नित्य की भाँति बिस्कुट का टुकड़ा जूठा कर उसे खिलाना चाहा, तो उसने आँसू भरी आँखें फेर लीं।

सन्ध्या को विमल ने कार में हवाखोरी का प्रस्ताव रखा, तो वह सिरदर्द का बहाना बनाकर लेट गयी।

क्या हो गया था माधवी को ?

रात को उसने सन्धि के एक-से-एक मधुर प्रस्ताव रखे, पर वह काठ-सी सतर देह लिये पड़ी रही। नित्य वह दिन चढ़ आने पर भी पति के गले में हाथ डाले सोती रहती थी। "माधवी, उठो सुबह हो गयी", वह उसे गुदगुदा कर जगाता, तब वह कई करवटें बदलने के बाद उठ पाती थी। पर अब वह न जाने कब उठकर चली जाती।

पत्नी के आश्चर्यजनक परिवर्तन से विमल मन-ही-मन आशंकित हो उठा। रात को भी कभी उसकी नींद टूट जाती, तो देखता माधवी कभी खिड़की के पास खड़ी शून्य दृष्टि से बाहर देख रही है, कभी पूरे कमरे में चहलकदमी करती होंठों-ही-होंठों में कुछ बड़बड़ा रही है।

"क्या तबीयत ठीक नहीं है माधवी ?" उसने एक दिन बड़े प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरकर पूछा।

"नींद नहीं आती", वह पति से चिपटकर अकारण ही सिसकने लगी।

विमल दूसरे ही दिन सिविलसर्जन को बुला लाया, सिविलसर्जन ने अनुभवी दृष्टि से माधवी को सिर से पैर तक देखा, रक्तचाप लिया और फिर विमल को एकान्त में खींच ले गया। क्या कभी पहले भी इस अनिद्रा का आभास मिला था विमल को ?

विवश होकर विमल ने रोग का पूर्व इतिहास बता दिया। जिस दिन से उसने बरेली की बदली का समाचार सुना, उसी दिन से वह बदल गयी थी।

"देखिए, मि० जोषी", मुसलमान सिविलसर्जन का सौम्य चेहरा अनुभव की झुर्रियों से भर गया। ऐसे कितने ही केस देख चुके थे वे। "बरेली के साथ बेचारी की पिछली जिन्दगी का पर्दा उठ गया है। एक बार वहाँ से लौटे मरीजों को यही 'एसायलम फोबिया' हो जाता है। हमदर्दी से ही फ़ुसला कर वहीं ले चलना होगा। एक बार बिजली के झटकों ने मर्ज को दबाया है, मुमकिन है फिर दबा दे, फिर अभी 'वायलेन्स' नहीं है, आप किसी ऐसी जगह का, जो इन्हें बेहद पसन्द है, नाम लेकर फुसला कर ले जाइए, मुझे उम्मीद है कि दो-तीन ही झटके बीमारी को झटक देंगे।"

● ●

उसी दिन विमल ने माधवी के विकट रोग को पराजित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। रात को माधवी शान्त बच्ची-सी उसकी छाती से लगी पड़ी रही। न जाने कब विमल को नींद आ गयी। आधी रात को खटखट का शब्द सुन, वह चौंककर उठ बैठा। देखा, माधवी पार्श्व से उठकर खिड़की की लोहे की छड़ों को मोड़ती-मरोड़ती, विवशता से हाँफ रही है।

विमल का कलेजा धड़कने लगा। "माधवी", वह एक छलांग लगाकर उसके पास खड़ा हो गया, "क्या कर रही हो ?"

अचानक कितनी बदल गयी वह।

फटी-फटी, भयत्रस्त आँखों से उसे देखती वह हँसने लगी, "इन छड़ों में कैद कर तुम मुझे वहीं भेजना चाहते हो ना?"

"कहाँ भेजना चाहता हूँ, माधवी ?"

"बरेली, पर मैं नहीं जाऊँगी, नहीं—नहीं, सौ बार नहीं !" उस नहीं, नहीं की रटन के साथ-साथ उसके माथे की नसें तन गयीं। मुट्ठियाँ बन्द कर वह कभी चीखती, कभी विवश करुण स्वर में नहीं-नहीं कहती, विमल के पैर पकड़ कर गिड़गिड़ाने लगती।

"बरेली कौन जा रहा है, माधवी ?" विमल ने खिड़की की छड़ों से उसके हाथ छुड़ाकर बड़े दुलार से अपने कन्धे पर लिये। हँसकर उसने पत्नी को खींचकर छाती से लगाकर पूछा, "नैनीताल चलोगी माधवी, उस चट्टान पर बैठकर तस्वीर खिचवाने का प्रोग्राम अभी कहाँ पूरा हुआ ?"

माधवी की आँखों का विद्रोह न जाने कहाँ उड़ गया। "सच कहते हो ? ले चलोगे मुझे नैनीताल !"

"हाँ, माधवी, तुम आज ही सामान रख लो, कल सुबह ही कार से चल देंगे।" बड़े उत्साह से गरम कपड़े सँजोती, नाश्ता बनाती, बच्ची-सी मचलती माधवी एक बार फिर पुरानी माधवी बन गयी।

कार चली तो उसने पति के कन्धे पर सिर रख कर आँखें मूंद लीं।

पागलखाने को पहले ही सूचना भेज दी गयी थी, विमल का एक मित्र, द्वार पर ही एक मोटी मर्दानी औरत को लिये उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह महिला सम्भवतः पागलखाने की परिचारिका थी, शायद उसके रुखे चेहरे को अमानवीय सहवास ने और भी डरावना बना दिया था। निर्विकार मुद्रा में वह कठोर निर्दयी थानेदार की भाँति माधवी को कार से उतारने बढ़ आयी।

माधवी संशय से चौकन्नी हो गयी।

"यह कौन है ?" उसने बच्ची के-से भोलेपन से अपनी तर्जनी का तमंचा उस कद्दावर औरत के सपाट सीने पर तान दिया।

"श्श''''", विमल ने फुसफुसाकर कहा, "मेरे मित्र और उनकी माँ

हैं, ये भी नैनीताल इसी गाड़ी से जायेंगे, तुम इनके साथ बैठो, कार खराब हो गयी है, ट्रेन से चलेंगे, मैं सामान उतरवाने कुली ले आता हूँ।"

आज्ञाकारिणी बालिका की भाँति माधवी उतर गयी। "जल्दी आना", उसने पति से हँसकर कहा और चुपचाप उस महिला के पीछे-पीछे चलने लगी। "कुली कुली", की हांक लगाता विमल, गले के गह्वर को बरबस घुटकता, काल्पनिक कुली-सन्धान में तेजी से बाहर चला आया।

बड़ी देर तक वह बाहर टहलता रहा, थोड़ी देर में मित्र उसे अधिकारी डॉक्टर के पास बुला ले गया। बड़े साहस से भीतर जाकर उसने लिखा-पढ़ी पूरी की, डॉक्टर उसी की उम्र का हँसमुख नौजवान था।

"क्या मैं अपनी पत्नी से एक बार मिल सकता हूँ ?" लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने काँपते कण्ठस्वर को संयत नहीं कर पाया।

डॉक्टर ने सदय दृष्टि से उसे देखा, "मेरी समझ में अभी न छेड़ें तो ठीक रहेगा। इट वोण्ट हेल्प मच !"

"क्या कर रही है माधवी ?" विमल प्रश्न पूछते ही स्वयं लजा गया।

"वही जो अक्सर ये लोग पहले दिन किया करते हैं। लोहे की छड़ पकड़े खड़ी है। मैंने कहा, बैठ जाइए मिसेज जोषी, कब तक खड़ी रहेंगी ? बोली, 'जब तक मेरे पति कुली लेकर न आ जायें।' आप चिन्तित न हों मि० जोषी, इन लोगों की भी अपनी अनोखी ही दुनिया है। वह सुनिए.... ।" डॉक्टर चुप हो गया। तीन-चार पागल मिलकर महाआनन्द से रामधुन गा रहे थे। बेसुरे तान-आलाप के साथ कव्वाली की-सी तालियाँ बज रही थीं।

"अब बताइये भला", डॉक्टर हँसकर बोला, "कौन कहेगा इन्हें कोई चिन्ता है ! पैर थकने पर मिसेज जोषी स्वयं बैठ जायेंगी।"

पर माधवी को विमल जानता है, वह रात भर छड़ पकड़े उसकी प्रतीक्षा में खड़ी रहेगी।

उस विचित्र प्रतीक्षालय में कुली लेकर विमल कब पहुँच पायेगा—कब ?

लाटी

लम्बे देवदारों का झुरमुट झुक्क-झुककर गेठिया सैनेटोरियम की वलैया-सी ले रहा था। काँच की खिड़कियों पर सूरज की आड़ी-तिरछी किरणें मरीजों के क्लांत चेहरों पर पड़कर उन्हें उठा देती थीं। मौत की नगरी के मुसाफिरों के रोग-जीर्ण पीले चेहरे सुबह की मीठी धूप में क्षणभर को खिल उठते। आज टी० बी० सिरदर्द और जुकाम-खाँसी की तरह आसानी से जीती जानेवाली बीमारी है, पर आज से कोई बीस साल पहले टी० बी० मृत्यु का जीवन्त आह्वान थी। भुवाली से भी अधिक माँग तब गेठिया सैनेटोरियम की थी। काठगोदाम से कुछ ही मील दूर एक ऊँचे पहाड़ पर गेठिया सैनेटोरियम के लाल-लाल छतों के बँगले छोटे-छोटे गुलदस्ते-से सजे थे।

तीन नम्बर के बँगले का दुगुना किराया देकर कप्तान जोशी स्वयं अपनी रोगिणी पत्नी के साथ रहता था। बँगले के बरामदे में पत्नी की पलंग के पास वह दिनभर आराम-कुर्सी डाले बैठा रहता, कभी अपने हाथों से टेम्परेचर चार्ट भरता और कभी समय देख-देखकर दवाइयाँ देता। पास के बँगलों के मरीज बड़ी तृष्णा और चाव से उनकी कबूतर-सी जोड़ी को देखते। ऐसी घातक बीमारी में कितने यत्न और स्नेह से सेवा करता था कप्तान जोशी! कभी उसके आनन्दी चेहरे पर झुँझलाहट या खीझ की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती। कभी वह अपने घुंघराले बालों को ब्रुश से सँवारता, बड़े ही मीठे स्वर में पहाड़ी झोड़े गाता जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी, बजती-रुनकती घंटियों की-सी छुनक

रहती। पहाड़ी मरीज विस्तरों से पुकार कर कहते, "वाह कप्तान साहव, एक और।" कप्तान अपनी पलंग से घुली-मिली सुन्दरी 'वानो' की ओर देख बड़े लाड़ से मुसकरा देता। वानो का गोरा चेहरा. वीमारी से एकदम पीला पड़ गया था और उसकी वड़ी-वड़ी आँखें और भी वड़ी-वड़ी हो गई थीं। शान्त तरल दृष्टि से वह कप्तान को दिन-रात टुकुर-टुकुर देखती रहती। विवाह के दो वर्ष पश्चात् यही उनका वास्तविक हनीमून था, जहाँ न अम्माँ, चाची और ताई की शासन की लगाम थी, न नई वहू के घूँघट की वन्दिश पिंजड़े की चिड़िया आजाद कर दी गई थी किन्तु अव उसके कमजोर डैनों में उड़ने की ताकत नहीं रही थी। कप्तान उसकी दुर्वल तप्त हथेली को अपनी कसरती मुट्ठी में वड़े प्यार से दवाकर सहलाने लगता तो उसकी सींक-सी कलाई की सोने कीचूड़ी सर-सर कर कोहनी तक सरक जाती।

● ●

उन दिनों गेठिया का डाक्टर एक अधेड़ स्विस था। एक दिन उसने कप्तान को अकेले में वुलाकर कहा, "कप्तान, तुम अभी जवान हो, यह वीमारी जवानी की भूखी है। मैं देख रहा हूँ, तुम जरा भी परहेज नहीं वरतते। मरीज की भूख को दवा से जीतना होगा, मुहव्वत से नहीं।"

क्षणभर को सव समझकर कप्तान लाल पड़ गया। उसके वूढ़े पिता के भी कई पत्र आ चुके थे, और माँ ने रो-रोकर चिट्ठियाँ डाल दी थीं, "मेरे दस-वीस पूत नहीं हैं वेटा, यह वीमारी सत्यानाशी है"; पर कप्तान पहले की ही तरह अलमस्त डोलता, कभी वानो के चिकने केशों को चूमता, कभी उसकी रेशमी पलकों को, कभी पास के प्राइवेट वार्ड की गुमानसिंह मालदार की गोल-मटोल पत्नी से मजाक करता।

सैनेटोरियम की मनहूस जिन्दगी के काले आकाश में रोवदार ठकुरानी ही एकमात्र द्युतिमान तारिका थी। भरे-भरे हाथ-पैर की, चिकने चेहरे पर सदा मुसकान विखेरती वह पूरे सैनेटोरियम की भाभी थी। उसके

स्वास्थ्य के दुर्गम दुर्ग में भी न जाने बीमारी का घुन किस अरक्षित छिद्र से प्रवेश पा गया था। टी० बी० लगने की पीड़ा से कराहती वह अपनी कदर्य गालियों का अक्षय भण्डार खोल देती। कभी लक्षपति श्वसुर को लक्ष्य बनाती, "हैं हमारे 'बुड़ज्यू' आधी कुमाऊँ के छत्रपति, पर बहू तिथांण (श्मशान) को जा रही है तो उनकी बला से! दुम उठाकर जिसे देखा, वही बदजात नर से मादा निकला।" "ए शाब्बास, क्या पंच के स्टैण्डर्ड का सेंस ऑफ ह्यमर है! भाभी, तबीयत बाग़-बाग़ कर दी।" कप्तान कहता। "एक मेरा खसम है साला। पी के धुत होगा किसी गोरी मेम को लेकर। दो महीने से हरामी झाँकने भी नहीं आया। दाढ़ीजारे की ठठरी उठेगी तो मज़ाल मैं भी सुहाग उतारूँ।" वह फिर कहती। क्यों भाभी, "क्यों कोस रही हो?" कप्तान हँसकर कहता।

प्रौढ़ा नैपाली भाभी की सदाबहार हँसी से खिलखिला आँखें छलक उठतीं, "शाबास है, कप्तान बेटा, तुझे देखकर मेरी छातियों में दूध उतर आता है। कैसी सेवा कर रहा है तू, और एक हमारे हैं कुतिया के जर्ने! मिले तो मूँछे उखाड़कर हरामी के मुँह में ठूँस दूँ।"

कप्तान हँसते-हँसते दुहरा हो जाता, मूँछे उखाड़कर मुँह में ठूँसने की बात कुछ ऐसी जम जाती कि वह भागकर बानो को सुना आता।

नैपाली भाभी के पति की असंख्य मोटरें अलमोड़ा-नैनीताल को घेरे रहतीं, चाय के बगीचों का अन्त नहीं था; किन्तु उनके वैभव ने पत्नी के प्रति प्रेम और मोह की बेड़ियाँ काट दी थीं। एक वर्ष से वे एक बार भी उसे देखने नहीं आये।

एक दिन कप्तान ने देखा, नैपाली भाभी की खाँसी बहुत ही बढ़ गई है, खाँसी का दौरा-सा पड़ा और कप्तान भागकर देखने गया तो देखा, रक्त के कुंड के बीच नैपाली भाभी की विराट् गेहुँआ देह निष्प्राण पड़ी थी। पति की मूँछों को उसके मुँह में ठूँसने का स्वप्न अधूरा ही छोड़कर भाभी चली गई थी।

कुछ दिन तक कप्तान उदास हो गया। वानों की बड़ा-बड़ी आँखों में भी उदासी के डोरे पड़ गये। जब ऐसी हँसती-खेलती लाल-लाल भाभी को मौत खींच ले गई त। हड्डियों का ढाँचा मात्र वानो तो हवा में उड़ती रुई का फाया थी। भाभी की मौत आकर जैसे उन दोनों के कान में कह गई थी कि जिन्दगी कुछ ही पलों की है। उन अमूल्य पलों के अमृतस्वरूपी रस की अन्तिम बूँद भी उन दोनों को छोड़ना मंजूर न था। नित्य निकट आती मौत ने वानो को चिड़चिड़ा बना दिया, पर जैसे इकलौते जिद्दी दुर्बल बालक की हर जिद को स्नेहमयी माता हँस-खेलकर झेल लेती है, वैसे ही कप्तान हठीली वानो की हर जिद पूरी करता। कभी वह खिली चाँदनी में बाहर जाने को मचलती तो वह अपने खाकी ओवरकोट में उसे लपेटकर अपनी देह से सटाये लम्बे चीड़ की छाया में बैठा रहता।

● ●

वानो को विवाह के ठीक तीसरे ही दिन छोड़कर उसे बसरा जाना पड़ा था। उन तीन दिनों में, उसकी खाकी वर्दी में कसे छह-फुटी शरीर और भूरी-भूरी मूँछों को देखकर, वानो उससे जितना ही कटी-कटी छिपी फिरती वह उसे पाने को उतना ही उन्मत्त हो उठता। उसे देखते ही वह अपनी मेहन्दी लगी नाजुक हथेलियों से लाज से गुलाबी चेहरा ढाँक लेती। दूसरे दिन बड़ी कठिनता से कप्तान उसके मुँह से धीमी फुसफुसाहट में उसका नाम कहलवा पाया था, बहुत धीमे स्वर में ही प्रणय-निवेदन की भूमिका बाँधनी पड़ी थी; क्योंकि पास के कमरे में ही ताऊजी लेटते थे।

"क्या नाम है तुम्हारा?" उसकी तीखी ठुड्डी उठाकर कप्तान ने पूछा था।

"वानो।" उसके पतले होंठ हिलकर रह गये।

"राम-राम, मुसलमानी नाम।" कप्तान ने हँसकर छेड़ दिया।

"सब यही कहते हैं, मैं क्या करूँ?" वानो की आँखें छलक उठीं।

"मैं तो तुम्हें छेड़ रहा था, कितना प्यारा नाम है! पहाड़ी नाम भी

कोई नाम होते हैं भला, सरुली, परुली, रमा, खष्टी ।" वह बोला, "कितने साल की हो तुम, वानो ?"

"इस आषाढ़ में मुझे सोलहवाँ लगेगा ।" वानो ऐसे उत्साह से बोली जैसे उसने आधी जिन्दगी पार कर ली हो । कप्तान का दिल भर आया, अपनी खिलौने-सी वहू को उसने खींचकर हृदय से लगा लिया । पहले वह अपने ताऊ और पिता से सख्त नाराज हो गया था, कहाँ वह ठसकेदार बाँका कप्तान और कहाँ हाईस्कूल पास छोकरी को पल्ले बाँधकर रख दिया ! पर बालिका वानो की सरल आँखों का जादू उस पर चल गया । तीसरे दिन ही उसे बसरा जाना था । कप्तान वानो से विदा लेने गया तो वह कोने में बैठी छालियाँ कतर रही थी, उसकी पलकें भीगी थीं और पति की आहट पाकर उसने घुटनों में सिर डाल दिया । झट से झुककर कप्तान ने उसका माथा चूम लिया । उसका गला भर आया ।

तीन दिन की ताजी सुन्दरी नववधू को इस तरह छोड़कर जाना कप्तान को दुश्मन की गोला-बारी से भी भयंकर लगा । इसके बाद दो वर्ष तक कप्तान युद्ध की विभीषिका में भटक गया । वर्मा और बसरा के जंगलों में भटक-भटककर उसके साथी वहशी बन गये थे । गन्दे अश्लील मज़ाक करते । फ़ौजी अफ़सरों में कप्तान ही सबसे छोटी उम्र का था । वर्मा की युद्ध से स्तब्ध सड़कों पर भी चपल बर्मी रमणियों के कुटिल कटाक्षों का अभाव नहीं था, फिर भी कप्तान अपनी जवानी को दाँतों के बीच जीभ-सी बचाता सेंत गया ।

दो साल बाद घर पहुँचा तो दुनिया बदल चुकी थी । उन दो वर्षों में वानो ने सात-सात ननदों के ताने सुने, भतीजों के कपड़े धोए, ससुर के होज बिने, पहाड़ की नुकीली छतों पर पाँच-पाँच सेर उड़द पीसकर बड़ियाँ तोड़ीं । कभी सुनती, उसके पति को जापानियों ने कैद कर लिया है, अब वह कभी नहीं लौटेगा । सास और चचिया सास के व्यंग्य-बाण उसे छेद देते, वह घुलती गई और एक दिन क्षय का तक्षक कुंडली मारकर उसकी नन्हीं-सी छाती पर बैठ गया । उसे सैनेटोरियम भेज

दिया गया था। दूसरे ही दिन कप्तान बानो को देखने चल दिया तो घरवालों के चेहरे लटक गये।

गेठिया पहुँचा और एक प्राइवेट वार्ड के बरामदे में लेटी बानो को देखकर उसका कलेजा उछलकर मुँह को आ गया। दो वर्षों में बानो घिसकर और भी बच्ची बन गई थी। कप्तान को देखकर उसकी तरल आँखें खुली ही रह गईं, फिर आँसू टपकने लगे। कहने और कैफियत देने की कोई गुंजाइश नहीं रही। बानो के बहते आँसुओं की धारा ने दो साल के सारे उलाहने सुना दिये। दोनों ने समझ लिया कि मिलन के वे क्षण मुट्ठीभर ही रह गये थे।

● ●

उन दिनों सैनेटोरियम में एक अत्यन्त क्रूर नियम था। रोगियों को उनकी अन्तिम अवस्था जानकर उन्हें घर भेज दिया जाता। सैनेटोरियम में मृत्यु का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था। नैपाली भाभी की मृत्यु के बाद कप्तान और बानो मातम में डूब गये, पर चौथे दिन वे फिर हनीमून मनाने लगे। अपनी साड़ियों का बक्स निकलवाकर बानो ने कई साड़ियों पर इस्त्री करवायी। बड़ी देर तक दोनों ने पेशेन्स खेला, पर शाम होते ही बानो मुरझाने लगी। दिनभर उसे दस्त आ रहे थे और टी० बी० के मरीज को दस्त आना खतरे से खाली नहीं होता। डॉक्टर दलाल आया, उसने कप्तान को बाहर ले जाकर कमरा खाली करवाने का नोटिस दे दिया, "कल ही ले जाना होगा, आई गिव हर टू टु-थ्री डेज। इससे ज्यादा नहीं बचेगी।"

कप्तान का चेहरा सफेद पड़ गया। घर जाने का प्रश्न नहीं उठता था, तीन रसभरे महीनों की मीठी धरोहर को वह घर की कड़वाहट से अछूता ही रखना चाहता था। भुवाली के पास ही एक चाय की दुकान के नीचे साफ-सुथरा कमरा, मृत्यु का पासपोर्ट पाये बानो—जैसे अभागे मरीजों के लिए सदा बाँह फैलाये खुला रहता था।

"सैनेटोरियम छोड़कर हम कल दूसरी जगह चलेंगे, वानो। यहाँ साली तवीयत वोर हो गई है।" वड़े उत्साह और आनन्द से कप्तान ने भूमिका बाँधी, पर वानो का चेहरा फक पड़ गया। वह समझ गई कि आज उसे भी नोटिस दे दिया गया है।

वड़ी रात तक कप्तान उसके गालों के पास अपना चेहरा ले जाकर गुनगुनाता रहा, "वानो, मेरी वन्नी, वन्नू!" और फिर जब वानो को नींद आ गई तो वह भी अपने पलंग पर जाकर सो गया।

सुबह उठा तो वानो पलंग पर नहीं थी। सोचा, घिसटती वाथरूम तक चली गई होगी। जोश आने पर वह काफी दूर तक चल लेती थी। बड़ी देर तक नहीं लौटी तो वह घबराकर उठा। वानो कहीं नहीं थी। भागकर वह मरीजों के पास गया, डॉक्टर आया, नर्सें आईं, चौकीदार आया पर वानो कहीं नहीं थी। सैनेटोरियम में आज पहली बार ऐसी अनहोनी घटना घटी थी।

दूसरे दिन बड़ी दूर रथी घाट पर वानो की साड़ी मिली थी। मृत्यु के आने से पूर्व वह अभागी स्वयं ही भागकर मृत्यु से मिलने चली गई थी।

इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वानो ने डूबकर आत्महत्या कर ली थी। शोक से पागल होकर कप्तान उसकी साड़ी को छाती से चिपटाए फिरता रहा; किन्तु मर्द की जवानी जाड़े की भयंकर लम्बी रात के समान है जो काटे नहीं कटती। एक ही साल में उसका फिर विवाह हुआ, अब के ताऊ और पिता ने खूब ठोंक-पीटकर बहू छाँटी। ऊँचीअगली, गोरी और एम० ए० पास। कप्तान की नई पत्नी के पिता थे मेजर जनरल। चालीस तमगे लगाकर उन्होंने कन्यादान किया तो कप्तान बेचारा सहमकर रह गया। प्रभा इकलौती लड़की थी, फिर दुजू की बीवी थी जो बादशाह की घोड़ी से कम नहीं होती। उसके सौ-सौ नखरे उठाता कप्तान हँसना, खिलखिलाना और मौज-मस्तियाँ सब भूलकर रह गया।

चार साल में कप्तान को दो बेटे और एक बेटी देकर प्रभा ने घन-

लाटी

संचय की ओर ध्यान लगाया। सोलह सालों में कप्तान के बैंक बैलेंस में रुपयों और नोटों की मोटी तह जमाकर दोनों नैनीताल घूमने आये। कप्तान की थोड़ी-सी तोंद निकल आई थी, चेहरा अभी भी मस्ताना था, पर मूँछों में अब वह ऐंठ नहीं रह गई थी, कनपटी के आस-पास बाल सफेद हो चले थे। दो जवान लड़कों को कमीशन मिल गया था, बेटी मिरंडा हाउस में पढ़ रही थी।

नैनीताल आकर कप्तान के दिल में एक टीस-सी उठी। काठगोदाम से चलकर गेठिया दिखा और वह गुमसुम-सा हो गया।

नैनीताल के ग्राण्ड होटल में दोनों टिके। प्रभा बोली, "चलो डार्लिंग, पहाड़ का इंटीरियर घूमा जाय। भुवाली चलें।" चिकन सैंडविच, रोस्ट मुर्ग पैक करवा कर उसने अपनी फियट गाड़ी भुवाली की ओर छोड़ी। बगल में दामी चंदेरी साड़ी और बिना बाहों के ब्लाउज से अपने मांसल शरीर की गोरी दमक बिखेरती प्रभा बैठी। भुवाली की एक छोटी-सी दुकान देखकर प्रभा ने गाड़ी रुकवा दी, "इसी दुकान में आज एकदम पहाड़ी स्टाइल से कलई के गिलास में चाय पिएँगे हनी।" वह बोली।

कप्तान अब मेजर था, "मेजर की डिग्निटी कहाँ जाएगी?" वह बोला।

"भाड़ में!" कहकर प्रभा अपनी पेंसिल हील की जूतियाँ चटकाती दुकान में घुस गई।

काठ की एक बेंच धुएँ और कालिख से काली पड़ गई थी, उसी को झाड़कर दोनों बैठ गये। पहले कुछ देर को पहाड़ी दुकानदार भौंचक-सा रह गया। लकड़ी के धुएँ से एकदम काली केटली में चाय उबल रही थी।

"खूब गर्म दो गिलास चाय लाओ, प्रधान।" मेजर ने पहाड़ी में कहा और दुकानदार का मुँह खुला ही रह गया। ऐसी अंग्रेजी में बोलने वाला अनोखा जोड़ा पहाड़ी कैसे हो गया, वह सोचने लगा।

वह चाय बना ही रहा था कि अलख-अलख करते वैष्णवियों के दल

नें भीतर घुसकर दुकान घेर ली, "ओ हो गरु, भल द्दा भल द्दा।" कहकर वैष्णवियों की हेड ने वड़े प्रभुत्वपूर्ण स्वर में सोलह गिलास चाय का आर्डर दे दिया। हेड वैष्णवी वड़ी ही मुखर और मर्दानी थी, इसी से शायद मर्दाने स्वर में वोल भी रही थी, "सोचा, वामण ज्यू की ही दुकान की चाय छोरियों को पिलाऊँगी, आज एकादशी है।"

"क्यों नहीं! क्यों नहीं!" दुकानदार वोला, "अरे लाटी भी आई है?"

"अरे, कहाँ जाएगी अभागी?" वैष्णवी ने कहा। प्रभा और मेजर की दृष्टि एक साथ ही लाटी पर पड़ी।

कुत्सित वूढ़ी अधेड़ वैष्णवियों के वीच देवांगना-सी सुन्दरी लाटी अपनी दाड़िम-सी दन्तपंक्ति दिखाकर हँस दी। मेजर का शरीर सुन्न पड़ गया, स्वस्थ होकर जैसे साक्षात् वानो ही वैठी थी। गालों पर स्वास्थ्य की लालिमा थी, कान तक फैली आँखों में वही तरल स्निग्धता थी और गूंगी जिह्वा का गूंगापन चेहरे पर फैलकर उसे और भी भोला वना रहा था।

"हाय, क्या यह गूंगी है? माई ह्वाट ब्यूटी!" प्रभा वोली।

"हाँ सरकार, यह लाटी है।" दुकानदार ने कहा और मेजर के दिल पर आ गिरी भारी पत्थर की चट्टान उठ गई।

"क्या नाम है जी इसका?" प्रभा मुग्ध होकर लाटी को ही देख रही थी।

"नाम जो होगा, वह तो वह गया मीमशाव, अव तो लाटी ही इसका नाम है।" हेड वैष्णवी ने कहा, "हमारे गुरु महाराज को इसकी देह नदी में तैरती मिली। जीभड़ी इसकी कटकर कहीं गिर गई थी। राम जाने कौन था वह! गले में चरयो (मंगल-सूत्र) था, ब्याह हो गया होगा। फिर हमारा गुरु महाराज इसको गुरुमंतर दिया। भयंकर 'छे रोग' था। एक-एक सेर खून उगलता था पर गुरु का शरण में आया तो सब रोग-सोग ठीक हो गया इसका। लाटी, जीभ दिखा।"

घुं-घुं कर लाटी ने भुवनमोहिनी हँसी हँस दी, जीभ नहीं दिखाई।

"कुछ नहीं समझती साली। बस खाती है ढाई सेर, सब भूल गया, हमारा आर्डर भी नहीं मानता।" असंतुष्ट स्वर में मर्दानी वैष्णवी बोली।

"ओह, माई गॉड ! अपने आदमी को भी भूल गई क्या ?" प्रभा बोली।

"जो था सो था, इसको, कुछ याद नहीं। खाली "फिक-फिक कर हँसती है हरामी। अब परभू इसका मालिक और परभू इसका सहारा है। हाँ, गुरु, कितना पैसा हुआ ?"

हेड वैष्णवी ने पैसे चुकाए और उसका दल अलख बजाता उठ खड़ा हुआ। लाटी बैठी ही रही, मेजर एकटक उसे देख रहा था। यह वही बानो थी जिसे डॉक्टर दलाल और कक्कड़ जैसे प्रसिद्ध विशेषज्ञों की मृत्युंजय औषधियाँ भी स्वस्थ नहीं कर सकी थीं।

"उठ साली लाटी !" हेड वैष्णवी ने हल्की-सी ठोकर से लाटी को उठाया। एक बार फिर अपनी मधुर हँसी से मेजर का हृदय बींधकर लाटी उठी और दल के पीछे-पीछे चल दी। काश उसके भोले चेहरे से गाल सटाकर मेजर कह सकता, "मेरी बानो, बन्नी, बन्नू !" शायद उसको गूँगी जबान के नीचे दबी उसकी गूँगी पिछली जिन्दगी बोल उठती।

पर मेजर, जिन्दगी की दौड़ में बहुत आगे निकल आया था, पीछे लौटकर बिछुड़े को लाना सबसे बड़ी मूर्खता होती। दो जवान बेटे और बेटी, राष्ट्रपति के सहभोजों में चमकती उसकी शानदार दूसरी बीवी, गरीब गूँगी लाटी का आना कैसे सह सकते ?

"उठो डार्लिंग, लंच गर्म पानी में करेंगे।" प्रभा ने कहा और मेजर उठ खड़ा हुआ। कुछ ही पलों में वह बूढ़ा और खोखला हो गया था।

बानो मर गई थी। अब तो वह लाटी थी। परभू अब उसका मालिक और परभू ही उसका सहारा था।

•

खुदा हाफिज

माघी विभावरी में ठिठुरता नैनीताल, अपने नग्न अंग सिकोड़े, किसी दरिद्र शिशु की भाँति सो रहा था। शुक्लपक्ष के अकृपण औदार्य से, झक-झक चमक रहा चीनापीक, मुझे निर्जीव बाँहें फैलाये पड़े, किसी पहाड़ी पट्टू के, विराट भूरे खुरदुरे कोट-सा ही लगा। चाँदनी का एक चौकोर टुकड़ा, देखते ही देखते, रामजे अस्पताल की रक्तवर्णी छत पर फिसलता, ताल के नीलाभ जल में डुबकियाँ लेने लगा था। अयारपाटा के इक्के-दुक्के बँगलों पर चमकती विजलियों की रोशनी कॉर्वेट के बँगले की अबीरी छत, कालाढुंगी की नवनिर्मित नवेली सड़क के घुमावदार घेर, मुझसे वर्षों पश्चात् जैसे विछुड़े इष्टमित्रों की आत्मीयता से, गलबँहिया देकर मिल रहे थे।

किन्तु, मध्य रात्रि की उस निस्तब्धता में, मैं जिस मधुर आह्वान की डोर से बँधी, बाहर आकर खड़ी हुई थी, वह मीठी खनक, सहसा किस शून्य में खो गई थी ? 'खुदा हाफिज' कहता, वही परिचित किसी किशोर कंठ-सा स्वरभंग और बचकानी हँसी।

ठीक इसी पिछली चतुर्दशी को मैंने उसे पहली बार देखा था। लखनऊ का वह अस्पताल भी, उस दिन ऐसी ही उज्ज्वल चाँदनी में नहा उठा था। दुर्भाग्य से, आज तक कई अस्पताल देख चुकी हूँ और कई सैनेटोरियम, किन्तु दो ही अरण्यों की स्मृतियाँ मुझे सहमा पाई हैं, एक अल्मोड़ा सैनेटोरियम की और दूसरे लखनऊ के इस अस्पताल की। लगता है, ये दोनों मृत्यु के प्रिय पिकनिक स्पॉट हैं। अठारह दिनों तक, उस अस्पताल में रहने की दुःसह विवशता के बीच प्रायः नित्य ही मैंने काल का कलेवा देखा है। कभी जनरल वार्ड के बरामदे में, विलाप का गगनभेदी आरोह, आत्मीय स्वजनों की भीड़ के बीच, किसी संयमी कर्त्तव्यपरायण कंठस्वर में दिया गया, लाशगाड़ी बुलाने का आदेश, डॉक्टर-नर्सों की पदचाप और फिर थोड़ी देर बाद कोने में पटका गया गद्दा, लाल कम्बल, हवा में उड़ते रूई के फाये, निर्ममता से घसीटा जा रहा खाली पलंग, किसी चलती

फिल्मी धुन गुनगुना कर सम्पन्न की गई कमरे की धुलाई और क्षणभर पूर्व के महाप्रस्थान के साक्षी, धरा पर पड़े एक-आध फूल और कुश के तिनके। एक लाशगाड़ी के विदा होते ही, कभी-कभी दूसरी आकर खड़ी हो जाती। उन अभिशप्त वाहनों के विराट कलेवरों पर अंकित पंक्तियाँ देख कर कभी-कभी हँसी भी आती—किसी में दोनों ओर पंख फैलाए दो देवदूतों के हाथ में थमी लकड़ी की पाटी में लिखा गया, किसी रससिद्ध द्वारा प्रदत्त नाम "स्वर्गीय वाहन" और इसके नीचे ही सुस्पष्ट अक्षरों में अंकित, वाहन की विशद प्रशस्ति। 'यह गाड़ी हमेशा रोशनुद्दौला पार्क के सामने धुली-धुलाई खड़ी रहती है, कृपया एक वार आजमाएँ और फिर चटकीले नीले रंग में झकझक चमकती एक-दूसरी लाशगाड़ी, जिसमें चालक की खिड़की के पास लिखे सफेद पेंट की दूसरी पंक्ति पढ़ने से पूर्व ही, सदा मेरा रिक्शा तेजी से आगे निकल जाता था। उसकी पहली पंक्ति को, मैं आज भी जैसे सामने लिखी देख रही हूँ।

"आरजू यही है, कब्र वहीं पै वने"—लम्बी कतार में फैले, अपने प्रतिवेशी मरीजों के, साध्य-असाध्य रोगों का परिचय भी मुझे तव कंठस्थ हो गया था। पन्द्रह नम्बर का, लम्बोतरे चेहरे वाला वह सांवला युवक, जिसे आसन्न मृत्यु भय ने, गजव का दुःसाहसी बना दिया था। वह मिल्क डायट पर है, यह मैं उसकी ट्रे देख कर ही जान गई थी, किन्तु डॉक्टर-नर्सों की दृष्टि बचा, वह किसी पैंतरेवाज नट की फुर्ती से, किसी भी खोमचे वाले को देखते ही, कँटीले तारों के व्यवधान फाँदता, दोने के दोने साफ कर जाता और फिर रात भर कराहता रहता। फिर उन्नीस नम्बर की वह रोगिणी, जिसकी लोकप्रियता का अन्त नहीं था। उससे मिलने वालों का ताँता, सुबह आठ बजे से आरम्भ हो जाता और वड़ी रात तक, लगा ही रहता। धूप निकलते ही उसका वसुधैव कुटुम्ब, उसकी पहिया लगी पलंग को, धूप में खिसका कर, वरामदे में ले आता और फिर आरम्भ होता उनका मूंगफली पर्व। देखते ही देखते सेरों मूंगफलियाँ साफ हो जातीं, साथ में ट्रांजिस्टर का गर्जन, हँसी-ठिठोली उस मनहूस अस्पताली वातावरण को

गुलजार देते। जब मैंने पहली बार, उस रोगिणी को देखा, उसके भीमोदर की, भयावह रूप से विस्तृत परिधि ने, मुझे सहमा दिया था। लगता था, उस रुग्ण शरीर के किसी छिद्र से, साइकिल पम्प से किसी ने उसमें इतनी हवा भर दी है कि एक बार और पम्प मारते ही वह किसी अबोध शिशु द्वारा निरन्तर फुलाए जा रहे गुब्बारे की ही भाँति, फट्ट से फूट जायेगी। गोल तमतमाया पृथुल चेहरा, मधुमक्खी-दंश से सूजी-सी आँखें और फूले कपोलों में कहीं खो गई नासिका। चेतनाहीन सूजे हाथों को उठा-उठा कर बड़ी बहू उसे कार्डिगन पहनाती, हैंडल घुमा कर, पलंग उठा मँझली, परिपाटी से सास का जूड़ा बना, क्रीम पाउडर लगा माँग में सेंदुर भरती, छोटी, सास की अचल देह में यत्र-तत्र चिमटी काट, निर्विकार चेहरे की ओर देख कर कहती—"उँह, अभी भी कोमा में हैं।" उसके परम सन्तुष्ट कंठस्वर को मुझे लगता, जैसे सास की इसी कोमावस्था की उसे कामना है। मधुमेह का वह भयानक ताण्डव नर्त्तन, मैंने निरन्तर दस दिन तक देखा था, फिर एक दिन रोगिणी को, मृत्यु ने मुक्ति दे दी। उसी दिन, वह कमरा फिर आबाद हो गया था। इस बार किसी मन्त्री-पत्नी ने, अपनी सामान्य-सी व्याधि के लिए, उस कमरे को धन्य किया था, इसी से उन के आते ही वहाँ किसी विवाहोत्सव के-से अदृश्य शामियाने टँग गये थे। लगता था मन्त्री महोदय का सम्पर्क, निर्माण-विभाग से था। पौ फटते ही, जिस तत्परता से कर्मचारी, वहाँ सामान्य-सी टूट-फूट को ठीक करवाते रहते, मुझे लगता कि यदि कहीं मन्त्री-पत्नी को कुछ हो गया तो, पलक झपकाते ही वे स्वामिभक्त अनुचर, एक दर्शनीय ताजमहल भी खड़ा कर देंगे। किन्तु, ऐसा कुछ हुआ नहीं। अपनी सामान्य-सी व्याधि के, असामान्य उपचार से सहम कर ही, शायद उन्होंने समयसे पूर्व ही कमरा खाली कर दिया। अपनी मृत्युंजयी शक्ति के प्रदर्शन में, डॉक्टरों में एक होड़-सी लग गई थी, फलस्वरूप एक से एक प्रभावशाली सुइयों ने, रोगिणी को भयत्रस्त कर, तीसरे ही दिन रोगमुक्त कर दिया। अब उस कमरे में, एक महाक्रोधी चिड़चिड़ा बूढ़ा आ गया था, जिसके

पेट में किसी नवनिर्मित नाभिकुण्ड में लगाई गई रबर की नली, क्रमशः जलविन्दुनिपात से, हाथ में पकड़ी गई शीशी को छलकाती रहती और शीशीधारी वह दुर्वासा दिन भर पूरे अस्पताल की परिक्रमा कर, रात भर कभी अस्पताल के पूरे स्टाफ को, कभी अपनी पत्नी को ऐसी-ऐसी मौलिक गालियाँ देता रहता, कि कान में अँगुली धरनी पड़ती। उसकी सहिष्णु वृद्धा सहचरी, वहरी थी इसी से पति का स्वर, आवश्यकता से कुछ ऊँचा ही रहता—"ससुरी, कैसा उल्टा जवाव दे रही है, लगता है तेरे मुँह में बवासीर है।" मैं सुन कर सिहर उठती। मुझे लगने लगा था, कि अस्पताल में रोगी बन कर रहने की विवशता से भी जटिल विवशता होती है, रोगी की सहचरी बन कर रहने की। अपने उस खोखले अकर्मण्य अस्तित्व की अल्पज्ञता, मुझे रह-रह कर झकझोर उठती। जिधर देखो, उधर दुःख, यन्त्रणा, मृत्युभय और सर्वोपरि मानव की असहाय, करुण विवशता। मृत्यु आती और चिकित्सा-विज्ञान की नवीनतम मृत्युंजयी ओषधियाँ ताक पर धरी रह जातीं। प्लेटफार्म पर, एक पल भी अधिक न रुकने वाली डाकगाड़ी की तत्परता से ही वह आती, और साथ ले जाने वाले यात्री को ले कर धड़धड़ाती निकल जाती। तेरह नम्बर की रोगिणी का भी, उस रात को शायद टिकट कट चुका था, दिन भर उसे कनवल्शन्स हो रहे थे। मैं मना रही थी कि रात भर उसे कुछ न हो। एक तो अस्पताल की विमर्ष निस्तब्धता, उस पर ब्लैकआउट का दमघोंट अन्धकार। कभी-कभी वीच में, सायरन की कर्णकटु चीत्कार, अन्धकार को भेदती अस्पताल की दीवारें कँपा देती और आपरेशन थिएटर की तेज बत्ती भी दप से बुझ जाती। कहीं श्मशान में गिद्धिनी के विलाप का प्रसंग पड़ा था, उस सायरन की हिस्टीरिकल चीख से, निश्चय ही उस विलाप का स्वर कम भयावना होता होगा। उस रात को, मुझे अचानक फोन करने जाना पड़ा था। किसी तरह अन्धकार से समझौता करती, मैं तेरह नम्बर तक पहुँची तो रोगिणी कराह रही थी। नित्य के उस परिचित करुण स्वर को अब मैं खूब पहचानने लगी थी। उसके साँवले रंग को, घातक रोग ने इधर

एक अनुपम लुनाई से रंग दिया था। बड़ी-बड़ी आँखों की वह तरल करुण दृष्टि जो कभी जाते-आते, प्रत्येक आवागमन का लेखा-जोखा रखती थी अब उदासीन हो गई थी। सिरहाने बैठा, उदास चेहरे वाला उसका तरुण पति अब चिर-वियोग की आशंका से शंकित हो कर, सामान्य-सी पदचाप से ही चौंक उठता। पिता के साथ सट कर बैठी, रोगिणी की एकमात्र शान्त कन्या के सात-आठ वर्ष के चेहरे को, माँ की असाध्य बीमारी ने कुछ ही दिनों में, किसी अनुभवी प्रौढ़ा का गम्भीर चेहरा बना कर, बदरंग कर दिया था। रोगिणी के रोग का परिचय, मुझे हृदयहीन वार्डबाय के चीखते कंठस्वर में, कुछ ही दिन पूर्व दिया था। भरे दूध की बाल्टी और मग लिये, वह दूध बाँटता, ठीक उसी के कमरे के बाहर चीख रहा था—"अजी, तेरह नम्बर को दूध दिया जाएगा क्या ?"

"किसको ?" बरामदे के दूसरे कोने से, उससे भी तीखी स्वरलहरी ने, प्रश्न का तीर छोड़ा था—"अजी तेरह नम्बर कांसर........"

और बिस्तर पर पड़ी तेरह नम्बर की उस रोगिणी को निष्पलक स्तब्ध विवशता से स्वयं अपने घातक रोग से हाथ मिलाते मैंने भी देखा था। धीरे-धीरे ड्यूटी-रूम की ओर बढ़ी। मेट्रन अपनी पुष्ट जंघाओं से पूरा हीटर घेरे गहरी निद्रा में निमग्न थी, उसी के अगल-बगल दो कुर्सियों में केरलनिवासिनी दो नर्सें भी ऊँघ रही थीं। एक की श्वेत कलफ की गई टोपी का किरीट काँटे से उलझ कर उसके गोलाकार जूड़े पर अटक गया था, दूसरी दोनों हाथ छाती पर धरे, ऐसी लग रही थी जैसे किसी प्रार्थना में डूबी हो। मेरी पदचाप से वही पहले जगी। "क्या है ?" उसने कुछ रूखे स्वर में पूछा। दूसरी उसका प्रश्न सुन कर नींद ही में बड़बड़ाने लगी—"कौन है म्यूरियल ? अरी वही चार नम्बर वाली होगी, रोज फोन के लिए परेशान करती है।" "चाबी दीजिए", मैंने भी कुछ रूखे स्वर में कहा—"मैं चार नम्बर वाली नहीं हूँ, मुझे जरूरी फोन करना है।"

"फोन खराब है, इमरजैन्सी से कर लीजिए !" जगी नर्स ने फिर अपनी कछुए-सी गर्दन अपने विराट वक्षस्थल में समेट ली और अपने केरल के सपनों में खो गई।

मैं झुंझला कर बाहर निकल आई। इमरजैन्सी से फोन करने के लिए डेढ़गजी कोरीडोर पार करनी होगी, यह मैं जानती थी। चतुर्दशी की चन्द्रिका गहन अमराई से फिसलती अस्पताल के गुलाबों पर थिरक रही थी। शाल को कानों से लपेट कर मैं आगे बढ़ी और मुझे लगा मैं अकेली

नहीं हूँ। रेशमी सरसराहट से मैं चौंक कर मुड़ी। एक लम्बी, पतली युवती बुर्के का नकाब पलट मेरी ओर देख कर ऐसे मुसकरा रही थी जैसे मुझे वर्षों से जानती हो। पर कैसा आश्चर्य ! मैंने तो इसे पहले कभी नहीं देखा था !

वह फिर हँसी और मैं कह नहीं सकती कि मध्य रात्रि की नीरवता में ही उस चेहरे को उतना सफेद वना दिया था या उसका रंग ही वैसा दूधिया था। जो भी हो, ऐसी सौन्दर्य रूपरेखा, जो कभी केवल असित हाल्दार या अवनीन्द्रनाथ की तूलिका ही अंकित कर सकती थी, मेरे सम्मुख साकार खड़ी मुसकरा रही थी। उस नख-शिख का वर्णन करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, यदि किसी ने अवनीन्द्रनाथ-अंकित 'जेवुन्निसा' देखी है, तो सम्भव है वे उस रूपशिखा को कुछ अंश में कल्पना द्वारा ग्राह्य कर सकते हैं। ऐसी तीखी नाक और ऐसे नुकीले तेवर विधाता शायद मूड़ आने पर ही गढ़ता है। पान की लालिमा से रंजित ओष्ठाधरों की जर्दा सुवासित लपट मेरे पास सरसरा कर चली आई।

"अजीब हालत है इस अस्पताल की !" वह वीड़ा गुलगुलाती भरे-भरे स्वर में कहने लगी—"न जाने ये फोन गुलदस्ते-सा क्यों सजा धरा रहता है। जब देखो तब खराब ! मुआ बीस-बीस पैसे डकार हमेशा गूँगा बना रहता है !" वात उसने ठीक ही कही थी। मेरे भी न जाने कितने वीस पैसे वह आज तक डकार, गूँगा ही बना, मुझे अँगूठा दिखाता रहा था। हीना की मीठी खुशबू से मेरी स्मृति के नथुने फड़कने लगे। वर्षों पूर्व रामपुर के ऐसे कितने ही खुशबूदार रेशमी बुर्कों की स्मृति मुझे विह्वल कर उठी। मुहम्मदअली पेशकार साहव की सुन्दरी बेगम के काले रेशमी बर्के की ऐसी ही सुवास, फिर नवाव साहव की राजमाता हुजूरे आला के रेशमी बुर्के की ऐसी ही परिचित सुगन्ध और भी न जाने कितने ही परिचित सुवासित रेशमी बुर्के एक-एक कर अदृश्य पैराशूट में बँधे मेरे स्मृति-प्रांगण में उतरने लगे।

इमरजैंसी की वेंच पर ऊँघता चौकीदार हमें देखकर सतर हो गया।

"पहले मैं फोन कर लूँ", मेरी संगिनी ने हँस कर पूछा—मैं एक बार फिर उसके भुवनमोहिनी स्मितजाल में उलझ कर प्रश्न का उत्तर देना भूल गई।

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये विना ही उसने फोन उठा लिया था—"हेलो-हेलो, मैं हूँ मताज, हेलो, रजाअली बोल रहे हैं ? कहिए...."

और वह हँसी। कैसी मीठी खनक थी जैसे किसी ने चाँदी का झुनझुना बजाया हो।

"जी हाँ, मैं हूँ मुमताज, हेलो-हेलो....." फिर क्षण भर पूर्व किसी परिचित कण्ठस्वर को सुन कर खिला चेहरा मेरे देखते ही देखते उलझन की झुर्रियों से भर गया।

"कौन शमी ? क्या कहा साहब सो रहे हैं ? अजी अभी तो बातें कर रहे थे—अजी कोई बोलते क्यों नहीं ?" दस मिनट तक फोन के निःशब्द आले में निरन्तर बोलती, फटकारती चली गई थी।

मेरे जी में आया कहूँ, आपका फोन नहीं मिल रहा है तो मेहरबानी से क्या मुझे करने देंगी ? मेरे पति की कैप्सूल का समय हो गया है।

पर वह बन्दी फोन से चिपकी बड़बड़ाती चली जा रही थी—"रोज परेशान करते हैं, नमकहराम दो-दो नौकरों की ड्यूटी फोन पर लगी है, पर मुए मुफ्त की तनख्वाह डकार घर्राटे भरते हैं। घण्टी बराबर जा रही है पर कोई फोन उठाता ही नहीं।"

"मेमसाहब !" मैं चौंक कर मुड़ी। बेंच पर बैठा चौकीदार अब मुझे अचरज से घूरता खड़ा हो गया था। "आप तब से खड़ी हैं, फोन क्यों नहीं करतीं—नम्बर भूल गई हैं क्या ?"

इस बार मैंने उसे अचरज से देखा। "तुम्हारे इस फोन में एक साथ दो जनी फोन कर सकती हैं क्या ?" मैंने व्यंग्यपूर्ण झुंझलाहट से कहा और मेरी संगिनी फिर से हँस पड़ी।

चौकीदार मुझे ऐसे देखने लगा जैसे मैं नशे में हूँ।

"कभी एक से एक सिरफिरे नमूने चले आते हैं फोन करने," वह स्वयं ही बड़ी अशिष्टता से बड़बड़ाता बाहर चला गया।

मुमताज ने झुंझला कर फोन पटका और मैंने चट से उठा लिया।

फोन कर मैं बाहर निकली तो वह भी साथ चलने लगी। बुर्के का नकाब उसने फिर गिरा लिया, वह बिना कुछ बोले मेरे साथ चुपचाप चली जा रही थी, पर मुझे लगा वह निःशब्द रो रही है। कॉरीडोर के पास पहुँच कर उसने बुर्का उठा लिया और मैंने देखा, उसके कण्ठ से लेकर छाती तक सफेद पट्टियों का जिरहबख्तर-सा कसा है। तब क्या वह सर्जिकल वार्ड से ही सीधी उठ कर फोन करने चली आई है ? पट्टियाँ भी कभी किसी को आभूषणों की भाँति मण्डित कर सकती हैं,

मैंने उसी दिन जाना। कर्णमूल से लेकर उसकी सुराहीदार ग्रीवा तक लिपटी उन पट्टियों में वह मुझे क्लियोपैट्रा बनी लिज टेलर-सी ही गरिमामयी लगी। प्रखर ललाट पर पलटा गया रेशमी काला बुर्का उसे अपने मसिवर्णी कन्ट्रास्ट से स्फटिक-सा चमका रहा था। पतली नाक पर बहुत बड़े नग की हीरे की लौंग उस अन्धकार में किरणें-सी छोड़ रही थीं। क्रोध और अपमान से उसके अधर काँप रहे थे। 'बहन' उसने सहसा आम्रकुंज की घनी अमराई के बीच मुझे हाथ पकड़ कर रोक लिया। गोरी कलाइयों पर पड़ी धानी ऊदी रेशमी चूड़ियाँ कुहनियों तक सरक गईं। उन लम्बी अँगुलियों का स्पर्श निश्चय ही अमानवीय रूप से हिमशीतल था। मुझे लगा कि किसी ने मेरे हाथ पर कोई हिमशिलाखण्ड तोड़ कर चिपका दिया है। "देख रही हो ना दुनिया कैसी है", वह डूबी आवाज में कहने लगी—"कभी हम जिनकी आवाज सुन कर थर्राती थीं, आज वही हमारी आवाज सुन कर थर्राते हैं, दिन-रात हमें छाती से चिपका कर भी जिनकी साध नहीं मिटती थी, वे ही आज हमारी पसलियों की खनक सुनते ही बेहोश हो जाते हैं। तुम भी तो अपने बीमार शौहर के साथ यहाँ आई हो क्यों ?'

मैं चौंकी। इसे कैसे पता हो गया कि मैं अपने बीमार पति के साथ यहाँ आई हूँ !

"ठीक है, ठीक है", वह अब हँस-हँस कर कहने लगी—"रात-रात भर जगी रही पर खुदा न करे अगर कभी पहले तुम चली गई तो इसी शौहर की बेरुखी से हमारी तरह तड़पती रहोगी। हम गईं तो तीसरे ही महीने, हमारी चचाजाद बहन आ गईं।" फिर उसकी मृगमद में सनी लम्बी साँस मेरा कपोल स्पर्श कर उठी—"यह हमारा ही बचपना है बहन, जो रोज आधी रात को फोन करने चली आती हैं। वह तो भला हो उस गद्दे का जिसने आज तुमसे मिला दिया।" मैं फिर चौंकी, किस गद्दे की बात कर रही थी वह।

उसने शायद मेरी आश्चर्यचकित दृष्टि देख ली।

"जिस गद्दे में तुम सोती हो, वह हमारा है बिन्नी, हम भी उसी में सोई थीं। क्यों ? रजाअली की तरह तुम्हें भी डरा दिया ना हमने !"

इस बार उसकी हँसी पहाड़ की बर्फ़ीली चट्टानों का स्पर्श कर बहती हवा की ही भाँति सीटी-सी बजा कर विलीन हो गई।

"खुदा हाफिज," कहती वह सरसराती तेरह नम्बर वार्ड के भीतर धँसती अदृश्य हो गई। तेरह नम्बर में तो वह हिन्दू रोगिणी थी, यह मुस्लिम युवती उसकी कौन हो सकती थी ?

रात भर मैं सो नहीं पाई। सुवह उठते ही मैंने वार्ड-ब्वाय को वुला कर वह मनहूस गद्दा वाहर फिकवाया, घर जाकर अपना गद्दा लाई, फिर भी छाती के भीतर कहीं गहरी धँस गई उस "'खुदा हाफिज' की चिलक मुझे कई रातों तक सालती रही। कहती भी किससे ? विज्ञान के इस युग में भला ऐसी घटना का कोई विश्वास करता ? फिर कई रातों के रतजगे की थकान दूर करने में एक दिन घर लौटी। आधी रात को उसी परिचित सुगन्ध ने सहसा मेरे हाथ-पैर ठण्ढे कर दिये।

"जरी खिसको विन्नो, हमें भी जगह दो—वड़ी दूर रहती हो तुम, अल्ला-अल्ला कर पहुँच पाई हैं हम।"

और फिर वह मुझे जोर से धकेलने लगी। फिर मैं अपनी चीख नहीं रोक पाई। मेरी चीख सुनकर ही शायद मेरा पूरा परिवार कमरे में आ गया।

वत्ती जलते ही मेरी चेतना जाग्रत हुई और मैं लज्जित-सी होकर बैठ गई। उस ठण्ड में भी मेरे कपड़े पसीने से तर थे।

"वुरा सपना देखा था", मैंने खिसियाए स्वर में कहा।

वत्ती फिर वुझा दी गई, सोने वाले फिर सो गये, पर मैं नहीं सो पाई। इतना मैं उसी दिन जान गई थी कि मैं कहीं भी रहूँ, वह मुझे ढूँढ़ लेगी। सोचा था शायद इन दुर्गम पर्वत-श्रेणियों के व्यवधान को चीर कर वह मुझे यहाँ नहीं ढूँढ़ पायेगी।

किन्तु उस चतुरा नटिनी की सर्वव्यापी सन्धानी दृष्टि के घेरे ने मुझे यहाँ भी बाँध लिया है।

इस वार उसकी 'खुदा हाफिज' एक तीखा खंजर बन मेरे कलेजे में धँसकर रह गई है।

"तुमसे अजीव लगाव हो गया है विन्नो !" वह हँस-हँस कर कह गई है। "भला हो उस गद्दे का जिसने तुमसे मिला दिया, यहाँ अकेले में वड़ी तवीयत घवराती है। सोचती हूँ तुम्हें भी साथ ले चलूँ, क्यों ?" उस प्रश्न के उत्तर देने में मैंने एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया था। "नहीं-नहीं, मैं कैसे आ सकती हूँ ? मेरे वच्चे, मेरी गृहस्थी, मेरा अधूरा उपन्यास, मेरे वीमार....."।

मैं अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी कि वह अपना चेहरा एकदम मेरे निकट ले आई—"तुम्हारे वीमार शौहर ? यही कहना चाह रही थी ना ? मैं भी अपने वीमार शौहर को ही छोड़कर आई थी विन्नो ! मेरे जाते ही उनकी वीमारी भी चली गई। किसी के चले जाने से दुनिया नहीं रुकती, अच्छा खुदा हाफिज !"

वह हमेशा निरभ्र आकाश में चमकती-बुझती मेहताव की ही भाँति अदृश्य हो जाती है—नक्षत्रखचित गगनमण्डल में उसके अस्तित्व का कोई भी चिह्न मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता। खिली चन्द्रिका को आकाश में छिपी किसी अज्ञात मेघवाहिनी के मेघखण्डों ने गुरिल्ला सैनिकों की ही फुर्त्ती से दवोच लिया है।

गहन अन्धकार भेदती, देवद्रुमों की सीटी वजाती वयार, सुदूर पाषाण-देवी के डोरी में बँधे घण्टों को हिलाती वही चली जा रही है। ताल के स्थिर रजत-दर्पण को भंग करती एक पुष्ट मछली छपाक से फिर पानी में दुवक गई है। मैं जानती हूँ किसी दिन इस निस्सीम शून्यता को भेदती मेरी रहस्यमयी संगिनी की आह्वानध्वनि फिर गूँज उठेगी। सोचती हूँ, उस आह्वान को स्वीकार कर क्या सचमुच ही मुझे जाना पड़ेगा ?

शिवानी का अप्रतिम उपन्यास

चौदह फेरे

★

समूचा उपन्यास विविध प्राणवान् चरित्रों, समाज, स्थान तथा परिस्थितियों और बदलते हुए जीवन-मूल्यों के बीच से गुज़रता है—

चौदह फेरे लेनेवाली कर्नल पिता की पुत्री अहल्या जन्म लेती है अलमोड़े में, शिक्षा पाती है ऊटी के कॉन्वेण्ट में, और रहती है पिता की मुँहलगी मल्लिका की छाया में!— और एक दिन निर्वासित, हिमालय में तपस्यारत माता के प्रबल संस्कारों से बँध सहसा ही, विवाह के दो दिन पूर्व वह भाग जाती है कुमाऊँ अंचल में - तब - और आगे की पूरी - आदि से अन्त तक भरपूर रोचक तथा अविस्मरणीय कथा - पढ़िए उपन्यास के पृष्ठों में। सर्वथा संग्रहणीय और अपने प्रकार का अद्वितीय उपन्यास।

क्राउन आकार, ३२० पृष्ठ, बहुरंगा आवरण, तृतीय संस्करण।
मूल्य ७–५०

विश्वविद्यालय प्रकाशन - वाराणसी